महात्मा गाँधी एवं विनोबा के शैक्षिक विचारों का नवीन शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की

शिक्षा शास्त्र विषय

की

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

1999

निर्देशक:-

डॉ. जे . एल . वर्मा

रीडर,

शिक्षा विभाग

बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

शोधकर्ती :-

कु. अर्चना गुप्ता

एम.ए.(राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र), एम. एड.
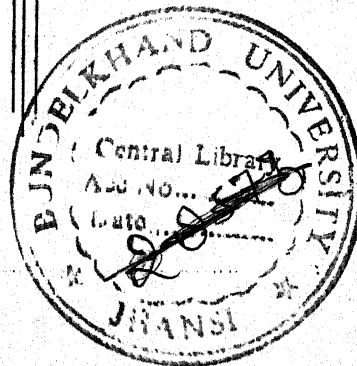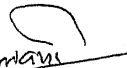
-: प्रमाण पत्र :-

प्रमाणित किया जाता हैं कि प्रस्तुत शोध कार्य " महात्मा गाँधी एवं विनोबा के शैक्षिक विचारों का नवीन शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन " मेरे निर्देशन में सम्पन्न हुआ हैं। शोधकर्ती अर्चना गुप्ता की लगन एवं परिश्रम का परिणाम यह शोध कार्य पूर्णतयाः अनुमोदित हैं जो भावी शोध कर्ताओं के लिये पथप्रदर्शक का कार्य करेगा। ऐसा मेरा विश्वास हैं

इनके उज्जवल भविष्य का आर्शीवाद देता हुआ मैं प्रस्तुत शोध प्रवन्ध के परीक्षण की संस्तुति करता हूँ।

निर्देशक

(डॉ. जे. एल. वर्मा)
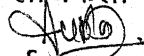
रीडर ~~प्रवक्ता~~, शिक्षा संकाय

बुन्देलखण्ड महाविद्यालय , झाँसी

-: घोषणा पत्र :-

मैं अर्चना गुप्ता घोषणा करती हूँ कि मैंने अपना शोध प्रवन्ध "डॉ. जे. एल. वर्मा" प्रवक्ता, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी के निर्देशन में पूरा किया हैं। यह मेरी मौलिक कृति है जो इससे पूर्व अन्यत्र कहीं न तो प्रकाशित हुई है और न ही प्रस्तुत की गई है।

उपरोक्त घोषणा के साथ यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत है।

शोधकर्ती

(अर्चना गुप्ता)

एम. ए., एम. एड.

-: आभार :-

परम श्रद्धेय गुरूवर डॉ. जे. एल. वर्मा जी (एम. ए. ,पी-एच.डी.) रीडर, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.) के सरल, सहज और विद्धतापूर्ण मार्गदर्शन के द्वारा ही इस शोध कार्य को साकार रूप में प्रस्तुत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ हैं। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर जो अनुदेश एवं मार्गदर्शन मुझे प्रदान किया है, यह शोध प्रबन्ध उसी का सफल सुफल है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आरम्भ से लेकर अंत तक उनका जो मार्गदर्शन एवं सहयोग मुझे मिलता रहा हैं, उसकी सराहना में शब्दकोष अपने को विपन्न पाता है।

प्रेरणादायी अध्यापक एवं आदर्श शोध निर्देशक के रूप में उनके स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व की अतिशय ऋणी हूँ। मैं पुनः उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

मैं आभारी हूँ, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.) के बी. एड. विभाग के डॉ. डी. एस. दुबे की जिन्होंने मुझे शोध कार्य के लिये प्रोत्साहित तो किया साथ ही मार्गदर्शन प्रदान किया।

मैं आभारी हूँ, जिला पुस्तकालय झाँसी में कार्यरत कर्मचारियों एवं अधिकारियों की जिनके सहयोग के बिना यह शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था। जिन्होंने मुझे शोध प्रबन्ध हेतु समय-समय पर आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराई।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं गाँधी पुस्तकालय, इलाहाबाद में कार्यरत कर्मचारियों एवं अधिकारियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने मुझे शोध हेतु आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराई।

मैं धन्य वाद अदा करती हूँ उन सभी लोंगो का, जिन्होंने

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुझे इस शोध कार्य हेतु सहयोग प्रदान किया।
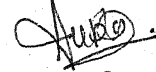
अपने पूज्य पिताजी, माताजी, स्नेही भैया (जो कि सदैव प्रेरित करते रहते हैं) भाभी, दीदी एवं जीजाजी जिनके प्रति आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता होगी, क्योंकि उनके द्वारा मिले स्नेह ने ही मुझे शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने हेतु प्रेरित किया।

अन्त में आभारी हूँ श्री दिलीप कुमार गोयल (एडवोकेट) की जिन्होंने अपने श्रम द्वारा, शुद्ध एवं स्पष्ट टंकण द्वारा शोध प्रबन्ध को यह रूप प्रदान किया।

शोधकर्ती

(कु. अर्चना गुप्ता)

झाँसी

10 अक्टूबर, 1999

-: अनुक्रमणिका :-

पृष्ठांक

आभार I

भूमिका III

अनुक्रमणिका XVII

अध्याय : प्रथम 1-12

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं शोध योजना

अध्ययन का महत्व, अध्ययन का उद्देश्य, अध्ययन विधि, अध्ययन स्त्रोत, समस्या का सीमांकन, उपकल्पना, सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण।

अध्याय : द्वितीय 13-80

गाँधीजी एवं विनोबा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) गाँधी जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

महात्मा गाँधी जी का जन्म एवं शिक्षा, जीवन की महत्वपूर्ण क्रियायें, गाँधी जी के दर्शन स्त्रोत, परिवारिक पर्यावरण, विभिन्न धर्म, श्री भगवद्गीता, जैन धर्म का प्रभाव, बौद्ध धर्म का प्रभाव, यहूदी धर्म का प्रभाव, टालस्टाय का प्रभाव, गाँधी जी के सामाजिक एवं राजनैतिक लेखन कार्य।

(ख) विनोबा जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

विनोबा जी का जन्म एवं शिक्षा, विद्यार्थी जीवन, विद्यार्थी मण्डल की स्थापना, विनोबा जी का व्यक्तित्व, क्रान्ति एवं अध्यात्मिक द्वैत, अध्यात्मिक कृति के संस्कार, वैरायग्यपूर्ण जीवन, वैज्ञानिक वृति के संस्कार, विनोबा जी का आचार्यत्व, अनन्य प्रेम और वात्सल्य श्रजतापूर्ण भगवत श्रम, अध्ययनशील जीवन, गीता का अनुशीलन, कर्मयोगी के विविध प्रयोग, विनोबा जी की आश्रम व्यवस्था, जेल एक आश्रम, गाँधीजी

के अधूरे कार्य को पूरा करने का व्रत, भूदान और ग्रामदान, विनोबा जी की रचनायें।

अध्याय : तृतीय 81-100

महात्मा गाँधी एवं विनोबा जी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत

(अ) महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत :

(क) दार्शनिक आधार

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार

(ग) सामाजिक आधार

(घ) वैज्ञानिक विचार

(ङ) समीक्षात्मक विचार

(ब) विनोबा के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत :

(क) दार्शनिक आधार

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार

(ग) सामाजिक आधार

(घ) वैज्ञानिक आधार

(ङ) समीक्षा आधार

अध्याय : चतुर्थ 101-156

शैक्षिक स्वरूप

(क) महात्मा गाँधी जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :

शिक्षा का अर्थ, शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करने की आवश्यकता, गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य- जीविकोपार्जन का उद्देश्य, सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य, सांस्कृतिक उद्देश्य, शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य-आत्मानूभूति का ज्ञान, शिक्षा के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य।

(ख) विनोबा जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :

शिक्षा का अर्थ, शिक्षा के उद्देश्य – सत्य मनुष्यत्व बनाना, ज्ञान का विकास, सत्यनिष्ठा का विकास, अन्तरिम विकास, स्वावलम्बन का निर्माण, प्रज्ञा स्वयंभू बने, विश्वनागरिकता का निर्माण करना, जीविकोपार्जन का उद्देश्य, बुनियादी शिक्षा, विनोबा जी की बुनियादी शिक्षा के आधारभूत तत्व, विनोबा जी और नई तालीम, नई तालीम का उद्देश्य, स्वतंत्र एवं विचारशील व्यक्तित्व का निर्माण करना, ज्ञानार्जन की अभिरूचि उत्पन्न करना, स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर मानव बनाना, ज्ञान एवं कर्म में समन्वय, समाजसेवी व्यक्ति उत्पन्न करना, विश्व मानव

(ग) नई शिक्षा नीति के संदर्भ में गाँधी जी एवं विनोबा जी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :

गाँधीजी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा, विनोबा भावे के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा, नई शिक्षा नीति के संदर्भ में शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा,

अध्याय : पंचम 157–197

पाठ्यक्रम

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा – पाठ्यक्रम :

(अ) प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम के विषय :

मातृ भाषा की शिक्षा, गणित की शिक्षा, सामाजिक विषय, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान शिक्षा, संगीत शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वावलम्बन सम्बन्धी शिक्षा, नागरिक जीवन के कार्य कलाप, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्य कलाप

(ब) उच्च शिक्षा

(स) अध्यापक शिक्षा

(द) स्त्री शिक्षा

(ई) प्रौढ़ शिक्षा

(ख) विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा – पाठ्यक्रम :

विनोबा के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत, पाठ्यक्रम के विषय, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा, हस्तकला की शिक्षा, मातृ भाषा की शिक्षा, संस्कृत की शिक्षा, इतिहास की शिक्षा, संगीत की शिक्षा, आहार विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, स्वावलम्बन की शिक्षा, व्यायम की शिक्षा, नई तालीम का पाठ्यक्रम

(ग) गाँधी जी एवं विनोबा जी के माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

गाँधीजी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार, विनोबा जी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार, नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में पाठ्यक्रम की समीक्षा

अध्याय : षष्ट 198–225

शिक्षण पद्धति

(क) गाँधीजी के अनुसार शिक्षण पद्धति :

गाँधीजी की शिक्षण पद्धति के आधारभूत सिद्धांत, महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि, उद्योग के साथ समन्वय, प्राकृतिक वातावरण से समन्वय, सामाजिक वातावरण से समन्वय, वाचन विचार, एवं कर्म द्वारा सीखना ,शिक्षण विधि में स्वभाषा का का माध्यम, भाषा ज्ञान, राष्ट्र भाषा, अंग्रेजी भाषा, कुछ अन्य विषयों की शिक्षा प्रक्रिया, नये बच्चे की शिक्षा प्रक्रिया, विशेष वर्ग के लिये शिक्षा प्रक्रिया।

(ख) विनोबा जी के अनुसार शिक्षण पद्धति :

परिश्रम द्वारा सीखना, केवल पद्धति, परिशेष पद्धति, समवाय पद्धति, समुच्चय पद्धति, संयोजन पद्धति, ग्राम्य पद्धति, सह शिक्षा, उद्योग द्वारा शिक्षा, उद्योग द्वारा शिक्षा, सातत्व योग का अभ्यास, साधर्म्य-वैधर्म्य प्रक्रिया, मल विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, प्रसंग के अनुसार पाठ, प्रत्यक्ष जीवन द्वारा ज्ञान, इतिहास-भूगोल की

एकता, छोटे बच्चों के लिये शिक्षण, स्थूल से सूक्ष्म की ओर ज्ञान।

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

महात्मा गाँधी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा, विनोबा जी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा, महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा

अध्याय : सप्तम 226–234

गुरू शिष्य सम्बन्ध

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध

(ख) विनोबा जी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबा जी के गुरू शिष्य सम्बन्धी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा

(घ) अध्यापक प्रशिक्षण

अध्याय : अष्टम 235–254

विद्यालय व्यवस्था

(क) गाँधी जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था।

(ख) विनोबा जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था, परीक्षा व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था।

(ग) गाँधाी जी एवं विनोबा जी की माध्यमिक स्तर तक विद्यालय व्यवस्था की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा।

अध्याय : नवम 255–294

शैक्षिक अभिकरण

(क) गाँधी जी एवं विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

गाँधी जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

परिवार का शिक्षा में योगदान, राज्य का शिक्षा में योगदान, विद्यालयों का शिक्षा में योगदान, अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान

विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

परिवार सम्बन्धी विचारों का शिक्षा में योगदान, राज्य का शिक्षा में योगदान, विद्यालयों का शिक्षा में योगदान, विनोबा जी के अनुसार समुदाय का शिक्षा में योगदान

(ख) महात्मा गाँधी जी एवं विनोबा जी द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक अभिकरणों सम्बन्धी विचारों की नईशिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

महात्मा गाँधीजी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :

गाँधीजी के अनुसार शिक्षार्थी, महात्मा गाँधी के शिक्षक सम्बन्धी विचार, महात्मा गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि, महात्मा गाँधीजी के अनुसार विद्यालय, महात्मा गाँधीजी के अनुसार अनुशासन

विनोबाजी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :

शिक्षक, विनोबाजी के अनुसार विद्यार्थी, विनोबाजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, विनोबा भावे के अनुसार पाठ्न विधि, विनोबा भावे के अनुसार पाठ्यक्रम, विनोबा जी के अनुसार अनुशासन

शैक्षिक अभिकरण नई शिक्षा नीति के संदर्भ में

अध्याय : दशम 295–298

<u>निष्कर्ष एवं सुझाव</u>

(क) शोध प्रबंध का निष्कर्ष

(ख) भारतीय शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव

(ग) अग्रिम अध्ययन के लिये सुझाव

संदर्भ ग्रंथ सूची I - XVI

भूमिका

शिक्षा :-

शिक्षा एक व्यापक शब्द हैं। यह जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है तथा प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति की जननी है। बच्चा संसार में कुछ पाशविक प्रवृतियाँ लेकर पैदा होता हैं। उसकी इन प्रवृत्तियों को नियत्रंण में रखकर उसके अन्दर निहित शक्तियों का एवं प्रतिभाओं का सर्वागीण विकास करना ही शिक्षा है।

शिक्षा प्रकाश का वह स्त्रोत हैं जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ प्रदर्शक हैं। शिक्षा द्वारा हमारे संशयों का उन्मूलन एवं कठिनाईयों का निवारण होता है तथा विश्व पर्यावरण एवं परिवेश को समझने की क्षमता प्राप्त होती है।

" ज्ञानं तृतीय मनुष्यस्य नेत्रमं समस्त तत्वार्थ त्रिलोक दक्षम् "

दो नेत्रों के देखने से जो अपूर्ण रह जाता हैं वह विद्यारूपी नेत्र से देखा जा सकता हैं बिना विद्या के मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं होता हैं।

" विद्या विहीनः पशुभिः समानः अर्थात विद्या से ही मानवता के गुणों का विकास सम्भव हैं नहीं तो पशु का पशु ही रह जायेगा। जिसका उददेश्य मात्र उदर पूर्ति होता है।"[1]

भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा वह हैं।जो मुक्ति का मार्ग पशस्त करें।

" सा विद्या विमुक्तये - जगतगुरू शंकराचार्य अर्थात प्राचीन काल से शिक्षा को पवित्र प्रक्रिया माना गया है। गीता में श्री कृष्ण ने ज्ञान को पवित्रम् घोषित किया हैं नहि ज्ञानेन सदृंश पवित्रमिह विद्यते। महाभारत में कहा गया हैं।नास्ति विद्या समं चक्षु : अर्थात विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं होता हैं। भारतीय दर्शन में अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश माना गया हैं शिक्षा एक प्रकाश हैं। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला शिक्षा का प्रमुख कार्य है।"[2]

शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक पीढी के साथ समाज की प्राचीन निधि

---

1. आधुनिक भारतीय शिक्षा का तात्पर्य - डॉ. वी. वी. अग्रवाल, पृष्ठ 2
2. भारतीय शिक्षा के मूल तत्व शिक्षा - लज्जाराम तोमर, पृष्ठ 19

का संरक्षण संवर्द्धन एवं हस्तान्तरण होता रहता है।यदि शिक्षा हो तो समाज का जन्म ही न हो।समाज जीवन का प्रवाह शिक्षा के कारण ही गतिशील होकर विकास की ओर अग्रसर होता हैं। एक के बाद एक मानव जब दूसरों को जो प्रायः उसके बाद जन्में हों । विभिन्न क्षेत्रों के सम्पूर्ण अनुभव को अथवा सारभूत अंश को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान या संसर्गित करना हैं तो इस प्रक्रिया में एक निरन्तर गतिमान समूह की सृष्टि होती हैं जिसे समाज कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो समाज का जन्म ही न हो।''[1]

शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते हैं। और सुदृढ़ होंते हैं।

'' हमारे शास्त्रकारों के अनुसार शिक्षा एक ऋषि ऋण हैं जिसे चुकाना प्रत्येक मानव का कर्तव्य हैं।जब हम भावी सन्तति की शिक्षा व्यवस्था करते हैं तो हमारी उनके प्रति उपकार की भावना नहीं रहती अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई हैं उसे आगे की पीढ़ी को सौपकर उनके ऋण से उऋण होने की मनीषा रहती हैं।''[2]

मानव सभ्यता के ऊषाकाल में विद्यालय नहीं थे, परिवार ,समुदाय और धार्मिक संस्थायें ही शिक्षा प्रदत्त करने का कार्य करती थी। मानवता का अनुभव भी उस समय सीमित था। सृष्टिका ज्ञान भी सीमित था अनेंको विद्वानों के मत भी नहीं थे ।जीवन बड़ा सरल था ज्यों -ज्यों सभ्यता बढ़ती गईं। जीवन कठिन होता गया, मनुष्य के अनुभव बढ़ते गये।ऐसी स्थिति में मनुष्य के अनुभवों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करके तथा छात्र की आयु और योग्यता की जॉच करके उसके अनुसार ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक हो गया है।

शिक्षा के स्वरूपों की विवेचना करते हुये कहा गया हैं।शिक्षा एक जटिल अवधारणा है। यह औपचारिक विद्यालयीकरण या अनुभव से सीखने की जीवनपर्यन्त प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती हैं। शिक्षा स्वयं में एक विश्व भी है और विशाल विश्व का प्रतिबिम्ब भी अपने उदद्श्यों में योगदान करती हुई वह समाज के अधीन होती हैं और विशेष रूप में यह सुनिश्चित करके कि अपेक्षित मानव संसाधनों का विकास होता हैं। शिक्षा समाज को अपनी उत्पादक शक्तियों के जुटाने में सहायता पहुँचाती हैं। शिक्षा का उन पर्यावरणात्मक स्थितियों पर जिनके अधीन वह होती हैं, आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है। भले ही यह प्रभाव केवल उन व्यक्तियों के ज्ञान के द्वारा हो

---

1. राष्ट्र जीवन की दिशा लोकमत परिष्कार - पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 84
2. पण्डित दीनदयाल उपाध्याय - कर्तव्य एवं विचार , पृष्ठ 307-308

जिनका निर्माण वह करती है। इस प्रकार शिक्षा अपने स्वयं के रूपान्तरण तथा प्रगति की वस्तुनिष्ठ स्थितियो के निर्माण में योगदान करती हैं।

" शिक्षा ज्ञान देने तक ही सीमित नहीं कही जा सकती हैं, शिक्षा जब तक जीवन के मूल्यों, मान्यताओं का परिचय नहीं देती है। तब तक वह शिक्षा नहीं कही जा सकती। ऐसे विचार है।' (सर्व पल्ली राधाकृष्णन)

" शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशलो का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है। इससे शिक्षित व्यक्तियों के मूल्यों के विचारों को भी प्रदान करता है। अतः जिस समुदाय में रहते है उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है।"[1]

अतः केवल औपचारिक शिक्षा अर्थात विद्यालयी शिक्षा के द्वारा वांछित परिणामों को प्राप्त करना असंभव है।

औपचारिक शिक्षा तो संस्कार व स्वास्थ्य के बीच की कड़ी थी। परिवार ,हाट, बाजार, खेत, खलिहान ये सब विद्यालय हैं।

शिक्षा के अनुदेश एवं अवधारणा :-

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग इच्छायें होती है। कोई दो वयक्ति भी एक ही प्रकार की इच्छा नहीं रख पाते हैं और जहॉं करोड़ों मानवों का समूह हो वहॉं सभी लोग एक ही प्रकार की इच्छा करें यह सम्भव प्रतीत नहीं होता लेकिन लोकतांत्रिक देशों में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ समान इच्छायें होना आवश्यक होता है। अन्यथा लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता हैं अराजकता और निरकुशता का वातावरण उत्पन्न हो जाता हैं। अतः लोकतंत्र में समान इच्छाओं के निर्माण के लिये संयम की नितान्त आवश्यकता होती हैं और समान इच्छाओं का निर्माण शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। एक शिक्षित व्यक्ति अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा ज्यादा संयत और जिम्मेदार होता हैं।

" शिक्षा की अवधारणा एवं अनुदेश का यही तात्पर्य हैं कि शिक्षा के द्वारा लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर कुछ समान मानसिक आदतों एवं जीवन के प्रति उपयुक्त समान दृष्टिकोण का निर्माण होना चाहिये। अतः जनता को सुसंस्कृत करने के लिये शिक्षा या लोकमत परिष्कार का सबसे अधिक महत्व है।"

---

1. पण्डित दीनदयाल उपाध्याय - कर्तव्य एवं विचार , पृष्ठ 313

शिक्षा का समाज शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :-

मनुष्य समाज का अंग हैं इसलिये वह अपने अंगो अर्थात समाज को स्वस्थय एंव मजबूत बनाने का पूरा प्रयास करता है। सम्पूर्ण मानव जाति समूह बनाकर ही रहना चाहती है। एकांकी जीवन व्यतीत करने से बचती हैं। यही कारण हैं कि मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना गया है। समाज के सभी लोग आपस में एक दूसरे के साथ उठते बैठते हैं, मिलते है, बात करते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार से समाज में कुछ कठिनाईयों का पैदा होना भी स्वभाविक हैं। इन कठिनाईयों के कारण समाज में विघटन उत्पन्न होने का खतरा रहता हैं। चूकि मनुष्य को समाज में ही रहना पड़ता हैं। इसलिये उन कठिनाईयों से दूर करके उसे समाज से अनुकूलन स्थापित करना पड़ता है। इस अनुकूलन के स्थापन में शिक्षा ही उसे सहायता देती हैं। अतः शिक्षा का उददे्श्य है-

" व्यक्ति को सामाजिक कुशलता प्रदान करके सामाजिक वातावरण से अनुकूलन करने कह योग्यता देना।"[1]

" बच्चे को शिक्षा देना समाज के हित में हैं। जन्म से मानव पशुवत् पैदा होता हैं । शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है।"[2]

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का निर्माण होता हैं।शिक्षा ही ज्ञान का प्रकाश हैं। शिक्षा व्यक्ति की बुद्धि को प्रभावित करती हैं। समाज व्यक्तियों से ही बनता है। अतः शिक्षा के द्वारा समाज का निर्माण होता है। शिक्षा के प्रकाश से ही समाज को जीवन मिलता हैं। शिक्षा ही वह सुर्य हैं जिससे प्रकाशित होकर समाज को चेतना प्राप्त होती है।

शिक्षा के माध्यम से बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता हैं यही विकसित शक्तियाँ समाज के हित संरक्षण एवं बुराई के निवारण में सहायक होती हैं। छात्रों के अन्दर नैतिकता, स्वार्थ, त्याग एवं सामाजिक हित की भावना संस्कार रूप में विकसित करना शिक्षा का मुख्य उददे्श्य है। संस्कार के अभाव में शिक्षा के द्वारा विकसित शारीरिक एवं मानसिक शक्तियां दुराचार छल कपट एवं स्वार्थ सिद्धि के लिये उपयोग में लाई जाती हैं।

---

1. शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत समाज और शिक्षा - पाठक और त्यागी, पृष्ठ 404
2. एकात्म मावन दर्शन, राष्ट्रवाद की सही कल्पना, स्वदेशी की भावना सर्वव्यापी हो

   - पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 307-308

अतः संस्कार एवं सामाजिक चेतना का जागरण करने वाली शिक्षा होनी चाहिये जिसके द्वारा विकसित शक्तियाँ भलाई के रक्षण और बुराई का निवारण कर स्वस्थ्य और मजवूत समाज निर्माण के काम आ सकें।

शिक्षा के द्वारा बालकों को इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, विज्ञान, नागरिक शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान कराया जाता है। उन विषयों का केवल ज्ञान प्राप्त कर लेना ही स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं हैं। उन विषयों का ज्ञान समाज की समस्याओं का समाधान कर उसकी उन्नति करना हैं। विभिन्न विषयों की पाठ्य वस्तु एवं शिक्षण प्रणाली भी इस उद्देश्य की पूर्ति के अनुरूप होना चाहिये।

शिक्षा के माध्यम से छात्रों के अन्तःकरण में समाज की समस्याओं की अनुभूति जागृत करनी होगी। तभी वास्तविक सामाजिक चेतना का जागरण होगा। आज समाज में अस्पर्शयता, जातिभेद, निर्धनता, निरक्षरता दहेज आदि समस्यायें विकराल रूप धारण किये हुये हैं। छात्रों को इन समस्याओं का ज्ञान हों, समाज के पिछड़े और निर्धन बन्धुओं के प्रति आत्मीयता एवं एकात्मकता की भावना जागृत हों तभी इन समस्याओं के निवारण के लिये युवा शक्ति जागृत होकर सक्रिय होगी।

" आज भारत के शिक्षित वर्ग के जीवन मूल्यों पर पश्चिम का यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता हैं। जब तक अंग्रेज थे तब तक तो हम स्वदेशी की भावना से अंग्रेजियत को दूर रखने में ही गौरव समझते थे। किन्तु अब जब अंग्रेज चले गये हैं तब भी अंग्रेजियत पश्चिम की प्रगति का द्योतक एवं माध्यम बनकर अनुकरण की वस्तु बन गई हैं। अंग्रेजियत के मोहवरण को परित्याग करना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा।"[1]

शिक्षा के द्वारा समाज में आत्मीयता एवं एकात्मता का भाव जागृत किया जाना चाहिये तभी स्वस्थ और सबल समाज का निर्माण सम्भव हैं अन्यथा समाज के कमजोर होने से व्यक्ति का कमजोर होकर नष्ट होना स्वाभाविक है।

" समाज का प्राण दुर्बल हो गया तो सब अंग दुर्बल और निस्तेज हो जायेंगे। कुटंम्ब जाति श्रेणी पंचायत जनपद राज्य आदि सब संस्थायें राष्ट्र तथा मानव क अंगभूत है । उनमें एकात्म भाव होना चाहिये।ये परस्पर पूरक हैं। परस्परवलम्बी है। इसलिये उनमें परस्परनुकूलता की वृति उत्पन्न होनी चाहिये।"[2]

---

1. एकात्म मावन दर्शन, राष्ट्रवाद की सही कल्पना, स्वदेशी की भावना सर्वव्यापी हो
   - पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 7
2. एकात्म मावन दर्शन, व्यष्टि समष्टि में समरसता, समाज और व्यक्ति में संघर्ष नहीं
   - पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, पृष्ठ 41

मनोविज्ञान के अध्ययन से बालक की जन्मजात प्रवृतियों उसकी वैक्तिक भिन्नताओं आदतों, रूचियों, आवश्यकताओं तथा वैयक्तिक्ता और वातावरण का ज्ञान प्राप्त होता हैं। इसलिये जो शिक्षक अपने विद्याथियों को भली भाँति जानता हैं वही सफल अध्यापक हैं आज मनोविज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हो गया आत्म चेतन मस्तिष्क एवं मक्येतन के क्षेत्र से होता हैं। बालक को उसकी मानसिक क्षमता तथा अवस्था के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिये तभी वह सम्बधित विषय को रूचिपूर्वक आत्मसात् कर पायेगा।

मनुष्य का विकास निम्न स्तर से हुआ हैं प्राणी को अपना जीवन वनाये रखने के लिये वातावरण से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में शक्तिशाली प्राणी जीवित रह जाते हैं और निर्बल नष्ट हो जाते हैं अतः शिक्षा की वैज्ञानिक अवधारणा से यह अभिप्राय है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे व्यक्ति जीवन संघर्ष के लिये तैयार हो सके।

प्राणी में अपने आप को अपनी आदतों को और अपने शारीरिक ढांचे को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की शक्ति होती हैं।

अतः शिक्षा की वैज्ञानिक अवधारणा का तात्पर्य है ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को वातावरण के अनूकूल ढालने की क्षमता उत्पन्न करें ।आत्म सुरक्षा और आत्म संतोष भी प्राणियों का आवश्यक गुण हैं। अतः शिक्षा की सहायता से मनुष्य के अन्दर आत्म सुरक्षा एवं आत्म सन्तुष्टि की भावना जागृत होनी चाहिये।

" शिक्षा को हमें पूर्ण जीवन के नियमों तथा ढंगो से परिचित करना चाहिये।"[1]

हरबर्ट स्पेन्सर ने शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताते हुये कहा हैं कि -

" शिक्षा मनुष्य को ऐसा तैयार करें कि वह उचित प्रकार का व्यवहार कर सके और शारीरिक मस्तिष्क तथा आत्मा का सदुपयोग कर सके।"[2]

विज्ञानवेत्ता का प्रयत्न रहता हैं कि वह जगत में दिखने वाली अव्यवस्था में से व्यवस्था को ढूढ़ निकाले उनके नियमों को पता लगायें तदानुसार व्यवहार के नियम वतायें।

---

1. शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत - पाठ्क एवं त्यागी , पृष्ठ 150
2. वैज्ञानिक यथार्थवादी शिक्षा की विशेषतायें - पाठ्क एवं त्यागी , पृष्ठ 204-205

प्रत्येक बालक को सांस्कृतिक विरासत उस समाज से प्राप्त होती हैं जिसमें वह जन्म लेता हैं। जहाँ उसका पालन पोषण होता हैं और जिस समाज में उसको शिक्षा दीक्षा प्राप्त होती हैं। मनुष्य जिस समाज का अंग होता हैं वह समाज से कटकर नहीं रह सकता।वह अपने समाज को संगठित करके उसे मजबूत और समृद्धिशाली बनाता हैं। एक निश्चित व्यवस्था को विकसित और स्थापित करता हैं। इसी निश्चित और सम्पूर्ण व्यवस्था को परिस्थिति कहते हैं। संस्कृति के अन्तर्गत समाज के रीति रिवाज, परम्परायें, नैतिकता, कला, विज्ञान, धर्म, विश्वास, पूजा पद्धति, आचार, विचार तथा आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था समाहित रहती हैं।

संस्कृति में कोई भी बात आ सकती हैं जिसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जा सकता हैं किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी विरासत हैं। किसी भी देश की सजीव शिक्षा व्यवस्था में वहाँ की संस्कृति समाहित रहती हैं संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार ,निष्प्रयोजन और निर्जीव बनकर रह जाती है। संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता हैं और यही सामग्री शिक्षा को न केवल स्वयं के उपकरण वरन् उसके अस्तित्व का कारण भी प्रदान करती है।

इस प्रकार विज्ञान और संस्कृति के समन्वित स्वरूप को ही पुनर्निमाण का आवश्यक तत्व समझते हैं और अगाह करते है।

विश्व का ज्ञान हमारी थाती हैं।मानव जाति का अनुभव हमारी सम्पत्ति हैं विज्ञान किसी देश की बपौती नहीं हैं वह हमारे ही अभ्युदय का साधन बनेगा।

समस्या की उत्पत्ति :-

समस्त सृष्टि के रचनाकार परम पिता परमेश्वर ने मनुष्य के रूप में अपनी सर्वोत्तम कृति का सृजन किया है। जन्म लेने के बाद कई वर्षो तक निरूपाय एवं परनिर्भर रहने वाला यह मनुष्य बड़ा होकर समस्त प्राणि जगत का स्वामी बन बैठता हैं। केवल भूमण्डल पर ही नहीं जल और नभ पर अपने पैर जमा लेता हैं। परन्तु जन्म लेने के तुरन्त बाद चलना-फिरना आरम्भ करने वाला हष्ट पुष्ट और स्वावलम्बी पशु (मानव)हजारों वर्षो के बाद भी, जैसा पैदा हुआ था वैसा ही है। यह सब कैसे हुआ, इसका उत्तर शिक्षा है। शिक्षा अर्थात सीखने सिखाने की क्षमता। मानव की ऐसी विशेषता जो उसे पशु जगत से बहुत ऊचाँ उठा देती हैं। शिक्षा के माध्यम से ही मानव जाति के द्वारा अर्जित सहस्त्रों वर्षो के अनुभव तथा संस्कृति बालक को हस्तान्तरित कर दिये जाते है।जिससे उसका शारीरिक, मानसिक, सौन्दर्यात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास होता है।

अतः मानव के ज्ञान विज्ञान की प्रगति में शिक्षा की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका हैं

" इस प्रकार हम देखते हैं। कि भौतिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में जो भी मानव की उपलब्धियाँ हैं। चाहे वे गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के रूप में हो अथवा चन्द्रमा तक जाने वाले यान के रूप में कला और साहित्य द्वारा सौन्दर्यनूभूति के रूप में हो अथवा समाज रचना क विभिन्न आयामों के रूप में हो वे आश्चार्यजनक हें। और उन सब के पीछे मानव की यह शैक्षिक क्षमता ही है।"[1]

अतः यह बात निर्विवाद रूप से सत्य हैं कि-

" व्यक्ति के मानसिक विकास में शिक्षा की उल्लेखनीय भूमिका होती हैं शिक्षित व्यक्ति राष्ट्र को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता हैं।"[2]

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेष भूमि अपनी भौगोलिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक परम्पराओं के कारण एक विशेष प्रकार की संस्कृति विकसित हो जाती हैं । वह राष्ट्र अपनी उस विशेष संस्कृति के अनुकूल ही अपनी व्यवस्थायें बनाकर उन्नति कर सकता हैं,लकिन

"इतिहास ने भारतीयों के साथ क्रूर मजाक किया मुस्लिम आक्रान्ताओं ने स्वतंत्र चिन्तन और अध्ययन को अपराध और द्रोह घोषित कर दिया।तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों में संग्रहीत भारतीय बौद्धिक विरासत की अन्त्येष्टि कर भारतीय दर्शन के मूल तत्व को अप्रमाणिक कर दिया गया।"[3]

परतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत को एक दास की तरह शासक राष्ट्र की भाषा एवं संस्कृति को स्वीकार करना पड़ा। बलात् लदी हुई संस्कृति अत्यन्त भयावह होती हैं और भारत के साथ यही हुआ। अग्रेंजो ने अपनी शिक्षा नीति के द्वारा हमें ऐसा मीठा जहर पिलाया कि हम स्वयं अपनी संस्कृति और परम्पराओं को भूलने लगे अथवा उनसे घृणा करने लगे साथ ही हमें पश्चिमी भाषा ,पश्चिमी चाल चलन अच्छे लगने लगे, जो हमारे लिये अत्यन्त खतरनाक सिद्ध हुये।

इस प्रकार भारतीय दर्शन तथा इतिहास विश्व के सामने हास परिहास की सामग्री बन गया। उपहास करते हुये लार्ड मैकाले ने अपनी पुस्तक "मिनिट ऑफ 1835" में

---

1. विद्यालोक वार्षिक पत्रिका, राष्ट्रीय पुर्नजागरण में शिक्षा का महत्व -पृष्ठ 29

चन्द्रपाल सिंह - भारतीय शिक्षा समिति (उ. प्र.)

2. संदेश 10+2+3 -शिक्षा प्रणाली विशेषांक 1977 -कमलापति त्रिपाठी (त्कालीन रेल मंत्री भारत सरकार)

3. दैनिक जागरण 19 अप्रैल 1984 - साप्ताहिक परिशिष्ठ शिक्षा बनाम सरकारी प्रचार (दीपक वाजपेयी)

लिखा है।

" मुझे एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सका जो इस तथ्य को नकार सके कि अच्छी यूरोपीय किताबों की एक अलमारी की कीमत भारत और अरब में लिखे गये साहित्य से अधिक हैं। संस्कृत भाषा में लिखी गई सारी पुस्तकों का सार इंग्लैण्ड में प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु के समक्ष बौना साबित होगा। उनका (भारतीयों का) खगोल विज्ञान ऐसा है कि इंग्लैण्ड के बोर्डिग स्कूल की किशोरियों में विनोद का विषय बन जायें। इतिहास ऐसे राजाओं का जो 30 फीट लम्बे थे और 30 हजार साल लम्बे ....यानि झूठा इतिहास, झूठा भूगोल, झूठा खगोलविज्ञान।"

" इस कुप्रचार में मिशनरियॉं जोर – शोर से लग गई और पश्चिम के वैज्ञानिक उपलब्धियों के जागरण में भारतीय दर्शन का उद्घोष दब गया।"[1]

1947 के बाद हम अग्रेंजो के चगुंल से छूटे तो हमें चाहिये था कि हम अपनी स्वतंत्रत शिक्षा नीति को कार्यान्वित करते।..............................गॉंधी, विनोबा

" आज भारत के शिक्षित वर्ग के जीवन मूल्यों पर पश्चिम का यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता हैं। हमें निर्णय करना पड़ेगा कि यह प्रभाव अच्छा हैं या बुरा।जब तक अग्रेंज थे तव तक तो हम स्वदेशी की भावना से अग्रेंजियत को दूर रखने में ही गौरव समझते थे,किन्तु अव जब अग्रेंज चले गये हैं।तब अग्रेंजियत पश्चिम की प्रगति का द्योतक एवं माध्यम बनकर अनुकरण की वस्तु बन गई है।"[2]

विचारोपरान्त हम पायेंगे कि–

" विश्व ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि हमारा मार्गदर्शश्न कर सकें।वह तो स्वयं चौराहे पर हैं। ऐसी अवस्था में हम उससे किसी प्रकार का मार्गदर्शन नहीं पा सकते।"[3]

किसी भी राष्ट्र के समुचित विकास के लिये उसको अपने सांस्कृतिक आर्दशों के अनुकूल आगे बढ़ने हेतु उचित शिक्षा की महती आवश्यकता होती हैं, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही समाज में वांछित परिवर्तन लायें जा सकते हैं। इजरायल जैसे छोटे देश से हमें प्रेरणा प्राप्त

---

1. दैनिक जागरण 19 अप्रैल 1984 – साप्ताहिक परिशिष्ठ शिक्षा बनाम सरकारी प्रचार (दीपक वाजपेयी)

2. राष्ट्रवाद की सही कल्पना – एकात्म मानव दर्शन

3. राष्ट्रवाद की सही कल्पना – एकात्म मानव दर्शन

करनी चाहिये। हमारी दिल्ली की आबादी से भी कम चारों ओर से मुस्लिम अरब देशों से घिरा हुआ सफलतापूर्वक सीना तानकर खड़ा हैं। इसका केवल एक ही कारण हैं कि स्वतंत्र होते ही उसने अपनी पुरानी हिन्दू भाषा को ही अपनी राष्ट्र भाषा बनाया और एक हम थे जिनके आधुनिक भारतीय शिक्षा की आधारशिला अग्रेंजो के द्वारा रखी गई थी तथा शिक्षा के उददे्श्यों का वर्णन करते हुये मैकाले ने स्वयं कहा था -

" वर्तमान में हमें एक ऐसा वर्ग बनाने का प्रयास करना जो एक ओर तो रंग में तो भारतीय हो पर स्वभाव, विचारों, नैतिकता और बौद्धिकता में अग्रेंज। ताकि वे हमारे ओर करोड़ों भारतीयों के बीच दुभाषिये का कार्य कर सकें जिनके ऊपर हम शासन करते हैं।"[1]

इसी आधुनिक शिक्षा के ऊपर टिप्पणी करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास में अपने एक भाषण में कहा था -

" प्रथमतः कोई व्यक्तित्व निर्माण के लिये यह शिक्षा नितान्त अनुपयोगी हैं। यह समग्रता में मात्र नकारत्मक शिक्षा हैं नकारात्मक शिक्षा या प्रशिक्षण मृत्यु से भी वद्तर होता हैं। विद्यालय में प्रवेश के पश्चात् बालक जिस प्रथम तथा द्वितीय से परिचित होता हैं वह यह कि उसके पिता मूर्ख हैं दूसरा यह कि उसके पितामह पागल हैं, तीसरा यह कि उसके अध यापक ढकोसलावादी हैं और चौथा यह कि उसके सारे धर्म ग्रन्थ झूठ का संग्रह हैं।सोलह वर्ष की आयु तक वह नकार की गठरी बन जाता है निर्जीव और रीढ़हीन।"[2]

प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुये अर्लआफ रोनाल्ड शे ने कहा था कि-

" इस शिक्षा का परिणाम यह निकला कि प्राचीन ज्ञान का लोप हो गया। प्राचीन संस्कृति और परम्परायें एक ओर ठुकरा दी गई और वैदिक धर्म को यह कहकर तिरस्कृ त कर दिया कि यह तो गया बीता अन्ध विश्वास हैं।"[3]

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार -

"अग्रेंजी पढ़ने में कोई दोष नहीं हैं परन्तु इस शिक्षा ने हमें

---

1. मैकाले का विवरण पत्र, 1835 का निस्पन्दन सिद्धांत- भारतीय शिक्षा का इतिहास -पी. डी. पाठक, पृष्ठ 87

2. दैनिक जागरण 17 अप्रैल 1984 - साप्ताहिक परिशिष्ठ शिक्षा बनाम सरकारी प्रचार (दीपक वाजपेयी)

3. सम्पादकीय, प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना - शैक्षिक प्रगति विशेषांक 1996, पृष्ठ 17

अभारतीय और अधार्मिक बना दिया हैं। सच्ची वैदिक और भारतीय शिक्षा के बिना हम शारीरिक रूप से भले ही स्वतंत्र होने का प्रयास कर लें परन्तु मानसिक और आत्मिक दृष्टि से सदैव दास बने रहेंगे।''[1]

श्रीमती एनीबेसेन्ट ने भारत की आधुनिक शिक्षा की आलोचना करते हुये कहा कि-

'' भारत में आधुनिक शिक्षा केवल मानसिक और बौद्धिक स्वरूप के प्रशिक्षण तक ही सीमित हैं।उसने व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप के विकास को ,भावात्मक विकास को तथा शारीरिक विकास और प्रशिक्षण को बिल्कुल ही भुला दिया हैं।''[2]

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में

'' धर्म हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का अंग होना चाहिये। यह जीवन की दिशा हैं विकास की दिशा हैं और यह भारत में कल्याण का मार्ग हैं धर्म के बिना भारतीय शिक्षा राष्ट्रीय नहीं हो पायी।''[3]

इस शिक्षा व्यवस्था के परिणाम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हमारे सामने आये। अपनी पुस्तक ''ए सेक्युलर एजेण्डा '' में अरूण शौरी ने लिखा हैं।

'' इस सरकारी प्रचार (शिक्षा) ने शिक्षार्थियों में यह हीन भावना भर दी हैं कि हमारी संस्कृति हीन हैं जिसने हमें परतंत्रता विरासत में दी।''[4]

इस प्रकार प्रचलित शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की बात को ध्यान में रखते हुये स्वतंत्रता के बाद पुनः निर्माण और समीक्षा के दौर में शिक्षा को भी विषय बनाया गया। अनेकोंनेक आयोंगो एवं समितियों का गठन किया गया। ताराचन्द्र समिति 1948 माध्यमिक शिक्षा एवं राधाकृष्णन आयोग 1948-49 उच्च शिक्षा तथा मुदालियर आयोग 1952-53 माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिये गठित किये गये।तदुपरान्त सम्पूर्ण शिक्षा पर विचार करने के लिये 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा आयोग का गठन हुआ । इस आयोग

---

1. सम्पादकीय, प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना - शैक्षिक प्रगति विशेषांक 1996, पृष्ठ 17
2. सम्पादकीय, प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना - शैक्षिक प्रगति विशेषांक 1996, पृष्ठ 17
3. सम्पादकीय, प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना - शैक्षिक प्रगति विशेषांक 1996, पृष्ठ 17
4. दैनिक जागरण 17 अप्रैल 1984 - साप्ताहिक परिशिष्ठ शिक्षा बनाम सरकारी प्रचार (दीपक वाजपेयी)

ने शिक्षा के सभी क्षेत्रों पर विचार किया और विशाल ग्रन्थ के रूप में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसके बाद हमारे युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉधी ने सांस्कृतिक विरासत की पुनः प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये शिक्षा प्रणाली में मौलिक परिवर्तन की बात सोची और 1986 में नई शिक्षा नीति निर्धारित करने की घोषणा की।

इस नई शिक्षा नीति के समर्थन में अति उत्साही नवयुवक श्री विमल तिवारी (तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष राष्ट्रीय छात्र संगठन कांग्रेस) ने लक्ष्मी व्यायमशाला झॉसी में कार्यकर्ता सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये यहाँ तक कह डाला कि " वास्तव में अभी तक हम लोग स्वतंत्र नहीं थे लेकिन नई शिक्षा नीति 1986 के लागू हो जाने से हमें स्वतंत्रता का अनुभव हो रहा हैं।

अतः शिक्षा प्रणाली और पाठ्यचर्चा के सुधार के सतत् प्रयास होते आ रहें हैं।शिक्षा के अनेकों बार पुर्नसमीक्षा की सकरी गलियों से गुजरना पड़ा। उसके समीक्षक और मार्गदर्शक प्रायः वे ही थे जो मैकाले की रीढ़हीन बुद्धिजीवी निर्मात्री शिक्षा व्यवस्था के दशवें शिकार थे।

कुल मिलाकर वर्तमान शिक्षा का जो स्वरूप हमारे सामने आता हैं वह नितान्त औपचारिक हैं जिसमें शिक्षा शुद्ध कृतिम विधियों से आगे बढ़ती हैं और पुस्तकीय ज्ञान रटाकर शिक्षार्थी को पण्डित बना देना जिसका लक्ष्य है। जबकि शिक्षा का उददे्श्य केवल कतिपय विषयों की जानकारी दंना मात्र नहीं हैं। शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक ,नैतिक तथा आध्यत्मिक विकास इस प्रकार होना चाहिये कि वह अपने पैरों पर खड़ा होकर समाज और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूरी तरह से निर्वाह कर सकें। इस प्रकार बालक का सर्वागीण विकास ही शिक्षा का उददे्श्य है।

उपरोक्त समस्त बातों का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करने के उपरान्त शोधार्थी के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हुआ कि विश्व के प्रत्येक देश की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं और हमारे राष्ट्र का भी अपना अलग व्यक्तिव है। हमें अपने राष्ट्र के व्यक्तित्व के अनुरूप चतुर्दिक विकास करना है। इसके लिये यह आवश्यक हैं कि हम प्रगति की दौड़ में पीछे न रहे।अपने विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा पर बल दें और इस शिक्षा से अपने आध्यत्मिक विरासत से सम्बद्ध करें।

विश्व के अनेंको कर्मयोगियों मनीषियों एवं कर्णधारों ने समाज के लिये सर्वस्व अर्पण करने के बाद भी स्वयं के बारे में एवं अपने कार्यो के बारे में कुछ भी नहीं लिखा।मानों उन्होंने समाज के लिये ही जन्म लिया हो। उन्हीं महापुरूषों की परम्परा में महात्मा गॉधी और विनोवा भावे को भी रखा जा सकता हैं। महात्मा गॉधी ने तो प्र्याप्त मात्रा में लेखन

कार्य किया हैं, लेकिन शिक्षाविद् के रूप में अपनी शैक्षिक विचार धारा को लिपिबद्ध नहीं किया गॉंधीजी साहित्यक प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक विषयो पर लेखन कार्य किया हैं। महात्मा गॉंधी जी एवं विनोबा जी ने पत्रकारिता तथा साहित्य सृजन का कार्य भी सफलता पूर्वक किया हैं। वे देश की एकता और अखण्डता के लिये पूरी तरह समर्पित थे। उन्होंने अपने जीवन के हर क्षण को समाज सेवा में लगाया। उन्होंने परिस्थितियों से पराजित होकर सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया। निडर स्वभाव, मधुर वाणी किन्तु विचारों की दृढ़ता के धनी थे। इन लोंगो ने संघर्षपूर्ण जीवन में सदैव कर्म की व्यवस्था को स्थापित किया।

उन्होंने व्यक्तिगत सुख सुविधा की कभी परवाह नहीं की।वे सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे इन लोंगो के नाम देश के उच्चतम नेताओं के साथ बड़े ही आदरपूर्वक लिया जाता हैं।विश्व भर में चलने वाले आज के सभी राजनैतिक सामाजिक तथा आर्थिक, अध ूरे वादों से ऊपर उठकर उन्होंने एक अनूठे मौलिक एवं सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया हैं।

शोधकर्ता की दृष्टि से ऐसे महापुरूष के विचारों का अध्ययन समाज एवं राष्ट्र के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा तथा इनके शैक्षिक विचारों से भारतीय शिक्षा को राष्ट्रीय चेतना प्राप्त होगी।

आज सम्पूर्ण जगत में पिछली किसी भी सदी से ज्यादा शिक्षा हैं ज्यादा विद्यालय है। लेकिन आज पिछली किसी भी सदी से ज्यादा अशान्ति हैं, दुख हैं ज्यादा पीड़ा हैं, घृणा हैं, ईर्ष्या है, जलन हैं अतः निश्चित ही कहीं किसी कोई बुनियाद में खराबी हैं और इस तरह की खराबी का दायित्व और किसी पर इतना ज्यादा नहीं हैं जितना उन पर जिनका सम्बन्ध शिक्षा से हैं चाहे वह शिक्षक हो अथवा विद्यार्थी।

"सा विद्या या विमुक्तये " लेकिन वर्तमान शिक्षा हमको मुक्ति का मार्ग नहीं बताती । हम लोंगो को विद्यावान बनायें, डॉक्टर बनायें, गणितज्ञ बनायें लेकिन यह सब विद्या नहीं यह सब आजीविका के साधन व उपाय हैं। हम बच्चों को पढ़ा रहें हैं विदेश पढ़ने के लिये भेज रहें हैं। हम समझ रहे हैं हम बड़ा काम कर रहे हैं हम केवल जीविकोपार्जन की कुशलता उन्हें सिखाते हैं। शिक्षा से उनका कोई नाता नहीं जोड़ रहे हैं। शिक्षा का नाता हैं जीवन में श्रेष्ठतर मूल्यों का जन्म थे।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा हैं -

"हमें शिक्षा की आवश्यकता हैं जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता हैं मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती हैं बुद्धि का विकास होता हैं। मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता हैं।"[1]

शोधकर्ता

(कु. अर्चना गुप्ता)

झाँसी
10 अक्टूबर, 1999

1. आधुनिक भारतीय शिक्षा शास्त्री, स्वामी विवेकानन्द - शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, पृष्ठ 281

अध्याय : प्रथम

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं शोध योजना

अध्ययन का महत्व, अध्ययन का उद्‌देश्य, अध्ययन विधि, अध्ययन स्त्रोत, समस्या का सीमांकन, उपकल्पना, सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण।

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं शोध योजना

अध्ययन का महत्व :-

शिक्षा मानव के विकास की आधारशिला है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास होता है, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि होती है तथा व्यवहार मे परिवर्तन होता है। वह सभ्य एवं सुसंस्कृत प्राणी बनता है। बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्रियों द्वारा समय-समय पर शिक्षा में पाये जाने वाले गुण दोषों की ओर ध्यान दिया जाता रहा है। शिक्षाशास्त्रियों का यही प्रयास रहा है, कि अपनी शिक्षा प्रणालियों का जो रूप प्रस्तुत करें वह देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करे तथा अतिउत्तम हो।

वर्तमान शताब्दी के जिन दो भारतीय चिन्तको तथा शिक्षाशास्त्रियों को शोध हेतु चुना गया है, वे हैं महात्मा गाँधी तथा संत विनोबा भावे।गाँधीजी एवं संत विनोवा भावे भारत के प्रमुख शिक्षा शास्त्री माने जाते है। स्वतंत्रता के वाद भारत में जो बेसिक शिक्षा प्रणाली प्रस्तुत की गई उस पर दोनों महानुभावों की स्पष्ट छाप है।

प्रश्न है ये कौन से विचार है, जिन्होंने मुझे इन महानुभावों के विचारों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में अध्ययन करने के लिये प्रेरित किया है? प्रथमतः यह कि ये लोग रूढ़िवादिता के विरोधी हैं साथ ही भारतीय परम्पराओं एवं संस्कृति का उचित आदर करने वाले है, पर इसके साथ-साथ ही ये नवीन विचारों तथा प्रक्रियाओं के प्रति भी संवेदनशील है तथा उन्हें ग्रहण करने के पक्ष में है। गाँधीजी एवं विनोबाजी दोनो ही सत्याग्रही है। वे सत्य का दृढ़ता से अवलम्बन करते है और इस बात की परवाह नही करते है, कि वहुमत क्षुब्ध है अथवा अधिकारी एवं प्रशासक वर्ग अप्रसन्न है। दूसरे, ये दोनो महानुभाव संकीर्णता एवं धर्मान्धता के विरोधी है। ये सहानुभूतिपूर्वक राष्ट्रीय घटना एवं स्थिति का अध्ययन करने तथा राष्ट्रीय मूल्यों के मूल्यांकन के पक्ष में है। केवल राष्ट्रीयता के पक्ष में ही नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय भावना को वढ़ावा देने वालों में से थे। लेकिन इसके साथ ही साथ इनका मत है कि अपनी ही भूमि पर और अपनी ही संस्कृति के वैभव पर खड़े रहो, तभी अपने आस-पास की सम्पति को देख एवं समझ सकोगे। हमारे इस एकात्मक विश्व में मानव जाति के समक्ष एक जैसी ही समस्यायें है, जो परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और इनसे पीड़ित वर्तमान पीढ़ी के उद्धार के लिये आवश्यक है कि हम इन महानुभावों के विचारों का गहनता पूर्वक अध्ययन करें।

अब तक शिक्षा सम्वन्धी जो अनुसंधान किये गये है, वे केवल व्यवसायिक

शिक्षाशास्त्रियों के द्वारा ही नहीं हुये है। बल्कि विचार जगत के मनीषियों के द्वारा हुये हैं। इन लोंगो का विद्यालयीय शिक्षा से उतना अधिक सम्बन्ध नही था जितना अधिक सम्बन्ध मनुष्य जीवन तथा राष्ट्र के भविष्य से था। इस दृष्टि से इनका शिक्षा सम्बन्धी योगदान और भी अधिक महत्वपूर्ण है। अत्यन्त कठोर तथा राष्ट्रीय जीवन में लगे हुये होकर भी इन्होंने चिन्तक, लेखक तथा विद्या मंदिर के पुजारी के रूप में कुछ चिन्ह छोड़े हैं। देश उस समय परतंत्रता के वेड़ियों में जकड़ा हआ था और अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई थी और ये लोग उसी के निराकरण में श्रद्धापूर्वक अपना सारा समय और शक्ति लगाते रहे। दुर्भिक्षों, बाढ़ों, महामारियों, विभाजन, धर्मान्धता तथा शरणार्थियों के पुर्नवास ,शांतिपूर्ण, प्रगतिशील और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना सम्बन्धी कठिनाईयों एवं हमारी काया तथा आत्मा दोनो प्रसव वेदना का कष्ट सह रही थी। ऐसी विकट स्थिति में जवकि सभ्य जीवन खतरे में था उन लोंगो का पुनरूद्धार के कार्य में लगना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार हम देखते है,कि महात्मा गाँधी एवं संत विनोबा भावे महान दार्शनिक, राजनैतिक, देशप्रेमी एवं कर्मयोगी थे। जहाँ एक और वे घोर राष्ट्रवादी देश भक्त एवं समाज सुधारक थे वहीं दूसरी और शिक्षा के क्षेत्र मे अपने निजी विचार रखने कें कारण उच्च कोटि के दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री भी रहें है।

महात्मा गाँधी एक ऐसे व्यक्ति थे जो सत्य, अहिंसा एवं शान्ति के सिद्धान्तों मे विश्वास रखते थे। सत्य को हमेशा अजेय मानते थे। गाँधीजी केवल राजनैतिज्ञ ही नहीं थे वरन् वे उच्च कोटि के समाज सुधारक भी थे। उन्होंने सदैव जातिवाद का विरोध किया और सभी लोंगो में सभी धर्मों के प्रति सम्मान और सहानुभूति को जागृत किया। उनका अपना विचार था कि हम सब एक ही ईश्वर की संतान है, इसमें न तो कोई बड़ा और न ही कोई छोटा है। गाँधीजी यह पक्ष अत्यन्त प्रसिद्ध तो है ही, किन्तु साथ ही इससे भी अधिक उनके शैक्षिक विचार महत्वपूर्ण हैं। शिक्षण के क्षेत्र में उन्होंने वास्तव में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया। जिससे प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो सकता है तथा अपने बच्चों को शिक्षा दिला सकता है। गाँधीजी ने बेसिक शिक्षा का व्यवहारिक रूप प्रदान किया है। वे चाहते थे कि शिक्षा ऐसी हो जिसे गरीब-अमीर एवं छोटा, बड़ा सभी वर्ग एवं जाति के व्यक्ति प्राप्त कर सकें। अतः इन्होंने अपनी शिक्षा में व्यवहारिकता और आत्म निर्भरता को अधिक महत्व दिया जिससे देश के सामाजिक, सांकृतिक, धार्मिक, नैतिक ,राजनैतिक, आर्थिक, तकनीकी एवं प्रोद्यिगिक विकास हेतु सही दिशा मिल सके।

विनोवाजी का जीवन समाज की सेवा के लिये समर्पित जीवन था। उनकी साधना ज्ञानपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी है। व्यक्ति का हित सारे समाज में निहित है। यही उनकी साधना का मूल मंत्र प्रतीत होता है। उनकी साधना जितनी व्यक्तिगत है उतनी सामूहिक भी। वह अपने

गुरू महात्मा गाँधी के विचारों को सार्थक बनाने के लिये गाँव-गाँव एवं नगर-नगर में पैदल घूमकर अपने गुरू का संदेश पहुँचाते थे। विनोबाजी का सम्पूर्ण जीवन, विलक्षणता, शारारिक शक्ति, बुद्धि की तीक्ष्णता, विनोद, जीवन शिक्षा, कार्य पद्धति आदि का सुन्दर उदाहरण है। उन्होंने जो भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आदि का संदेश दिया, जो कि मानव समाज के विकास का मूल आधार है।

महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे दोनों ही आधुनिक आदर्शवादी शिक्षाविदों में आते है तथा दोनो ने ही भारतीय समस्यायों को समझा है तथा दोनो में कुछ समानतायें तथा कुछ विषमतायें है। दोनो ने ही भारतीय परिस्थिति के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था प्रस्तुत की है । अतः दोंनों विद्धानों के शैक्षिक विचारो का नई शिक्षा नीति के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन शिक्षा जगत के लिये उपयोंगी सिद्ध होगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में रूचि रखने वाले व्यक्तियों का यह सोचना स्वाभाविक तथा उचित ही है, कि इन विचारकों के लाभकारी विचारों के बावजूद अनुकूल प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई ? विद्यार्थियों के दिन प्रतिदिन कें कार्यो में इनकी उपेक्षा क्यों हुई ? सिद्धांत और व्यवहार की यह खाई भयावह है और हमारे शिक्षाशास्त्रियों की दृष्टि मे सबसे आवश्यक कार्य जितनी जल्दी सम्भव हों इस खाई को पाटना ही होना चाहिये और आन्तिरक तथा बाहरी विध्न बाधाओं को मार्ग से हटाना होना चाहिये। इस शोध प्रंबध में शोधार्थिनी यह विचार प्रस्तुत करेगी, कि इन महानुभावों के विचारों को नई शिक्षा नीति ने कहाँ तक लिया है? और नवीन शिक्षा नीति इन महानुभावों के विचारों से कहाँ तक अलग हैं ? सामान्यतः शोधार्थिनी का उन कारणों पर भी प्रकाश डालेगी जिनके फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में हमारी प्रगति मंद रही है। मैंने यह शोध विषय इस आशा से लिया है, कि हमारे शिक्षक भविष्य में गाँधी एवं विनोबा के विचारों का आलोचनात्मक और अनुभूतिशील अध्ययन करेंगे और शिक्षातंत्र को ऐसा स्वरूप प्रदान करेंगे जो इन विचारों का मूर्तिमान रूप होगा। इसके द्वारा उन्हें शिक्षा प्रणाली के लाभदायक स्वरूप तथा विद्यार्थियों के लिये आवश्यक गुणों तथा परिश्रमपूर्ण एवं उद्योंग केन्द्रित शिक्षा की आवश्यकता, एवं ग्रामसेवा की आवश्यकता आदि बातों का ज्ञान होना। इसके साथ उन्हें पता चलेगा कि वर्तमान समाज की सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को सर्वोदय के सिद्धांत के द्वारा किस प्रकार दूर किया जा सकता है। गाँधीजी एवं विनोबा के सिद्धांत एवं व्यवहार पक्ष का नवीन शिक्षा नीति में आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन होगा।

अध्ययन का उद्देश्य :-

उद्देश्यों के विना किसी भी कार्य की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी भी कार्य के करने से पहले उसके उद्देश्यों की कल्पना हमारे मन मस्तिष्क में अवश्य रहती है। बिना उद्देश्य के कार्य करना दिशाहीन जहाज की तरह भटकना मात्र होता है। उद्देश्य ही मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करते है और निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होते है। अतः जान ड्यूबी का यह कथन अक्षरशः सत्य है, कि उद्देश्य सहित कार्य करना ही कुशलता या बुद्धिमानीपूर्वक कार्य करना है।

उद्देश्य निश्चित कर लेने से ही कार्य आसान हो जाता है और लगभग आधी सफलता प्राप्त हो जाती है। महाभारत में एक कथन है, कि गुरू द्रोणाचार्य शिष्यों की परीक्षा ले रहे थे कि कौन कितना धनुर्विद्या में पारांगत हो गया है। युधिष्ठर और अर्जुन सहित सभी पाण्डव पुत्र पूरी तरह तैयार थे। गुरूजी ने कहा देखों कि पेड़ पर चिड़िया बैठी है। इसकी आँख पर निशाना लगाना है। जो इसकी आँख पर तीर मार देगा। वह धनुर्विद्या में सफल माना जायेगा। इसके बाद गुरूजी ने एक-एक करके प्रश्न पूछा कि युधिष्ठर आपको क्या दिखाई दे रहा है ? युधिष्ठर ने उत्तर दिया पेड़, पत्ते, चिड़िया और चिड़िया की आँख गुरूजी। इसी प्रकार उपस्थित सभी शिष्यों ने उत्तर दिये, लेकिन अर्जुन ने कहा कि मुझको केवल चिड़िया की आँख ही दिखाई दे रही है केवल गुरूजी। उसने निशाना लगाया और चिड़िया की आँख में लगा। जवकि अन्य सभी लोंगो के निशाने चूक गये। इसी प्रकार कहा गया -

जिन ढूढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूडन डरा किनारे बैठ।।

अर्थात उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये दृढ़ इच्छा शक्ति की आवश्यकता होती है। यहाँ तक की प्राणों की बाजी भी लगाना पड़ सकती है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाओं में लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किशोंरो के हृदय में प्रबल इच्छा शक्ति जागृत करने की प्रेरणा दी जाती है। खेल और गानों के माध्यमों से इन्हें शिक्षित किया जाता है।

हम उद्देश्यों को सामने रखकर कार्य करते है, तो उसे पूर्ण करने के लिये अपनी शक्ति और बुद्धि लगा देते है। जिससे समय तो कम लगता ही है। कार्य भी श्रेष्ठता से सिद्ध होता है। हमें यह भी ध्यान रखना पड़ता है, कि किसी भी कार्य को सफल बनाने के लिये मात्र उद्देश्यों का निर्धारण ही पर्याप्त नहीं होता वरन् उद्देश्यों की गुणवत्ता भी आवश्यक होती है।

उपर्युक्त उद्देश्य ही मनुष्य को सफलता की ओर ले जाते हैं। इसी

बात को ध्यान में रखकर शोधार्थिनी ने अपने इस शोध में उद्देश्यों का निरूपण किया है। भारत के लिये एक ऐसे वैधानिक दर्शन की आवश्यकता है जो भारतीय राष्ट्रीय परिवेश के सर्वथा अनुकूल हो। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से लाभकारी और राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाने में समर्थ हो।

शोधार्थिनी का उद्देश्य इस अध्ययन में निम्नलिखित है :-

1. महात्मा गाँधी एवं विनोबा के शैक्षिक विचारों का शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, गुरू शिष्य सम्बन्ध, विद्यालय व्यवस्था, शैक्षिक अभिकरण की भूमिका के अन्तर्गत अध्ययन करना।
2. महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे के शिक्षा दर्शन पर प्रभाव डालने वाली परिस्थितियों का अध्ययन करना।
3. महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे के शिक्षा दर्शन पर प्रभाव डालने वाले उनके दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों को प्रकाश में लाना और उनके शिक्षा के आधारों को खोजना।
4. महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों के गुण दोषों का विवेचन करना एवं भारतीय शिक्षा दार्शनिकों में उनके स्थान को स्पष्ट निर्धारित करना।
5. महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे द्वारा प्रस्तुत जूनियर हाईस्कूल तक की बेसिक शिक्षा योजना को नवीन शिक्षा के अन्तर्गत लागू किया जा सकता है या नहीं इस बात का अध्ययन करना।
6. इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह भी है, कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करते हुये कुछ ऐसे विचार प्रस्तुत किये जायें जिससे वर्तमान शिक्षा प्रणाली को उचित ढंग से क्रियान्वित किया जा सके।

अध्ययन विधि :-

प्रस्तुत शोध कार्य के अध्ययन में ऐतिहासिक, तुलनात्मक, वर्णात्मक, तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय एवं मूलमीमांसीय अध्ययन विधि का विशेष रूप में प्रयोग किया जायेगा।

शोधार्थिनी को अपने शोध कार्य को पूर्ण करने के लिये किसी न किसी विधि को अपनाना पड़ता है। शोध समस्या की प्रकृति के अनुसार ही शोध विधि का प्रयोग किया जाना चाहिये अर्थात अध्ययन विधि का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है, कि समस्या का स्वरूप क्या है ? विद्वानों ने अनेकों शोध विधियों की खोज की है।जिनमें कुछ विधियां जो ऊपर दर्शायी है प्रमुख है।

शोधार्थिनी अपने इस शोध विषय में ऐतिहासिक शोध विधि, तुलनात्मक , वर्णात्मक, तत्वमीमांसीय, ज्ञानमीमांसीय एवं मूलमीमांसीय अध्ययन विधि का विशेष रूप मे प्रयोग किया जायेगा जो इस प्रकार है।

ऐतिहासिक शोध विधि :-

इस विधि में ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूँढ़कर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उनकी व्याख्या और आलोचना के आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते है। यह विधि अतीत के इतिहास का किसी विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन करती है और संग्रहीत सामग्री की व्याख्या और विवेचना करके सम्बद्ध, तर्कसंगत निष्कर्षो तक पहुँचती है। इतिहास ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उसकी प्रमुख घटनाओं और उन्नत क्रम का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन से वर्तमान की समस्या का समाधान करने के लिये अतीत के अनुभवों मे लाभ उठाया जा सकता है।

ऐतिहासिक विधि में शोधार्थिनी के सामने यह कठिनाई होती है कि उसके पास प्रथम दृष्ट सूचनायें नहीं होती अर्थात घटनायें भूतकाल में घट चुकी होती है। उनका साक्षात्कार नही किया जा सकता है। मूल लेखों के अन्दर झाँककर नहीं देखा जा सकता है। अतः उसको उपलब्ध सामग्री पर ही विश्वास करना पड़ता है। अतीत की घटनाओं के सम्वन्ध में वह कुछ कर भी नहीं सकता भले ही उपलब्ध आँकड़े कम विश्वसनीय ही क्यों न हो उसे उन्हीं पर आश्रित होकर शोध कार्य पूरा करना होता है।

तत्वमीमांसीय शोध विधि :-

गाँधी जी के अनुसार मूल तत्व दो है पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति

(पदार्थ) और इनमें श्रेष्ठ है ईश्वर। नित्य है इसलिए सत्य है पदार्थ अनित्य है ईश्वर पदार्थ की सहायताा से वस्तु जगत का निर्माण करता है। आत्मा को ये परमात्मा का अंश मानते थे। और चूंकि परमात्मा सत्य है इसलिए आत्मा भी सत्य है मनुष्य को ये शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का योग मानते थे। और यह मानते थे कि उसके जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्म ज्ञान, ईश्वर प्राप्ति अथवा मोह है।

ज्ञान मीमांसीय अध्ययन विधि :-

गाँधी जी ने ज्ञान को दो वर्गो में बांटा है। भौतिक ज्ञान और आध यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान के अंतर्गत उन्होने भौतिक जगत एवं मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों (सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक) को रखा है। और दूसरे वर्ग में सृष्टि सृष्ठ तथा आत्मा परमात्मा सम्बंधी ज्ञान को रखा है। उनकी दृष्टि से मनुष्य के लिए दोनो ही प्रकार का ज्ञान आवश्यक है। भौतिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होने स्वयं करके, स्वयं के अनुभव से सीखने पर बल दिया है और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए गीता के पाठ भजन-कीर्तन, एवं सत्संग के महत्व को स्वीकार किया है।

आचार मीमांसीय अध्ययन विधि :-

गाँधी जी के अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति से उनका अर्थ संसार के आवागमन से छुटकारा नहीं था वे आत्मा परमात्मा के नित्य स्वभाव को जानकर उनकी शरण में पहुंचने को मुक्ति मानते थे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होने ग्यारह व्रतों (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्प्रश्यता, निवारण, कार्यिक, श्रम, सर्व धर्म समभाव और विनम्रता) का पालन करने पर बल दिया है। उनकी दृष्टि से भौतिक जीवन के लिए भी इन ग्यारह व्रतों का महत्व है। गाँधी जी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को इन व्रतों का पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति इन व्रतों का पालन करेगा, वह सच्चे अर्थो में सर्वोदयी होगा। गाँधी जी के विचार से ऐसा उदार हृदय व्यक्ति ही आत्म तत्व की अनुभूति कर सकता है।

अध्ययन के स्त्रोत :-

महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे के शिष्य सम्वंधी विचार उनके द्वारा रचित विभिन्न पुस्तकों में विखरे पड़े हैं। महात्मा गाँधी के शिक्षा संवंधी विचार उनकी पुस्तकों विद्यालय से शरीर श्रम, शिक्षा का माध्यम, समाज में स्त्रियों का स्थान एवं कर्म, स्त्रियां एवं उनकी समस्या, त्याग का संदेश, संबंधी विचार उनकी पुस्तकों, शिक्षा में क्रान्ति और आचार्य कुल शांति यात्रा, शिक्षा विचार, विनोबा के विचार, जीवन और शिक्षा में मिलते हैं।

नवीन शिक्षा नीति के अध्ययन का स्त्रोत संसद द्वारा पारित 1986 में नवीन शिक्षा नीति पर प्रतिवेदन तथा उस पर वाद में अन्य विद्धानों द्वारा लिखे गए ग्रंथ होंगे। शोधार्थिनी का उद्देश्य इन ग्रंथों से शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम शिक्षा विधि, शिक्षा प्रशासन गुरू शिक्षा संबंध तथा अन्य शिक्षा के विविध कथनों को खोजकर उन्हें व्यवस्थित रूप देना है तथा शिक्षा शास्त्रियों के शिष्य संबंधी विचारों को नये ढंग से देखने एवं समझने की प्रेरणा मिले। अतः प्रस्तुत अध्ययन में स्त्रोत के अंतर्गत इन शिक्षा दार्शनिकों द्वारा रचित ग्रंथ, लेख, भाषण, तथा उन पर अन्य विद्धानों द्वारा लिखे गए ग्रंथों का साहित्य सन्निहित है।

शोधार्थिनी ऐतिहासिक विधि के अंतर्गत प्राथमिक एवं गौण स्त्रोतों के ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूंढकर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उसकी व्याख्या और आलोचना के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेगी।

समस्या का सीमांकन :-

समस्या का सीमांकन निम्न प्रकार किया गया है -

1. गाँधी जी एवं विनोबा जी के शोधिक विचारों एवं सिद्धांतों का अर्थ नवीन शिक्षा नीति के संदर्भ में जूनियर हाईस्कूल स्तर तक का अध्ययन इस शोध प्रवंध में सम्मिलित होगा।
2. गाँधी जी एवं विनोबा जी द्वारा प्रस्तावित जूनियर हाईस्कूल तक की वेसिक शिक्षा योजना का अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबंध में शामिल किया जायेगा।

उपकल्पना :-

1. गाँधी जी एवं विनोबा जी का शिक्षा दर्शन भारतीय शिक्षा के पुनगर्ठन का आधार हो सकता है।

2. नवीन शिक्षा नीति को यदि सही रूप में कार्यान्वित किया जाये तभी गाँधी जी एवं विनोबा जी के भौतिक विचारों को सही रूप में साकार किया जा सकता है।

न्यादर्श :-

इस अध्ययन के अंतर्गत न्यादर्श के रूप में गाँधी जी एवं विनोबा जी के ग्रंथ तथा उन पर अन्य विद्धानों द्वारा लिखित ग्रंथों तथा जो शोध कार्य हुआ है उससे संबंधित साहित्य को ग्रहण किया गया है।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :-

गाँधी जी एवं विनोबा जी के विचारों को समझने के प्रयास पिछले कुछ वर्षो में हुआ है, और उन पर शोधकार्य भी हुआ है। शोध विषय चयन के पश्चात शोधार्थिनी ने विषय की जानकारी हेतु गाँधी जी एवं विनोबा जी का जीवन परिचय, उनके दार्शनिक विचारों एवं उनके शोधिक सिद्धांतों के संबंध में विभिन्न पुस्तकों पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन किया है। इन महान शिक्षा शास्त्रियों के संवंध में भारत में जो शैक्षिक अनुसंधान हुये है उसका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

विदेशों में जो शोधकार्य हुआ है शोधार्थिनी को इस समय उसकी जानकारी नहीं है। शोधार्थिनी को जो जानकारी है उसको नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है -

1. डा0 देव पुरस्कार (1964) में अपने शोध प्रबंध The Evaluatiob of the philosophy of Education in Modern India. में शिक्षा दर्शन के विकास का अध्ययन किया है। उन्होने अपने शोधग्रंथ में स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा गाँधी जी के शिक्षा दर्शन को प्रकृतिवाद, आदर्शवाद या अर्न्तराष्ट्रीयता वाद के दृष्टिकोण से आंका है।

2. डा0 चौबे ने (1962) में अपने अध्ययन ग्रंथ "Recent Philosopy in India" में आधुनिक भारतीय शिक्षा शास्त्री दयानंद, विवेकानंद, श्रीमती एनीवेसेन्ट, अरविन्द नाथ टैगोर एवं गाँधी जी के शैक्षिक विचारों की समीक्षा की है। सभी का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

3. श्री सुब्रहमण्यम (1958) ने अपने अध्ययन में गाँधी जी एवं टैगोर के शैक्षिक विचारों की तुलना की है। आधार रूप में गाँधी और टैगोर के विचारों में समानता बताई है।

4. सी0 एम0 ठाकुरे (1441) ने अपने शोध अध्ययन में चार वैदिक प्रयोगों का तुलनात्मक अध्ययन 8 किया है।

(अ) गुरूकुल पद्धति

(ब) विश्व भारती

(स) जामिया मिलिया

(द) वर्धा पद्धति यह अध्ययन मुख्यतः तुलनात्मक है।

5. लक्ष्मीलाल के ओड ने अपने ग्रंथ शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि (1973) में गाँधी जी के

शैक्षिक विचारों को प्रयोजनवादी एवं आदर्श वादी दृष्टिकोण को समन्वयात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

6. बी0 आर0 गोयल (1972) ने अपने ग्रंथ Education of the Deprssed classes in India during the British period में ब्रिटिश काल में आर्य समाज एवं गाँधी जी के कार्यो की सराहना की है। दलित वर्ग की शिक्षा के उत्थान हेतु किए गए प्रयासों को प्रस्तुत किया है।

7. डा0 पी0 एन0 नागिगो (1947) ने अपने शोध ग्रंथ में गाँधी जी के शिक्षा दर्शन तथा विश्व शांति में गाँधी जी के शिक्षा दर्शन की व्याख्या उसकी व्यवहारिक उपयोगिता एवं विश्व शांति की स्थापना में कहा तक सहायक है, प्रकाश डाला है।

8. डा0 ए0 सेन (1973) ने अपने शोध प्रबंध "महात्मा गाँधी जी के शिक्षा दर्शन" में गाँधी जी को मुख्य शिक्षा शास्त्री के रूप में स्थान दिया है। उन्होने बताया कि उनकी शिक्षा में भारतीय समस्याओं को हल किया जा सकता है।

अध्याय : द्वितीय

गाँधीजी एवं विनोबा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) गाँधी जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

महात्मा गाँधी जी का जन्म एवं शिक्षा, जीवन की महत्वपूर्ण क्रियायें, गाँधी जी के दर्शन स्त्रोत, परिवारिक पर्यावरण, विभिन्न धर्म, श्री भगवद्गीता, जैन धर्म का प्रभाव, बौद्ध धर्म का प्रभाव, यहूदी धर्म का प्रभाव, टालस्टाय का प्रभाव, गाँधी जी के सामाजिक एवं राजनैतिक लेखन कार्य।

(ख) विनोबा जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

विनोबा जी का जन्म एवं शिक्षा, विद्यार्थी जीवन, विद्यार्थी मण्डल की स्थापना, विनोबा जी का व्यक्तित्व, क्रान्ति एवं अध्यात्मिक द्वैत, अध्यात्मिक कृति के संस्कार, वैरायग्यपूर्ण जीवन, वैज्ञानिक वृति के संस्कार, विनोबा जी का आचार्यत्व, अनन्य प्रेम और वात्सल्य श्रजतापूर्ण भगवत श्रम, अध्ययनशील जीवन, गीता का अनुशीलन, कर्मयोगी के विविध प्रयोग, विनोबा जी की आश्रम व्यवस्था, जेल एक आश्रम, गाँधीजी के अधूरे कार्य को पूरा करने का व्रत, भूदान और ग्रामदान, विनोबा जी की रचनायें।

गाँधी जी एवं विनोबा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) गाँधी जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :-

अनादि काल से चले आ रहे इतिहास की ओर देखने मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि जब किसी राष्ट्र का व्यक्तित्व विश्रंखलित होने लगता है। तब राष्ट्र के संगठन के लिए किसी न किसी व्यक्तित्व का अवतरण होता है। भारत के अस्त व्यस्त होते व्यक्तित्व की कड़ियों को आवद्ध करने हेतु क्षीणकाय परन्तु महान आत्मा पोषित करने वाले दिव्य पुरुष महात्मा गाँधी जी की वाणी क्षितिज से उठी और समस्त देश में व्याप्त भारतीय जन मानस पर अधिकार प्राप्त करने लगी। जिन्होने अपने देश के जीवन को शुद्ध और प्रबुद्ध बनाने के लिए स्वप्न देखे और उन्हें चरितार्थ करने के लिए दिन रात प्रयत्न किए। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में जिन छोटे मोटे नेताओं के नाम अंकित है उनमें गाँधी जी का व्यक्तित्व अति विशिष्ट और अफलातून है। हिन्दू और ईसाई धर्म की कल्पना, पूर्वी और पाश्चात्य संस्कृतिक परम्परा तथा मध्युगीन एवं आधुनिक नैतिकता का संगम उनके व्यक्तित्व में हुआ। गाँधी जी घर गृहस्थी वाले आदमी थे, तथापि वे सन्यास वृत्ति से रहते थे व खुद को सन्यासी हिन्दू कहलवाते थे और समाज सुधार के कट्टर समर्थक थे। सरकारी अन्याय के विरूद्ध सामूहिक आंदोलन के लिए जनता को ललकारते हुए निर्वेर भाव से अहिंसा के रास्ते पर चलने का वे आग्रह करते थे। सत्यनिष्ठा और पर्यंत सहिष्णुता, आदर्शवाद और व्यवहार कुशलता अनुशासन प्रियता और सौहार्द, दृढ़ता और विनम्रता आदि कई परस्पर विरोधी गुण उनमें थे इसलिए वर्षो उनके निकट सानिध्य में रहने वालों को भी उनके व्यक्तित्व और विचारधारा का यथार्थ आंकलन नहीं हो पाया।

गाँधी जी जैसे युगप्रवर्तक नेता किसी वट वृक्ष जेसे साये में नहीं चलते वे खुद ही अपने जीवन को आकार प्रदान करते थे। उनके व्यक्तित्व पर किसी भी परम्परा, सम्प्रदाय, धर्मग्रंथ या गुरू का सम्यक प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। अनेक ग्रंथों और सम्प्रदायों से उन्होने कुछ विचार, प्रेरणा और तत्व ग्रहण किए और तद्नुरूप पेश आने का प्रयास किया। केवल एक या दो कितवों पढ़कर अपने विचारों को उन्होने दिशा नहीं दी। ऐसे प्रत्येक संकल्पना की यर्थाथता को उन्होने प्रत्यक्ष व्यवहारिकता की कसौटी पर कसकर देखा। वे कहते हैं कि ''जो विचार मैंनें व्यक्त किए वे मेरे है और नहीं भी हैं वे मेरे हैं क्योंकि तदनुसार पेश आने की मुझे उम्मीद है, वे मानो मेरी आत्मा का अंश है ये विचार केवल मेरे ही नहीं है मैं उनका उद्‌गाता नहीं हूं कई कितावें पढ़ने

के बाद वे बने हैं दिल की अटल गहराईयों में जो मैं जो महसूस कर रहा था उसे इन किताबों का सहारा मिला''।

इस प्रकार का सुदृढ़ सहारा मिलने के कारण ही उनकी श्रृद्धा दृढ़तर हो गई। इनका आत्मविश्वास बढ़ गया। बचपन से ही उन्होने सत्य को जिन्दगी की सर्वश्रेष्ठ जीवन दृष्टि के रूप में स्वीकार किया था। यह सत्य वाचिक नहीं था उसे विचारों का व्यापक आधार प्राप्त था।

इस प्रकार का निरपेक्ष (स्थल कालातीत) सत्य ही परमात्मा स्वरूप है। वे मानते थे कि सदा सत्य रूप में ही परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है। सत्यनिष्ठा ही उनकी जिंदगी का मूलाधार थी। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का अस्तित्व होता है इसलिए उसे सत्य का आभास होता है। चाहे जितने कष्ट उठाने पड़े, चाहे जो कीमत चुकानी पड़े आत्मानुभूत सत्य के मार्ग पर चलना ही नीति है। प्रत्येक व्यक्ति के नैतिक दायित्व को ही धर्म कहा जाता है। ऐसे आत्मस्वीकृत नीति तत्वों को जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठित करने के लिए गाँधी जी उम्र भर प्रयत्न रत रहे। इसलिए अपनी आत्मकथा को उन्होने सत्य परीक्षण नाम दिया है।

गाँधी जी का बचपन सौराष्ट्र के पोरबंदर और राजकोट में बीता। कच्ची उम्र में ही उनके मन पर हिन्दू धर्म का अध्यात्मवाद तथा जैन और वैष्णव भक्ति पंथों की भूतदया एवं नैतिक आचरण के दृढ़ संस्कार हुए थे। तथापि किसी एक विशिष्ट पारस्परिक धर्म की परिधि में सिमटना उन्हें मंजूर नहीं था अपने इंग्लैंड निवास के दौरान मानवतावादी ईसाई धर्म सुधारकों के निकट सम्पर्क में वे आये और उनकी धर्म जिज्ञासा जागृत हुई। हिन्दू और ईसाई धर्म ग्रंथ का गाँधी जी ने अध्ययन किया उसके बाद अफ्रीका में भी अधिक ग्रंथों का अध्ययन और चिन्तन मनन उन्होने जारी रखा। इसी अध्ययन के दौरान हिन्दू धर्म की सर्वसमाविशकता और समन्वयशीलता का अहसास उन्हें हुआ। जिन्दगी भर किए गए विभिन्न परीक्षणों ने उनके व्यक्तित्व में निखार लाने का काम किया। बचपन के पारिवारिक संस्कार, इंग्लैंड निवास के दौरान उनके विचारों को प्राप्त दिशा, दक्षिण अफ्रीका में भारतीय आंदोलन के दौरान आए विभिन्न अनुभवों से उनकी वैचारिक भावभूमि समृद्धतर होती चली गयी और भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन ने उन पर परिपूर्णता का मुलम्मा चढ़ा दिया।

महात्मा गाँधी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने स्वयं अपने अनुभव, मन व हृदय की विशेषताओं एवं गुणों से तथा अपने कर्मो से अपना मार्ग प्रशस्त करते हुए एक इतिहास

का निर्माण किया है। वे भारत के पुननिर्माता हैं। उन्होने राष्ट्रीय नेता के रूप में अपने प्रभावी व्यक्तित्व से नये भारत का निर्माण किया है। नूतन भारत के निर्माण हेतु अपने प्रयोग जन्य अनुभव से एक ऐसी शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया है जो भारतीय परिवेश में सर्वथा उपयुक्त है। अपने नूतन विचारों से चाहे वह शिक्षा, दर्शन, राजनीति, धर्म या प्रजातंत्र में हो, प्रत्येक क्षेत्र में उन्होने क्रान्ति मचा दी थी। इस प्रकार एक अंतराष्ट्रीय विचारक व चिंतक के रूप में सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करके महान ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

इस विश्व में अनेक बुद्धि सम्पन्न प्राणियों ने जन्म लिया है, किन्तु कोमल हृदयी व्यक्ति का प्रायः अभाव ही पाया जाता है। इसी कोमल हृदयी व्यक्तित्व में इनकी महानता का सार छिपा है। महात्मा गाँधी का प्रार्दुभाव ऐसी परिस्थिति में हुआ था जबकि नैतिक मूल्य दिन प्रतिदिन घटते जा रहे थे ऐसी स्थिति में इन्होने नये मूल्यों को देश के समक्ष रखने का संकल्प लिया। महात्मा गाँधी जी ने अनुभव कर लिया था कि मानव को इस विकट स्थिति से बाहर निकालने का कार्य केवल नये मूल्य ही कर सकेंगे, इसलिए वे अकेले ही समाज में व्याप्त समस्त बुराईयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहे। विरोध, धमकी, गलत प्रदर्शन तथा कलंक की परवाह किए बिना सत्य, अहिंसा व प्रेम का दृढ़ता से अवलम्बन लिए हुए भारतीय राष्ट्र को शांति व सुरक्षा प्रदान की थी।

प्रायः यह अनुभव किया गया कि महान पुरूषें एवं शांति दूतों को उनके जीवन काल में न तो समया और न तो आदृत किया गया किन्तु महात्मा गाँधी जी के सम्बंध में उपयुक्त तथ्य निराधार हैं, क्योंकि उनके जीवन काल में ही उनकी प्रशंसा व उनके क्रान्तिकारी विचारों की ध्वनि विश्व के प्रत्येक कोने में फैल चुकी थी, सांसरिक प्रलोभन एवं उपहारों से विमुख ही शाश्वत सत्य की ओर उन्मुख होने के कारण ही वे विश्व प्रसिद्ध महान पुरूष बन सके।

विश्व में गाँधी जी के स्थान के सम्बंध में भविष्य वाणी करना हमारे लिए तो प्रायः असम्भव ही है, परन्तु महात्मा गाँधी को महान पथ प्रदर्शकों, शिक्षकों, मनुष्य मात्र के हितैषियों में एक महान पथ प्रदर्शक, शिक्षक, मानव हितैषी के रूप में आने बाले कालों में समझा जाता रहेगा। उन्हें पूर्ण रूप में जानने के लिए सतत् अन्वेषण, समझ एवं निरंतर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

वे जीवन पर्यन्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, समानता एवं सुधार के

कार्यों में संलग्न रहे हैं, अपनी शिक्षाओं के कारण वे असंख्य पीढ़ियों तक स्मरण किए जाते रहेंगे। उन्होने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन से लेकर जन्म नियंत्रण तक के विषयों के सम्बंध में अपने श्रेष्ठ विचारों की अभिव्यक्ति की है और उसे अपनी लेखनी द्वारा लिपिबद्ध भी किया है।

गाँधी जी की महानता, उनकी लोक प्रियता, उनके जीवन की सफलता का रहस्य, उनकी सत्यता और न्याय निष्ठा में उनकी सतत् जागरूकता में उनके विश्व प्रेम की भावना में और उनकी निर्भयता में निहित थी। वे एक क्रान्तिकारी सुधारक एवं उच्च कोटि के शिक्षा शास्त्री थे। गाँधी जी के विचारों से युक्त लेख भारतीय भाषाओं में ही नहीं वल्कि विश्व की अन्य भाषाओं में भी छपते थे। इस सम्बंध में ब्रज कृष्ण चांदीवाल ने लिखा है -

> " भारत के समस्त मुख्य दैनिक इनके लेखों को अपने अंकों में छापते थे ...... उनके लेख भारत में नहीं बल्कि अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपते थे।"[1]

महत्मा गाँधी जी का जन्म एवं शिक्षा :-

ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1869 का वर्ष समाज शिक्षा व राजा व्यवस्था में विश्व को नवीन विचार- सिद्धांत प्रदान करने, सत्य अहिंसा, प्रेम व करूणा को व्यवहारिकता प्रदान करने, शोषण, उत्पीडन, विषमता, सामाजिक, आर्थिक, अन्याय के विरूद्ध क्रान्ति पैदा करने, पूर्वाग्रहों को परिवर्तित करने तथा व्यक्तिगत व सामूहिक कर्तव्य शक्ति को जागृत करने वाले किसी सर्वोदयी दार्शनिक को अपने अंतिम चरण में समर्पित करने आया हो। भारत वर्ष के लिए यह वर्ष महत्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष महान क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ, युगदृष्टा, मानवतावाद के पोषक ही नहीं अपितु समाज सुधारक, मौलिक विचारक, त्यागी तपस्वी, बलिदानी व्यवहारिक दार्शनिक एवं प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्री महात्मा गाँधी का जन्म सम्वत् 1925 भाद्रपद कृष्णपक्ष द्वादशी दिनांक 2 अक्टूबर 1869 ई0 में गुजरात प्रदेश के पोरबंदर, सुदामापुरी नामक स्थान पर मोढ़ा बणिक परिवार में हुआ था। इनका पूरा नाम मोहन दास करमचंद गाँधी था, भारतीय इन्हें श्रृद्धा व प्रेम से "राष्ट्रपिता" अथवा "बापू" कहा करते हैं।

गाँधी परिवार :-

उत्तम चंद गाँधी अथवा औंता गाँधी इनके दादा थे। इनसे पूर्व के पारिवारिक सदस्य व्यापारी थे, इनके नीचे की तीन वंश परम्परायें दीवानगिरी करती थीं, औंता गाँधी की

---

1. ब्रज कृष्ण चांदीवाल "बापू के चरणों में" पृष्ठ 152, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1949

दो शादियां हुई थी।

पहली पत्नि से चार तथा दूसरी से दो पुत्र हुए थे। इस प्रकार करमचंद गाँधी अपने पिता के पाँचवे पुत्र थे, लोग इन्हें कवा गाँधी भी कहा करते थे। गाँधी के पिता करमचंद गाँधी के छोटे भाई का नाम तुलसी दास गाँधी था। दोनो भाईयों ने बीकानेर तथा राजकोट में दीवानगिरी की थी। मृत्यु के समय गाँधी जी के पिता करमचंद राजकोट दरबार से पेंशन पाते थे।

करमचंद गाँधी के चार विवाह हुए थे। प्रथम दो पत्नियों से दो कन्यायें तथा अंतिम से एक पुत्री व तीन पुत्र पैदा हुए थे। भाईयों में महात्मा गाँधी सबसे छोटे थे, इनके पिता परिवार प्रेमी, सत्यवादी, शूर, उदार, न्यायी एवं ईमानदार व्यक्ति थे। इनकी शिक्षा सामान्य थी, किन्तु इनका अनुभव एवं व्यवहारिक ज्ञान उच्चकोटि का था। ये धार्मिक प्रवृति के थे। इस सम्बंध में गाँधी जी ने लिखा है -

"पिता जी की शिक्षा अनुभव की थी.... गुजराती की पांचवी पोथी की पढ़ाई किए थे,...... इतिहास व भूगोल के ज्ञान से तो बिल्कुल कोरे थे, फिर भी उनका व्यवहारिक ज्ञान ऊँचे दर्जे का था। .... धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर थी... पर मंदिर में जाने, कथा सुनने से ..... उन्हें सहज ज्ञान मिला था।"[1]

गाँधी जी की पूज्य माता पुतली बाई साध्वी भावुक, धर्म निष्ठ, उपासना परायण, व्रती, व्यवहार, कुशला एवं बुद्धिमती महिला थी। व्रत व उपवास उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। माता-पिता दोनो धर्म परायण थे। गाँधी जी के जीवन पर परिवार के धार्मिक वातावरण माता-पिता के विचारों, आदर्श एवं सिद्धांतों का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा था।

शिक्षा :-

गाँधी जी की प्रारंम्भिक शिक्षा पोरबंदर में हुई थी, पिता के पोरबंदर से राजकोट चले जाने के पश्चात सात वर्ष की आयु में गाँधी जी ने राजकोट के ग्रामीण विद्यालय में अध्ययन प्रारंभ किया।

गाँधी जी शर्मीले स्वभाव के थे। उन्हें किसी भी व्यक्ति व सहपाठी से वार्तालाप करने में रूचि नहीं थी। इस कारण इनके कोई मित्र इस काल में नहीं बने थे। बचपन

1.गाँधी आत्मकथा-अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्धार, पृष्ठ-2 सस्ता साहित्य मंडल न्यू दिल्ली 1951

में गाँधी जी में अपने अध्यापक के प्रति आदर का भाव था, अध्यापक को धोखा देना या उनसे असत्य भाषण करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। प्रारम्भिक कक्षाओं में गाँधी जी साधारण कोटि के विद्यार्थी समझे जाते थे। परन्तु मेधावी छात्र न होते हुए भी इन्हें आचरण, आज्ञा पालन व गुजरात प्रांत के छात्रों के लिए निर्धारित छात्रवृत्ति कक्षा 5 व 6 में क्रमशः 4 व 10 रूपये प्राप्त हुई थी।

हाईस्कूल में प्रवेश के समय इनकी आयु 13 वर्ष की थी। 13 वर्ष की अल्पायु में सन् 1881-82 में गाँधी जी का विवाह "कस्तूरी बाई" के साथ हुआ। पत्नि कस्तूरी बाई स्वतंत्र विचार वाली, मितभाषिनी, परिश्रमी एवं सरल स्वभाव की महिला थी। ये निरक्षर थी। गाँधी जी ने इन्हें पढ़ाने के लिए शिक्षक का सहयोग लिया,किन्तु इनका प्रयास निष्फल रहा। मात्र पत्र लेखन व गुजराती भाषा का ही ज्ञान प्राप्त कर सकीं। इस सम्वंध में गाँधी जी ने लिखा है-

" मेरी विषय वासना कार्य में बाधक थी। शिक्षक द्वारा पढ़वाने की कोशिश भी बेकार रही। नतीजा यह हुआ कि आज कस्तूरबाई मुश्किल से चिट्ठी भर लिख और साधारण गुजराती समझ सकती है।" [1]

हाईस्कूल की कक्षा में गाँधी जी मंदबुद्धि विद्यार्थी नहीं थे। वे अपने बड़ों के दोषों को देखना पसंद नहीं करते थे। अन्य छात्रों की नकल करना उनके स्वभाव के विपरीत था। शिक्षा विभाग के इंसपेक्टर "नाइल्स" के द्वारा विद्यालय निरीक्षण के समय दिए गए "केट्ल" शब्द की वर्तनी को शुद्ध रूप में लिखने हेतु अध्यापक द्वारा आगे के छात्र की स्लेट से देखने हेतु दिए गए संकेत को न मानना उनके उपर्युक्त स्वभाव का द्योतक है। अध्यापक के नीति विरूद्ध कार्य से उनके मन में उनके प्रति अनादर का भाव नहीं जागृत हुआ। गाँधी जी अपने आचरण के प्रति सदैव सतर्क रहते थे, प्रारम्भिक काल में वे शिक्षण व व्यायाम के पारस्परिक सम्वंध को मान्यता नहीं देते थे किन्तु बाद में शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा की भांति महत्व हैं, समझाने लगे। गाँधी जी के शब्दों में -

" बाद को समझ में आया कि विद्या अभ्यास में व्यायाम अर्थात् शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बरावर ही स्थान होना चाहिए। " [2]

---

1. गाँधी आत्मकथा- अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्धार पृष्ठ 13-14 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1951

2. गाँधी आत्मकथा - अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्धार पृष्ठ 16 सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली, 1951

लगभग 18 वर्ष की आयु में सन् 1887 में गाँधी जी ने हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा के उत्तीण करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए गाँधी जी ने "भावनगर के श्यामलाल" कालेज में प्रवेश लिया। कालेज के प्रथम सत्र की समाप्ति पर गाँधी जी घर वापिस आ गए। यहां की पढ़ाई में इन्हें रास नहीं आ रही थी। इसी समय गाँधी जी के परिवार के सलाहकार व मित्र "मावजीदवे" की राय से तथा चाचा व माताजी की अनुमति से वैरिस्ट्री पढ़ने हेतु इंग्लैंड जाने का उनका विचार दृढ़ हो गया। अतः गाँधी जी 4 सितम्बर सन् 1888 में बम्बई बन्दरगाह से इंग्लैंड के लिए रवाना हुये।

इंग्लैंड पहुंचकर इनके समक्ष "बैरिस्ट्री" की परीक्षा उत्तीर्ण कर तीन वर्ष के पश्चात स्वदेश वापस आने का लक्ष्य था। "बैरिस्टर" बनने के लिए अंग्रेजी की समझ व ज्ञान आवश्यक था, इस हेतु इन्होने लंदर का मेट्रिकुलेशन पास करने का निश्चय किया। इस परीक्षा में "लेटिन" और एक अन्य भाषा अनिवार्य थी। गाँधी जी ने लेटिन व फ्रेंच इन दो भाषाओं को लेकर यह परीक्षा दो प्रयत्नों में उत्तीर्ण की। इस सम्बंध में गाँधी जी ने लिखा है -

" एक मित्र ने सलाह दी और कहा - तुम्हें कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो तो तुम लंदन का मैट्रिकुलेशन पास कर लो--- और इससे साधारण ज्ञान बढ़ेगा,.... बकील के लिए लेटिन बड़े काम की चीज है जो लेटिन जानता है वह कानूनी कितावें आसानी से समझ लेता है ... लेटिन भाषा जानने से अंग्रेजी भाषा पर अधिकार भी बढ़ता है।"[1]

तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद 10 जून सन् 1891 में गाँधी जी "बैरिस्टर" की उपाधि से अलंकृत हो गये। 11 जून को इंग्लैंड हाईकोर्ट में ढाई शिलिंग जमा कर, वकालत का प्रमाण पत्र लेकर, 12 जून 1891 को भारत में वकालात करने हेतु स्वदेश वापस हुए। इंग्लैंड से भारत लौट्ते समय जहाज पर ही इन्होने "हिन्दू स्वराज" नामक प्रथम पुस्तक लिखी। जिसका प्रकाशन सन् 1908 में हुआ। इस पुस्तक में इन्होंने पश्चिमी सभ्यता का नग्न चित्र खींचा एवं भारतीयों को इससे बचने का निर्देश भी दिया। यह पुस्तक गाँधी वाद की कुंजी है। गाँधी जी के शब्दों में ब्रज कृष्ण चांदीवाल ने लिखा हैं- " भारत की मुक्ति इसी में है कि गत पचास वर्षो में जो कुछ उसने सीखा है उसे वह भुला दे।.....सादा किसान जीवन अपनाना होगा और उसी जीवन को सच्ची खुशी का स्त्रोत समझना चाहिए।"[2]

---

1. गाँधी आत्म कथा अनुवादक रामप्रसाद पोद्दार पृष्ठ 67 सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली 1951

2. ब्रज कृष्ण चांदीवाल "बापू के चरणों में" पृष्ठ 153 सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली-1951

जीवन की महत्वपूर्ण क्रियायें :-

वकालात शुरू करने के बाद एक मामला पाकर वह नेटाल दक्षिण अफ्रीका में वकालात करने अप्रैल 1893 में गए। मुकदमे का मुवक्किल दक्षिण अफ्रीका में रहने वाला एक भारतीय था जिसका नाम सेठ अब्दुल्ला था।

प्रिटोरिया जाते समय गाँधी जी को प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतर जाने के लिए कहा गया, किन्तु गाँधी जी ने उतरने से इंकार कर दिया। इसी प्रकार उन्हें अनेक कटु अनुभव दक्षिण अफ्रीका में हुए। कई जगह उन्हें अपमानित होना पड़ा। गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को संगठित करना प्रारंभ किया।

गाँधी जी नेटाल से लौटना चाहते थे क्योंकि अब्दुल्ला का मुकदमा निर्णीत हो चुका था और दक्षिण अफ्रीका में रहने की अवधि भी समाप्त हो रही थी। किन्तु दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के अनुरोध पर वे वहीं रुक गए और नेटाल सर्वोच्च न्यायालय में वकालात करनी प्रारंभ कर दी। वहां उन्होने नेटाल कांग्रेस का गठन किया और भारतीयों के सामाजिक एवं नैतिक उत्थान में लग गए।

गाँधी जी ने भारत लौटकर दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की समस्याओं से सभी को अवगत कराया। मद्रास से प्रकाशित होने वाले हिन्दु तथा कलकत्ता के स्टेट्समेन समाचार पत्र में गाँधी जी का विस्तृत साक्षात्कार छापा। गाँधी जी पुनः नेटाल गए किन्तु यूरोपियन अधिकारियों ने उन्हें जहाज पर ही रोक दिया, परन्तु 13 जनवरी 1897 को वे नेटाल की धरती पर उतर ही गए। गाँधी जी के ऊपर उग्रवादी यूरोपियनों ने छिटपुट हमले भी किए किन्तु गाँधी जी का कतिपय यूरोपियन दोस्तों की मदद से बच गए।

यूरोपियनों की बर्बरता एवं भेदभाव की नीति से दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीय क्षुब्ध थे परन्तु गाँधी जी को इनसे किसी प्रकार का द्वेष नहीं था। 1899 के वोअर युद्ध में गाँधी जी ने अपने ग्यारह सौं साथियों के साथ अंग्रेजों की मदद की। गाँधी जी के प्रति समस्त यूरोपियनों के हृदयों में प्रतिहत की भावना जन्मी। इसके बाद गाँधी जी अफ्रीका में बीस वर्षो के अपने अद्‌भुत अनुभवों के बाद स्वदेश लौटे और अपने को मातृभूमि की सेवा में अर्पित किया।

दक्षिण अफ्रीका से गाँधी जी 1901 में भारत आये थे किन्तु दक्षिणी

अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति में सुधार की जगह और बदतर दशा हुई गाँधी जी पुनः 1902 में डरबन चले आये। दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों की समस्यायें ज्यों की त्यों बनी थी। सरकार किसी प्रकार की रियायत देने को तैयार नहीं थी। गोरी सरकार ने एक कानून पास किया जिसके अनुसार दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले प्रत्येक भारतीय को पंजीकृत होना अनिवार्य कर दिया गया। इसका विरोध करने के लिए गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों को संगठित किया। इस आंदोलन का परिणाम सकारात्मक रहा। सरकार ने स्वैच्छिक पंजीकरण की बात की, परन्तु यह एक छलावा था। इधर सरकार ने स्वैच्छिक पंजीकरण को वैध घोषित कर दिया। गाँधी जी ने इस अधिनियम का विरोध करते हुए पुनः आंदोलन छेड़ दिया। सरकार ने बड़ा ही कठोर रूख अपनाया और आंदोलन को कुचलने की प्रत्येक कोशिश सरकार द्वारा की गई। अनेकों भारतीयों को खदेड़ दिया गया। गाँधी जी को जेल में डाल दिया गया और वहां उनसे दुर्व्यवहार किया गया। यह आंदोलन दबा नहीं सुदीर्घ काल तक चलता रहा। दक्षिण अफ्रीका में भी अंग्रेजों की हुकुमत थी, जैसे भारत में। यहीं से गाँधी जी ने अहिंसात्मक ढंग से लड़ना शुरू किया। पर जब जब अंग्रेज राष्ट्र पर मुसीबतें आती थी तब तब वे अपना सत्याग्रह बंद कर देते थे और अहिंसात्मक ढंग से अंग्रेज राष्ट्र की मदद करते थे। इस प्रकार उन्होने अपने शत्रुओं को भी मित्र बनाने का सफल प्रयास किया। बहुत से अंग्रेज तो उनके अंध भक्त हो चले थे और कहना नहीं होगा कि इन अंग्रेजों की बदौलत ही गाँधी जी को और सफलता मिली क्योंकि इनका नैतिक दबाव इंग्लैंड को गाँधी जी की ओर उन्मुख करता गया जिस वर्णद्वेषी कानून के प्रति गाँधीजी ने सत्याग्रह किया, अन्त में वह उनके प्रयत्नों के कारण पारित न किया जा सका उनका सत्याग्रह सफल रहा।

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करके गाँधी जी 1915 में सदा के लिए भारत चले आये। उनके सारे कर्मो का सूत्रपात दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ और उनकी विजय भी उन्होंने अपनी आंखों से वहां देखी वहां पर उन्होने टालस्टाय, ईसाईमत इस्लाम और हिन्दु धर्म के मान्य ग्रंथों का गम्भीर अध्ययन किया। सन् 1905 से उन्होने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प किया।

भारत पहुँचते ही उनको सरकार ने कैसरे हिन्द का खिताब दिया। तब गाँधी जी ने भारत भ्रमण शुरू किया। एक बार तो वे दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के लिए प्रसिद्ध नेताओं से मिल चुके थे और प्रसिद्ध नगरों में जा चुके थे, पर अब उन्होंने भारत के लाखों गांवों को भी जानने के लिए भ्रमण किया। अब उन्होंने भारतीय नेताओं के साथ कांग्रेस में कार्य करने

का निश्चय किया। गोखले को अपना राजनैतिक गुरू वनाया। पर राजनैतिक चर्चाओं से अधिक उनका ध्यान समाज सेवा की ओर गया।

इसी बीच चम्पारन के राजकुमार शुक्ल ने गाँधी जी से भेंट की और चम्पारन के निलहे गोरों का अत्याचार तथा उनसे अपने संग्राम का परिचय कराया। शुक्ल ने गाँधी को चम्पारन में सत्याग्रह करने का निमंत्रण दिया। गाँधी जी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। चम्पारन में सत्याग्रह हुआ, निलहे गोरों ने उनको और उनके साथी ग्राम वासियों को डरवाया - धमकाया पर बाद में भारत सरकार ने गाँधी जी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर सत्याग्रह में हस्तक्षेप किया और गोरों के अत्याचार को सदा के लिए कानून द्वारा बंद करा दिया।

चम्पारन के सत्याग्रह में गाँधी जी को जो विशेष बात मिली, वह सत्य का साक्षात्कार था। वे कहते हैं कि वहां के निवासियों से "और मेरा मिलाप पुराने मित्रों का सा जान पड़ा। इससे मैंने ईश्वर का, अहिंसा का और सत्य का साक्षात्कार किया। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं पर अक्षरशः सत्य है। इस साक्षात्कार में अपने अधिकार का विचार करता हूं तो मुझे लोगों के प्रति प्रेम के सिवा और कुछ नहीं मिलता।"

इसके बाद तो गाँधी जी के जीवन में आंदोलन करना और जेल जाना तथा देश की आजादी के लिए हर तरह से काम करना ही एकमात्र कार्य रह गया। खेड़ा सत्याग्रह, खिलाफत आंदोलन, और असहयोग आंदोलन, सन् 1930 की नमक कानून को भंग करने वाली डांडी यात्रा, सन् 1932-34 का सत्याग्रह आंदोलन, सन् 1940 का व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन तथा सन् 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन मुख्य है। इन आंदोलनों ने अंग्रेजों की सत्ता को भारत में हिलाकर रख दिया।

मार्च 1947 में लार्ड माउण्टबेटन भारत के नये गर्वनर जनरल होकर भारत आए। लार्ड माउण्ट वेटन ने 3 जून 1947 को एक योजना प्रस्तुत की जिसमें हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के विभाजन की बात भी कहीं गयी थी, जिन्ना ने इसे स्वीकार कर लिया। कांग्रेस भी इस योजना से सहमत थी यद्यपि गाँधी जी बहुत दुखी थे। न चाहते हुए भी कांग्रेस को इस योजना को स्वीकार करना ही था क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नही था। गाँधी जी का यह कहना कि "भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा।" परिस्थितियों के आगे नतमस्तक होना था। 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ, किन्तु स्वाधीनता दिवस पर उनसे खुशियों में शामिल नहीं हुआ जा सका।

स्वाधीनता के पश्चात भारत और पाकिस्तान में साम्प्रदायिक दावाग्नि फैल गयी। धर्म के नाम पर रक्तपात हुआ। गाँधी जी की प्रार्थना साम्प्रदायिकता की आंच को न रोक सकी। बे सबसे निरीह और अलग थलग पड़ गए। स्वाधीनता के वाद स्यात् भारत के सबसे दुखी व्यक्ति थे महात्मा गाँधी की उनकी प्रार्थना का असर इंसानों पर हो सकता था, न कि हिन्दू और मुसलमानों पर। हिंसात्मक कार्यो में लगे व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन के प्रत्येक प्रयास असफल हो गए। गाँधी जी ने अनशन प्रारम्भ कर दिया, किन्तु कोई प्रभाव न पड़ा। पंजाब एवं वंगाल में हिंसात्मक घटनाओं का सिलसिला जारी रहा।

2 अक्टूबर 1947 को जन्म दिन की बधाई दिए जाने पर गाँधी जी ने कहा था-

"मेरे मन में आक्रोश के सिवा और कुछ नहीं है .... मैं घृणा और हिंसा के बीच जिंदा नहीं रह सकता।"

30 जनवरी 1948 को जब गाँधी जी बिरला हाउस, नई दिल्ली में सांयकालीन प्रार्थना सभा में भाग लेने जा रहे थे कि एक भावुक, उद्विग्न एवं मुस्लिम अत्याचार के विरोधी युवक नाथूराम गोडसे ने उन पर गोली चला दी। हे राम कहते हुए गाँधी जी गिर पड़े और इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का विराट पुरूष सदा के लिए अमर हो चल बसा।

अपने अवसान के दो दिन पहले उन्होने कहा था-

" मेरे लिए इससे प्यारी चीज और क्या हो सकती है कि मैं हंसते-हंसते गोलियों की बौछार का सामना कर सकूं।"

प्रभु ने उनकी इच्छा पूरी कर दी। जो हुआ, उसने भारत को ही नहीं, समूचे संसार को स्तब्ध कर दिया। करोड़ो नर नारियों ने इस प्रकार शोक मनाया, मानो वह उनकी व्यक्तिगत क्षति हुई हो। यह स्वाभाविक था। अपने हृदय की विशालता और प्रेम के कारण वह सबके बापू बन गए थे। विश्व के महान विज्ञान वेत्ता आइन्सटीन ने कहा -

"आने वाली पीढ़ियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गाँधी जी जैसा हाड़ मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा। "

उनके निधन पर जितनी श्रद्धांजलियां अर्पित की गई, उतनी विश्व के इतिहास में शायद ही किसी के निधन पर की गई हों।

गाँधी जी की भौतिक काया का अंत हो गया पर मानवता के इतिहास में उनका नाम सर्वदा के लिए अमर हो गया।

यही है मोहनदास करम चंद गाँधी जो आगे चलकर हमारे देश के आधुनिक इतिहास के सर्वप्रथम नायक बन गए और पहले कर्मवीर गाँधी फिर महात्मा गाँधी और अंत में राष्ट्रपिता बापू के नाम से प्रसिद्ध हुए, जिनकी आवाज पर कोटि चरण और कोटि बाहु एक साथ चलते और एक साथ उठते थे।

अतः गाँधी जी केवल इस युग के ही महान व्यक्ति नहीं, वरन उनका स्थान इतिहास के उन कतिपय विशिष्ट महापुरूषों में है, जिन्होने अनगिनत जनता को अपने महान आदर्श से प्रेरित व प्रभावित किया।

गाँधी जी के दर्शन के स्त्रोत :-

महात्मा गाँधी इस युग के सवसे महान व्यक्ति थे। उन्होंने मनुष्य जीवन के सभी पक्षो को प्रभावित किया है। उन्हें अपने परिवार में वैदिक दर्शन एवं वैष्णव धर्म की शिक्षा मिली थी। गीता के वे अनन्य भक्त थे। उन्होंने गीता दर्शन को आज के परिप्रेक्ष्य में देखने समझने का प्रयत्न किया है और आज की भाषा में लोगों को समझाने और उसे उनके जीवन में उतारने का प्रयास किया है और उन्होंने स्पष्ट किया कि संसार के सभी मनुष्य आत्माधारी है इसलिए उनमें आध्यात्मिक समानता है सभी मनुष्यों के शरीर आत्मा के निवास स्थान है इसलिए वे भी हमारे द्वारा रक्षित होने चाहिए हमें संसार के सभी व्यक्तियों का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

गीता दर्शन की इस नई व्याख्या को गाँधी दर्शन कहा जाता है।

गाँधी जी गीता की इस बात से सहमत थे कि मूलतत्व दो है - पुरूष (ईश्वर) और प्रकृति (पदार्थ) और इनमें ईश्वर श्रेष्ठ है। ईश्वर नियमित है या नित्य है इसलिए सत्य है। पदार्थ अनित्य है इसलिए असत्य है। ईश्वर पदार्थ की सहायता से इस वस्तु जगत का निर्माण करता है। गाँधी जी आत्मा को परमात्मा का अंश मानते थे और परमात्मा सत्य है इसलिए आत्मा भी सत्य है। गाँधी जी मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का योग मानते है और मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्म ज्ञान के द्वारा ईश्वर प्राप्ति है।

गाँधी जी की विचारधारा आदर्शवादी विचारधारा से मिलती जुलती है। उनका सम्पूर्ण जीवन सत्य के लिए एक प्रयोग था। वे सत्य, शिव और सुन्दर को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देते थे। वे मानते थे कि सत्य में शिवम् एवं सुन्दरम् निहित है। गाँधी जी कहा करते थे कि प्रायः लोग सत्य से यह समझते है कि हमको सत्य भाषण करना चाहिए सत्य केवल बोलने का ही विषय नहीं, सत्य को विस्तृत अर्थ में ग्रहण करना चाहिये और विचार, भापण तथा कार्य में भी सत्यता होनी चाहिए। सत्य का प्रयोग जीवन के प्रत्येक पहलू में होना चाहिए। राजनीति को भी सत्य पर आधारित होना चाहिए। गाँधी जी का कहना है कि साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है पर मैंने विशाल अर्थ में सत्य का प्रयोग किया है विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है।

महात्मा गाँधी जी के अनुसार सत्य की खोज सरल नहीं। इसके पीछे मर मिटना होता है, इसके साथ तपश्चर्या होती है, इसमें आत्म कष्ट सहन की वात होती है, इसमें

स्वार्थ की गंध तक नहीं होती है। ऐसी निःस्वार्थ खोज में लगा हुआ आज तक कोई भटका नहीं है। भटकता भी तो वह ठोकर खाकर सीधे रास्ते पर आ जाता है। सत्य की आराधना भक्ति से भी है।

गाँधी जी का दूसरा महामंत्र था अहिंसा। अहिंसा परमोधर्मः कहकर प्राचीन ऋषियों ने भी अहिंसा के महत्व को स्वीकार किया था। अहिंसा केवल नकारात्मक प्रत्यय नहीं है। इसका सकारात्मक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है सकारात्मक पक्ष के रूप में अहिंसा प्राणि मात्र से प्रेम करने की प्रेरणा देती है। सभी प्राणियों के प्रति दुर्भावना का अभाव तो होना ही चाहिए। हिंसा न करना अर्थात किसी को शारीरिक एवं मानसिक चोट न पहुंचाना अहिंसा का अभावात्मक अर्थ है। दूसरा भावनात्मक अर्थ चेतनाशील वेदना है अहिंसा के विषय में ....

" अहिंसा बिना सत्य की खोज असम्भव है अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत है जैसे सिक्के के दोनो रूप, उसमें किसे उल्टा कहे किसे सीधा, फिर भी अहिंसा को साधान और सत्य को साध्य मानना चाहिए। साधन जुटाना तो अपना कार्य है पर सत्य परमेश्वर है।"

गाँधी जी ने सादगी की सदा प्रशंसा की है। वे कहते है परिग्रह मत करो। पक्षी की भांति रहो। कुटिया में रहो – गाँधी जी वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिससे ऊँच-नीच, गरीब-अमीर सभी के साथ समानता का व्यवहार हो। वे अस्पृश्यता को सबसे बड़ा अभिशाप समझते थे। हरिजनोद्धार उनका प्रमुख कार्यक्रम था। साम्प्रदायिक तनाव कम करने के लिए भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किए। गाँधी जी भारत में रामराज्य का स्वप्न देखते थे। रामराज्य में राज्य का संचालन नैतिक नियमों पर आधारित था।

महात्मा गाँधी आध्यात्मिक शक्ति की एकता में पूर्ण विश्वास करते थे। सत्य का आधार समस्याओं के हल तथा कर्म करने में होना चाहिए। जिस काम में किसी भी प्राणी के अनिष्ट का इंच मात्र भी प्रवेश हुआ तो वह कर्म अहिंसक कर्म न होगा। गाँधी जी के इसी दर्शन पर उनकी बेसिक शिक्षा आधारित है। इनका यह शिक्षा दर्शन एक देशीय न होकर सर्वदेशीय है। इस सम्बंध में एम0 एस0 पटेल ने लिखा है –

" यदि दर्शन जीवन की समस्याओं के लिए प्रासंगिक तथ्यों को यथाक्रम तथा तथ्यपूर्ण दृष्टिकोण एवं व्याख्या और यथार्थवाद से सम्बंधित है तो निःसंदेह गाँधी जी विश्व के महान दार्शनिकों की श्रेणी में है।"[1]

---

1. पटेल, एम. एस. : द एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी, अहमदाबाद

महात्मा गाँधी ने सत्य, अहिंसा व प्रेम को एक ऐसा आधार स्तम्भ माना है जिससे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय व पारस्परिक स्वावलम्बन व निर्भरता, श्रम निष्ठा के भाव को प्रतिपादित किया जा सकता है और एक सार्वलौकिक स्वतंत्र मानव लोक की स्थापना की जा सकती है। महात्मा गाँधी जी एक ऐसे दार्शनिक थे जो अपने दार्शनिक विचारों को व्यवहार की कसौटी पर कसने के लिए सदैव तैयार रहते थे।

महात्मा गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा गीता के दर्शन पर आधारित है। महात्मा गाँधी जी के दार्शनिक विचारों के बीज हमें वेद, गीता, उपनिषद, जैन, बौद्ध तथा पाश्चात्य दर्शनों में भी उपलब्ध होते हैं। गाँधी जी अद्वैतवादी दार्शनिक है। भारतीय दर्शन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। गाँधी जी भी शिक्षा व जीवन का अंतिम व सर्वोच्च लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति, आत्मानुभूति तथा सत्य का साक्षात्कार करना मानते हैं।

वे ईश्वर व सत्य में भेद नहीं मानते हैं। उनके लिए ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, किन्तु ईश्वर सत्य है कहने की अपेक्षा वे सत्य ही ईश्वर है कहना ज्यादा उचित मानते हैं, क्योंकि ऐसा कहने से वे नास्तिक जो ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते हैं वे सत्य की शक्ति को इंकार नहीं कर सकते हैं। गाँधी जी समस्त मानव को सत्य की चिनगारी मात्र मानते हैं, ईश्वर को प्रेम पूर्ण मानते हैं, उनके अनुसार मानव सेवा, समाज सेवा, देश सेवा, ईश्वरीय सेवा का एक भाग है। इन सेवाओं से ही व्यक्ति ईश्वर की अनुभूति कर सकता है। महात्मा गाँधी जी का विचार है कि यदि कोई अहिंसक ढंग से सत्य को नहीं बोल सकता है तो सत्य न बोलना ही ठीक है। महात्मा गाँधी के अनुसार मानव को अपने व्यक्तिगत ''स्व'' को सम्पूर्ण मानव के ''स्व'' के साथ एकीकरण करके ही आत्म लाभ करना चाहिए।

गाँधी ने लिखा है -

'' सत्य शब्द ''सत्'' से बना है। सत् का अर्थ है ''अस्ति'' सत्य अर्थात् अस्तित्व। परमेश्वर का सच्चा नाम ही ''सत्'' अर्थात् सत्य है। इसलिए परमेश्वर सत्य है। सत्य के साथ ज्ञान, शुद्ध ज्ञान, अवश्वंभावी है। जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान की सम्भावना नहीं है। इससे ईश्वर नाम के साथ चित् अर्थात् ज्ञान शब्द की योजना हुई है और जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ आनंद ही होगा। ..... इसलिए ईश्वर को ''सच्चिदानंद'' कहा जाता है।''[1]

उन्होने आगे भी कहा है, कि -

---

1. ''बापू की सीख'' सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1952, पृष्ठ 29

"साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य का प्रयोग किया है। विचारों में, वाणी में, और आधार में सत्य का होना ही सत्य है।"[1]

महात्मा गाँधी जी के उपर्युक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि वे सत्य को दो रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, एक निरपेक्ष तथा दूसरा सापेक्ष सत्य। सापेक्षिक सत्य प्रयोगीय, सार्वजनिक एवं वस्तु निष्ठ सत्य है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान को महत्व देता है किसी अतीन्द्रिय ज्ञान से उसका कोई प्रयोजन नहीं है। महात्मा गाँधी सापेक्षिक ज्ञान के माध्यम से निरपेक्ष ज्ञान की ओर मानव को ले जाना चाहते हैं। सत्य को बिना व्यवहार में लाये निरपेक्ष सत्य की अनुभूति नहीं हो सकती है। महात्मा गाँधी का सापेक्षिक सत्य जैन दर्शन के "स्याद्‌वाद" शिलर के तथा जॉन डिवी के साधनवाद व व्यवहारवाद, प्रोटोगोरस के विज्ञानवादी सापेक्षवाद, व्हाइट हैड के वस्तुवादी सापेक्षवाद तथा पीरो के संशयवाद के समान है। व्यवहारवाद, साधनवाद, तथा महात्मा गाँधी का सापेक्षिक सत्यवाद, विज्ञानवादी है, जबकि स्याद्‌वाद वस्तुवादी है। महात्मा गाँधी सापेक्ष सत्य को विशेष महत्व नहीं देते हैं, बल्कि उसे निरपेक्ष सत्य की अनुभूति का साधन मानते हैं। सापेक्षिक सत्य के सम्बंध में राधाकृष्णन ने लिखा है :-

" इससे हमें केवल आपेक्षिक अथवा अर्ध सत्य का ही ज्ञान हो सकता है,....स्याद्‌वाद हमें अर्ध सत्य के पास लाकर पटक देता है और इन्हीं सत्यों को पूर्ण सत्य मान लेने की प्रेरणा करता है......। वह पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता है।"[2]

हमने पहले ही देखा है कि गाँधी जी का दर्शन गीता के दर्शन पर आधारित है। बिना सम्यक् कर्म के कोई भी व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न नहीं हो सकता है। गीता के इस संदेश को "कर्मण्ये वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन्"[3] तथा "योगस्थः कुरू कर्माणि संग व्यक्तत्वा धनंजय।"[4] महात्मा गाँधी ने जीवन में आत्मसात कर लिया था।

गाँधी दर्शन में गीता की भांति विश्वास, कर्म व ज्ञान की त्रिवेणी पाई जाती है। इसीलिए गाँधी जी कहते हैं कि -

---

1. "बापू की सीख" सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1952, पृष्ठ 30
2. डा0 राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग प्रथम, पृष्ठ 305-68
3. गीता 2147
4. गीता 2148

"गीता शास्त्रों का दोहन है।...... सारे उपनिषद् का निचोड़ है.....। आज मेरे लिए गीता केवल बाइविल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए माता हो गयी है। .... गीता निराश होने वाले को पुरूषार्थ सिखाती है आलस्य व व्यभिचार का त्याग बताती है।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी जी पूर्ण सत्य के पक्षधर है, इनके अनुसार सत्य का ही वास्तविक अस्तित्व है। ईश्वर इन्द्रिय एवं बुद्धि से परे हैं। इसलिए महात्मा गाँधी जी चाहते हैं कि मानव का अनुभव बुद्धि से परे भी होना चाहिए, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि मानव में जीवन्त विश्वास हो। महात्मा गाँधी जी कहते हैं कि –

" विश्वास छठी इन्द्रिय की भाँति है वह उन तत्वों को सुलझाने में भी काम करता है जो तर्क की सीमा से भी परे हैं।"[2]

महात्मा गाँधी जी सुकरात की भाँति विश्वास करते हैं कि मनुष्य को स्वाभाविक रूप से भौतिक संसार में स्वतंत्रता की खोज करनी चाहिए, परन्तु महात्मा गाँधी जी व सुकरात के विश्वास में अंतर है। महात्मा गाँधी जी इस बात में विश्वास नहीं करते हैं कि जब तक आत्मा स्वयं को इस शरीर के बंधन से एक बार अलग नहीं कर लेती तव तक बुद्धि विचार प्रक्रिया से पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती है, बल्कि उनका विश्वास है कि इस संसार में रहकर, पाशविक वासनाओं पर संयम प्राप्त कर इन्द्रियजित होकर पूर्ण सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। महात्मा गाँधी जी के इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि शरीर श्रम या क्रियाशीलता की उपेक्षा की जावे। वे तो "कर्म" को जीवन में ईश्वरानुभूति का माध्यम मानते हैं। वे सामाजिक सेवा के जीवन को ही ईश्वर के जानने व अनुभव करने का सच्चा मार्ग व साधन मानते हैं। इसीलिए जीवन में शरीर–श्रम को महत्व देते हैं। उनकी मान्यता थी कि ईश्वर को उसकी सृष्टि में उसके कार्यो में ही खोजा व पाया जा सकता है। "सत्य" को "कर्म" से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनका विचार है कि ईश्वर को सदैव सक्रिय, क्रियाशील समझते हुए दृढ़ता पूर्वक जीवन में क्रियाशील रहकर ही तथा उसकी सृष्टि की सेवा करके ही उसे अनुभव किया जा सकता है।

महात्मा गाँधी की दृष्टि में ईश्वर सत्यं, शिवं, व सुन्दरम् है, क्योंकि ये मूल्य शाश्वत तथा वस्तुनिष्ठ मूल्य हैं। इनका निर्माण मानव मन से नहीं होता है। मानव को क्रियाशील होकर सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् जीवन व्यतीत करके इसकी अनुभूति करनी

---

1. गाँधी – "बापू की सीख" सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली,1949, पृष्ठ 85,86,87

2. हरिजन 6. 3. 37

चाहिये। महात्मा गाँधी के अनुसार वौद्धिक क्रियाशीलता तभी औचित्यपूर्ण कही जा सकती हे जव विचार क्रिया में बदले जायें।

महात्मा गाँधी जी शाश्वत मूल्य का अस्तित्व न तो मानव मन का प्रक्षेपण मानते हैं और न तो सामाजिक प्रक्रिया की उपज। उस दर्शन को जो सत्यता को पूर्ण निराकारी मानता है, उसे गाँधी जी मान्यता नहीं देते हैं, क्योंकि वह व्यक्तिगत मूल्यों और नैतिकता के विनाश के रूप में भी घटित हो सकता है और उन मानक स्तरों को समाप्त कर सकता है जो व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

महात्मा गाँधी सत्य की अनुभूति संसार में रहकर करना व कराना चाहते हैं। यह अनुभव जीवन की निरंतरता में निहित है। जब तक जीव को पूर्ण सत्य का अनुभव नहीं होता है तब तक मानव के जीवन की निरंतरता चलती रहती है। सत्यानुभूति को ही वे ब्रहम समझते हैं, जो व्यवहार से परे नहीं है। उनके दृष्टिकोण से वर्तमान जीवन ही अन्तिम नहीं है, बल्कि प्राणी प्रत्येक जीवन में उस पूर्णता की प्राप्ति का प्रयास करता रहता है इसलिए वह पूर्णता ही सत् व ब्रहम है। इस ब्रहम की अनुभूति पंच कोषों पर निर्भर हैं।

महात्मा गाँधी जी ने इन कोषो को जीवन में विजित कर लिया था, अनुभव कर लिया था और अपने जीवन रूपी प्रयोगशाला की प्रायोगिक कसौटी पर परख लिया था। यही सर्वश्रेष्ठ अद्वैतवादी अनुभूति की उनकी व्यवहारिकता एवं मौलिकता थी। अन्नादि, भोज्यपदार्थ तथा वस्त्रादि का परित्याग कर केवल शरीर रक्षार्थ उनके प्रतीकों को धारण कर अन्नमय कोष की अनुभूति, पत्नि के साथ सहयोगी भावना का निर्माण कर कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण तथा प्राणायाम द्वारा निद्रा को वश में कर प्राणमय कोष की अनुभूति कर ली थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर महात्मा गाँधी जी अपनी कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के सम्राट वन चुके थे। मन की एकाग्रता व बुद्धि की सजगता का उन्हें स्वभाविक अभ्यास हो चुका था। इसीलिए उनके कार्यो की कोई पूर्व योजना नहीं बनती थी, बल्कि समयानुकूल तुरंत कार्य प्रारंभ हो जाता था, किसी भी समस्या के प्रति समाधानात्मक निर्णय लेने में बिलम्ब नहीं लगता था उनकी यह प्रकृति मनोमय एवं विज्ञानमय कोषों की अनुभूति की परिचायिका है।

महात्मा गाँधी जी मानव मात्र में एक ही आत्म तत्व की अनुभूति करते थे। दिल्ली उपवास काल में उन्होने स्वयं कहा था :-

''प्राणी मात्र में एक ही आत्मा है अतः मैं निर्दय व्यक्ति की आत्मा

से भी अपने को अलग नहीं रख सकता हूं मैं अपने ही ढंग से उसी में तल्लीन हूं। ''[1]

महात्मा गाँधी जी एकेश्वरवादी थे उन्होने लिखा है :-

'' मैं ईश्वर की पूर्ण एकता में और इसीलिए सारी मानवता की पूर्ण एकता में भी विश्वास करता हूं। शरीर की भिन्नता होते हुए भी मुझमें आत्मा एक है।''[2]

महात्मा गाँधी जी सम्पूर्ण मानव को आत्मधारी होने के कारण समान समझते थे। महात्मा गाँधी जी संसार के सभी प्राणियों का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना आवश्यक मानते हैं यहीं गाँधी जी के गीता दर्शन की नूतन व्याख्या है। इसी पर गाँधी दर्शन व गाँधीवाद या सर्वोदय दर्शन आधारित है।

गाँधी का सर्वोदय दर्शन, दर्शन का यह विचार सम्प्रत्यय है जो ईश्वर को सृष्टिकर्ता तथा उसे जगत में व्याप्त मानकर आत्मा को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हुए जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष या ईश्वर प्राप्ति या अनुभूति करना स्वीकार करता है। महात्मा गाँधी जी चाहते थे कि मानव अपने व्यक्तिगत अहं को सारे जगत के साथ एकाकार करके आत्म लाभ प्राप्त करें। ज्ञान, इच्छा व कर्म जीवन की त्रिवेणी है। सत्य बोलना ही सत्य नहीं है अपितु विचार, भाव, भाषण व कर्म में सत्यता का पाया जाना आवश्यक है। उनका कथन है :-

''केवल ईश्वर ही सत्य है, संसार माया है, सृष्टि के परिवर्तन में केवल वही स्थिर है।''[3]

अपनी ईश्वर के प्रति आस्था को प्रकट करते हुए उन्होने लिखा है :-

'' यदि कोई मेरी आंखे निकाल ले, नाक काट ले, मैं नहीं मर सकता हूं, किन्तु यदि कोई मुझसे ईश्वर के प्रति विश्वास को हटा लें तो मैं शीघ्र ही मर जाऊँगा।''[4]

महात्मा गाँधी जी के मतानुसार ईश्वर में विश्वास करने वाला सभी धर्मो में समान रूप से विश्वास रखता है। ईसा व मुहम्मद साहब के जीवन से उन्हें प्रकाश मिला था, उन्होने सभी धर्मो के प्रति समान विश्वास एवं श्रृद्धा उत्पन्न कर ली थी सर्वपल्ली राधाकृष्णन

1. यंग इंडिया 11.10.28

2. यंग इंडिया 11.10.28

3. यंग इंडिया 11.10.98

4. गाँधी जी, ''हरिजन'' मई 16, 1938

ने लिखा है :-

" गाँधी जी एक नितांत धार्मिक पुरूष हैं। उन्हें मानवता की एकता में अटूट विश्वास है। हम लोग चाहे जिस जाति, यौन, धर्म या देश के हो, हम सभी उसी परमपिता परमेश्वर की संतान है, प्रत्येक धार्मिक पुरूष सारी मानवता के साथ अपने सम्वंध में विश्वास रखता है।"[1]

अहिंसा :-

महात्मा गाँधी की अहिंसा की विचारधारा जैन दर्शन के अहिंसक विचार से पर्याप्त समता रखती है। जैन दर्शन तन, मन, व वचन तीनो से हिंसा का परित्याग करना ही अहिंसा मानता हे। जैन दर्शन में अहिंसा मुख्य है। इसलिए हिंसा उनके यहां दो प्रकार की मानी गयी है।

1. दृव्य हिंसा
2. भाव हिंसा

प्राणी का वध करना या पीड़ा पहुंचाना द्रव्य हिंसा है और अपने मन में प्राणी के वध या कष्ट पहुंचाने का विचार करना भाव हिंसा है। महात्मा गाँधी का अहिंसा के प्रति विचार कुछ ऐसा ही है, परन्तु महात्मा गाँधी ने अहिंसा के क्षेत्र को जैन दर्शन से अधिक व्यापक बना दिया है। इनके अनुसार अहिंसा कोई स्थूल वस्तु नहीं है किसी को न मारना ही अहिंसा नहीं है, दुर्विचार, असत्य भाषण, बुरा चाहना और किसी वस्तु पर कब्जा करना भी हिंसा है। अहिंसा सत्य रूपी ईश्वर की प्राप्ति का साधन है। अहिंसा साधन और सत्य साध्य है इसलिए साध्यरूपी सत्य का साक्षात्कार अहिंसा रूपी साधन से ही होता है। महात्मा गाँधी के शब्दों में :-

" यह अहिंसा स्थल वस्तु नहीं है।...... कुविचार मात्र हिंसा है।..... .. मिथ्या भाषण हिंसा है किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है..... अहिंसा के बिना सत्य की खोज असम्भव है।.... अहिंसा को साध ान और सत्य को साध्य मानना चाहिए।"[2]

महात्मा गाँधी जी के अनुसार साधन का बराबर ध्यान रखने से साध्य की प्राप्ति हो जाती है। गाँधी जी अहिंसा के दो पक्ष मानते हैं :-

---

1. राधाकृष्णन " अकेजनल स्प.........इटिंगस पृष्ठ 247
2. गाँधी जी : बापू की सीख मंगल प्रभात से, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1952 पृष्ठ 34

1. निषेधात्मक जैसे उपरोक्त अहिंसक विचार।

2. रचनात्मक – ईश्वर, प्रेम उसका साक्षात्कार एवं सत्य को जीवन के प्रत्येक क्रियाकलापों में भाषित करना ही रचनात्मक अहिंसा है। गाँधी जी सम्पूर्ण जीवन को सत्य के लिए एक प्रयोग मानते थे। इस प्रयोग में अहिंसा ही साधन है।

पिता की प्रतिक्रिया से अहिंसा की अनुभूति उन्हें वाल्यावस्था में ही हो गयी थी। इस सम्बंध में महात्मा गाँधी जी ने कहा है :-

" मेरे लिए यह अहिंसा का प्रथम पाठ था। .... आज मैं उसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूं। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण कर लेने पर उसके स्पर्श से कौन अछूता रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति की नापतौल करना असम्भव है।"[1]

महात्मा गाँधी जी ने अहिंसा का प्रयोग अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किया था यहां तक वर्ण व्यवस्था में भी उन्होने अहिंसा का प्रयोग किया है। इस सम्बंध में विनोबा जी ने लिखा है :-

" वर्ण व्यवस्था की पुरानी कल्पना में नया अर्थ भरकर अथवा उस कल्पना में निहित मूलभूत विचार को ध्यान में रखकर गाँधी जी ने उसे स्वीकार किया है, मैं समझता हूं कि यह उनका एक अहिंसा का प्रयोग है। "[2]

निर्भीकता :-

हिंसा का मार्ग भय पर निर्भर है। अहिंसा का निर्भयता पर। अहिंसा में विश्वास करने बाला न किसी से भयभीत होता है, न किसी के हृदय में भय पैदा करता है। वह मृत्यु को वरण करने का नियम सीखता है न कि मारने का। सत्य, अहिंसा के पुजारी के लिए निर्भयता आवश्यक है। गाँधी जी मानते थे कि अहिंसा व सत्य की उपलब्धि निर्भयता से ही हो सकती है। निर्भीक होकर मृत्यु व चोट का भय त्याग कर हरेक व्यक्ति को अन्य का हृदय प्रेम व दया से जीतना चाहिए। भय व कायरता महात्मा गाँधी जी के शब्द कोष में नहीं था। अपने जीवन

---

1. गाँधी जी – आत्मकथा – पृष्ठ 33, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण नई दिल्ली–1951

2. विनोबा – तीसरी शक्ति, पृष्ठ 12, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी द्वितीय संस्करण 2 अक्टूबर 1969

में महात्मा गाँधी ने सभी का वीरता पूर्वक सामना किया था। उनकी यह लड़ाई असत्य, हिंसा व पशुबल से थी। महात्मा गाँधी जी की महानता उनकी निर्भयता में निहित थी। उनके अनुसार अहिंसा,सत्य और निर्भयता के गुण उसी व्यक्ति में होते हैं जिसमें चरित्र बल होता है इसीलिए उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत पालन पर विशेष जोर दिया था।

महात्मा गाँधी जी के अनुसार मानव का कर्तव्य है कि वह पाप से असहयोग करे, अन्याय व अत्याचार का विरोध करे परन्तु अत्याचारी के प्रति प्रतिकार का भाव निर्मित करना स्वयं पर आक्रमण करने के समान है। पापी से घृणा न कर पाप से घृणा करनी चाहिए। पापी व अत्याचारी भी एक मानव होने के कारण देवी शक्ति सम्पन्न हैं। इनका अपमान करना, उसमें निहित देवी शक्ति का अपमान है। महात्मा गाँधी जी के अनुसार निर्भीकता का अर्थ समस्त बाह्य भयों जैसे बीमारी, शारीरिक आघात, मृत्यु, पदच्युत आदि के भय से मुक्त होना है। शांति महात्मा गाँधी जी की प्राण थे, वे बाह्य एवं आंतरिक शांति के मनोरम वातावरण में विचरण करने के अभ्यस्त हो गए थे। वे समस्त विश्व को एक ही प्रेम सूत्र में बांधना चाहते थे, यहां तक कि महात्मा गाँधी जी अंग्रेज जाति से भी घृणा नहीं करते थे, बल्कि उनका विरोध शासक वर्ग की नीति से था। महात्मा गाँधी जी ''विश्वात्मा'' में विश्वास करते थे इस सम्वंध में कृपलानी ने लिखा है -

'' विश्व में सर्वत्र व्याप्त सत्य का साक्षात दर्शन पाने के लिए सृष्टि में जो सबसे हीन है उसको भी अपने ही जैसा मानना होगा। ''[1]

कवि सुमित्रानन्दन पंत ने गाँधी दर्शन के सम्बंध में निम्न पंक्तियां लिखी है :-

'' मनुष्यत्व का तत्व सिखाता, निश्चय
हमको गाँधी वाद।
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य,
योजना है अविवाद।।''

समाज में रहकर मानव मात्र से प्रेम करना व सेवा करना ही महात्मा गाँधी जी ईश्वर सेवा मानते थे। इस आदर्श की जीवन पर्यन्त निभाते रहे हैं।

---

1. आचार्य कृपलानी - गाँधी दर्शन पृष्ठ 42

सर्वधर्म समन्वयवादिता :-

महात्मा गाँधी जी प्रवृति धर्म के प्रति बचपन से ही थी। उन्होने किसी नवीन धर्म को प्रचारित नहीं किया है वे सनातनी थे, किन्तु वर्तमान सनातन धर्म की संकीर्णता का परित्याग कर उसकी विशालता को ही सच्चा सनातन धर्म मानते थे। उनके नूतन सनातन धर्म में प्रेम का स्थान प्रमुख था अमित्रता को उन्होने कभी भी प्रश्रय नहीं दिया। इस कारण यदि उन्हें मानवता का अवतार माना जाये तो कोई भी अतिश्योक्ति नहीं होगी।

तत्कालीन सनातन धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता, लघुता व बड़प्पन की भावना को महात्मा गाँधी जी समाज के लिए विषतुल्य व काल रूप में मानते थे। उनका मत था कि यदि हिन्दू धर्म अपना महत्व बनाये रखना चाहता है तो उसे सवर्ण अवर्ण का अंतर समाप्त करना होगा। वे सर्वधर्म समानता को मानने वाले थे। उनके मत से प्रत्येक धर्म एक ही सत् की ओर ले जाने वाले भिन्न भिन्न मार्गो का प्रतिपादन करते हैं। तत्कालीन हिन्दू धर्म की कमियां उन्हें खटक रहीं थी, इस सम्बंध में उन्होंने लिखा है :-

" हिन्दू धर्म की .... अस्पृश्यता यदि हिन्दू धर्म का अंग हो तो वह सड़ा हुआ फालतू अंग जान पड़ा। अनेक सम्प्रदायों तथा अनेक जाति, उपजातियों के अस्तित्व का औचित्य मैं नहीं समझ सका....वेद ईश्वर प्रणीत है तो बाइविल और कुरान क्यों नहीं ?"[1]

उपर्युक्त कथन उनकी सर्व धर्म समानता की जिज्ञासा को प्रकट करता है। सर्वधर्म समानता की भावना को पुष्ट करने के लिए ही उन्होने प्रायः सभी धर्म ग्रंथों जैसे "सेल" का कुरान टीका, किंग्स फोर्ड की "उत्तम मार्ग" बाइविल का नया अर्थ "टालस्टॉय की " बैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में" व "नव विधान का सार" और "क्या करें" कविराय चन्द्रकी प्रेषित पुस्तकें "पंचीकरण, मणिरत्न माला, योग वशिष्ट, का "मुमुक्ष प्रकरण" हरिभद्र सूरि का "षडदर्शन समुच्चय" नर्मदा शंकर का "धर्म विचार" मैक्स मूलर की "भारत क्या सिखाता है," थियोसोफिकल सोसायटी द्वारा प्रकाशित "उपनिषदों का भाषांतर, वाशिंगटन अरविंग कृत "मुहम्मद का चरित्र" कालाईल की "मुहम्मद स्तुति", "जरस्थुस्त के बचन" तथा "लाइट ऑफ एशिया" आदि का मनन व चिंतन किया था।

इन पुस्तकों ने मेरे हृदय पर गहरा असर डाला। विश्व प्रेम मनुष्य

---

1. गाँधी जी – आत्मा कथा भाग 2 "धार्मिक मंथन" पृष्ठ 172 सस्ता साहित्य मंडल, दसवां संस्करण नई दिल्ली 1951

को कहां तक ले जा सकता है इसे मैं अधिकाधिक समझने लगा।

सत्याग्रह :-

पिछले पृष्ठों में यह कहा गया है कि महात्मा गाँधी जी ने अपने बाल्यकाल में ही "सत्य" और "अहिंसा" की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। यद्यपि इस शिक्षा का प्रारम्भिक रूप सैद्धांतिक था। इन सिद्धांतों को अपने भावी जीवन में व्यवहारिकता प्रदान करने के लिए उन्होंने इनका हर स्थिति एवं परिस्थिति में चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक रही हो, प्रयोग किया था।

महात्मा गाँधी जी ने संसार को एक नया दर्शन प्रदान किया था। वह "अहिंसात्मक प्रतिरोध" तथा एक नूतन मंत्र "सत्याग्रह" था "आत्मशुद्धि ब्रह्मचर्य व्रत" उनके जीवन में अप्रत्यक्ष रूप से "सत्याग्रह" की सृष्टि कर रहे थे। इस सम्बंध में उन्होंने लिखा है -

"........जो आत्म शुद्धि मैंने की, वह मानो सत्याग्रह के लिए ही हुई हो। आज मैं पाता हूं कि ब्रह्मचर्य व्रत लेने तक की मेरे जीवन की मुख्य घटनावली मुझे अप्रत्यक्ष रूप से उसी के लिए तैयार कर रही थी।"[1]

दक्षिण अफ्रीका के जीवन तथा वहां के संग्राम का इतिहास ही महात्मा गाँधी जी के सत्य के प्रयोगों का इतिहास है। इन्होने सत्य की रक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया। सत्य के पथ पर चलने वाले को बलिदान की कसौटी पर आरूढ़ होना ही पड़ता है। "टालस्टाय" को भी सत्य हेतु अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा। सत्य के लिए "सुकरात" को विषपान करना पड़ा, परतंत्रता के विरूद्ध संघर्ष करने वाले "लिंकन" की भी हत्या की गई। नागरिक अधिकारों के लिए संघर्षरत "मार्टिन लूथर किंग" मारे गए। महात्मा गाँधी जी को भी इस प्रकार "सत्य" अहिंसा एवं सत्याग्रह का संदेश विखेरते हुए अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। महात्मा गाँधी जी एक क्रियावादी क्रान्तिकारी थे। परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ उनके क्रिया कलाप भी बदलते गए।

महात्मा गाँधी जी सत्याग्रह को आत्मा की शक्ति मानते थे। आत्म संयम, प्रार्थना, एवं आत्म शुद्धि से ही सत्यग्रह की शक्ति प्राप्त होती है।

महात्मा गाँधी ने स्वयं प्रार्थना के विषय में लिखा है :-

---

1. गाँधी एम0 के0 - "सत्याग्रह की उत्पत्ति" आत्मकथा पृष्ठ 401, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-5

" स्तुति, उपासना, प्रार्थना वहम नहीं है।...... प्रार्थना वाणी का विलास नहीं है। उसका मूल कंठ नहीं हृदय है। अतः यदि हमारा हृदय निर्मल हो जाये, हृततंत्री के तारों को हम सुसंगठित रखें तो उससे निकलने बाला सुर गगनगामी होता है।"[1]

महात्मा गाँधी जी वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा सामाजिक उन्नति यहां तक की वास्तविक स्वराज्य को भी सच्चे रास्ते से ही प्राप्त करना चाहते थे। वे नीति मार्ग के अवलम्बन कर्ता तथा मानव सदगुणों के विकास के पक्षधर थे। सद्गुण सत्याग्रह से ही प्राप्त हो सकते थे। इसलिए गाँधी जी ने इस सम्बंध में लिखा है :-

" स्वर्ण बनाने बाला पारस मणि दो अक्षरों में अंतर्निहित है और वह है "सत्य और "आग्रह"। यदि प्रत्येक भारतवासी "सत्य" का ही आग्रह करेगा तो भारत को घर बैठे स्वराज्य मिल जायेगा।"[2]

महात्मा गाँधी जी की विचारधारा व दार्शनिकता के बिन्दु सत्य, अहिंसा निर्भयता व सत्याग्रह है। सत्य की प्राप्ति अहिंसा व प्रेम ही से सम्भव है। गाँधी जी के अनुसार जो अहिंसक होता है वही सत्याग्रही है। सत्याग्रही निर्भीक व निनम्र होता है। कोई भी शक्ति शांति सैनिक के समक्ष टिक नहीं सकती है। शांति सैनिक, शोषण, अन्याय, दासता, कुरीति, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनैतिक विषमता के प्रति सत्याग्रही होता है। सत्याग्रह ही उसका अस्त्र है असत्य, धोखा, गोपनीयता को युद्ध क्षेत्र में वह स्थान नहीं देता है।

इस प्रकार महात्मा गाँधी शांति, प्रेम, वर्गहीन समाज के पोषक थे और अस्पृश्यता को कलंक मानते थे। सभी उसी ईश्वर की संतान है फिर भेदभाव कैसा ? श्रम के महत्व के प्रतिपालक एवं सच्चे अर्थो में वे एक क्रियावादी थे। उनकी कथनी करनी में एकरूपता थी। वे वास्तव में कर्मयोगी थे। हिन्दू धर्म की गहनता का उन्हें ज्ञान हो गया था। हिन्दू धर्म किसी भी प्राणी में भेदभाव, द्वेष का भाव नहीं पैदा करता है। वह वास्तव में समस्त धर्मो का प्रवर्तक है। ऐसे हिन्दू धर्म के बारे में उन्होने लिखा है :-

" निष्पक्ष रूप से विचार करने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि हिन्दू

---

1. गाँधी - आत्म कथा पृष्ठ 91-92 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली1951
2. गाँधी - सर्वोदय रस्किन के अन्टु दिस लास्ट का सार " पृष्ठ 48 सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन नई दिल्ली, नवम् संस्करण 1952

धर्म में जैसे गूढ़ व सूक्ष्म विचार हैं, आत्मा का जैसा निरीक्षण है, दया है, वैसा दूसरे धर्म में नहीं।''[1]

वे सच्चे अर्थ में सत्यवादी, अहिंसावादी व सत्याग्रही थे। वे गीता के अनन्य उपासक थे। महात्मा गाँधी जी के अनुसार कर्मो को उचित ढंग से पालन करने से ही व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

पारिवारिक पर्यावरण :-

गाँधी जी के पितामह श्री उत्तम चंद गाँधी और पिता करमचंद गाँधी पोरबंदर और राजकोट रियासतों में दीवान थे। बेदाग चरित्र, ईमानदारी, स्वामीनिष्ठा, स्वाभिमान और जीवटता के मामले में ये दोनो दीवान सौराष्ट्र में विख्यात थे। सत्यनिष्ठा संग्राहकता, व्यवहार, निपुणता आदि गुण गाँधी जी को अपने पूर्वजों से विरासत में ही मिले थे। सत्य पर अटूट निष्ठा और इसके लिए जान की बाजी लगाने की प्रवृत्ति बचपन से ही उनके इन गुणों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी। परिवार के ज्येष्ठ व्यक्तियों के मन में ही हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों और जैन, इस्लाम एवं पारसी धर्मो के प्रति अगाध आस्था थी। परम्परागत रूप से उनका परिवार वल्लभ सम्प्रदायी था। तथापि इस सम्प्रदाय के अनैतिक रिवाजों से उनके परिजनों को सख्त नफरत थी धर्म के बाह्य आडम्बर का उन्हें कोई विशेष आकर्षण नहीं था। भक्तिभाव, अर्न्तमुखी प्रवृत्ति चिंतनशीलता को वे अधिक महत्व देते थे।

गाँधी जी के परिवार में रामचरितमानस बड़े चाव और भक्तिभाव से पढ़ा जाता था। गीता एवं भागवत पुराण भी बार बार पढ़े जाते थे। गाँधी जी भी आगे चलकर मन शांति के लिए तुलसी रामायण और वैष्णव संतों के भजनों की शरण में जाते थे। गाँधी जी तुलसी जी से बहुत प्रभावित थे। अपनी कल्पना की आदर्श समाज व्यवस्था को गाँधी ने रामराज्य कहा। बचपन में पढ़ी किताबें में से श्रवण की पितृभक्ति और राजा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा ने उन्हें अत्याधिक प्रभावित किया था। माँ की सीख के कारण ही गाँधी जी के मन में सर्व धर्म समभाव के संस्कार उत्पन्न हुए।

---

1. गाँधी - आत्मकथा - ''धार्मिक मंथन'' पृष्ठ 172 सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली 1951

व्यक्तित्व का ताना बाना - गाँधी जी

प्रदत्त राजा राममोहन राय पुस्तकालय संस्थान कलकत्ता

विभिन्न धर्म :-

गाँधी जी के अनुसार उनके पिता के पास जैन धर्माचार्यो में से भी कोई न कोई हमेशा आते रहते थे। पिताजी उन्हें भिक्षा भी देते थे वे पिताजी के साथ धर्म और व्यवहार की बातें किया करते थे इसके अलावा पिताजी के मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। वे अपने-अपने धर्म की चर्चा करते थे और पिताजी उनकी बातें सम्मानपूर्वक और रसपूर्वक सुना करते थे। नर्स होने के कारण ऐसी चर्चा के समय मैं अक्सर हाजिर रहता था इस सारे वातावरण से मुझे जैन धर्म के प्रति आकर्षित किया।

रामायण का मेरे मन में गहरा असर पड़ा पिताजी की बीमारी का थोड़ा समय पोरबंदर में बीता था। वहां वे रामजी के मंदिर में रोज रात को रामायण सुनते थे। सुनाने वाले बीलेश्वर के लाधा महाराज एक पंडित थे वे रामचन्द्रजी के परमभक्त थे। उनके बारे में यह कहा जाता है कि उन्हें कोढ़ की बीमारी हुई थी तो उसका इलाज करने के बदले उन्होने बीलेश्वर महादेव पर चढ़े हुए बेलपत्र लेकर कोढ़वाले अंग पर बांधे और केवल रामनाम का जप शुरू किया अंत मेंउनका कोढ़ जड़मूल से नष्ट हो गया यह बात सच हो न हो हम सुनने वालों ने तो सच ही मानी।

यह भी सच है कि लाघा महाराज ने कथा शुरू की तब उनका शरीर बिल्कुल निरोग हो गया था। लाघा महाराज का कण्ठ मीठा था। वे दोहा चौपाई गाते और अर्थ समझाते थे स्वयं उसके रस में लीन हो जाते थे और श्रोताओं को भी लीन कर देते थे। उस समय मेरी उम्र 13 वर्ष की रही होगी पर मुझे आज भी याद है कि उनके पाठ में मुझे खूब आनंद आता था। यह रामायण श्रवण रामायण के प्रति मेरे अत्याधिक प्रेम की बुनियाद है। आज मैं तुलसी रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।

राजकोट में मुझे अनायास ही सभी सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। मैंने हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय का आदर करना सीखा, इसी तरह दूसरे धर्मो के प्रति भी समभाव जागा। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि मुझमें ईश्वर के प्रति आस्था थी। इन्हीं दिनों पिताजी के पुस्तक संग्रह में मनुस्मृति का भाषांतर मेरे हाथ में आया। उसमें संसर की उत्पत्ति आदि की बातें पढ़ी। उन पर श्रद्धा नहीं जमीं उल्टे थोड़े नास्तिकता ही पैदा हुई।

पर एक चीज ने मेरे मन में जड़ जमा ली। यह संसार नीति पर टिका हुआ है नीतिमात्र का समावेश सत्य मैं है, सत्य को तो खोजना ही होगा। दिन पर दिन सत्य

की महिमा मेरे निकट बढ़ती गयी। सत्य की व्याख्या विस्तृत होती गई और अभी भी हो रही है।

फिर नीति का एक छप्परा दिल में बस गया। अपकार का बदला अपकार नहीं उपकार हो सकता है। यह एक जीवन सूत्र ही बन गया। उसने मुझ पर साम्राज्य चलाना शुरू कर दिया। अपकारों का भला चाहना और करना... दूसरा मैं अनुरागी बन गया। इसके अनगिनत प्रयोग किये। वह चमत्कारी छप्परा यह है

पाणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजे,

आली नमावे शीष, दंडवत कोडे कीजे,

आपस घासे दाम, काम महोरोनुं करीए,

आप उगारे प्राण, ते तणा दुःखमां मरीए

गुण केडे तो गुण दश गणो, मन वाचा कर्मेकरी

अवगुण केडे जो गुण करे, ते जगमां जीत्यो सही

अर्थात् जो हमें पानी पिलाये उसे हम अच्छा भोजन कराये जो आकर हमारे सामने सिर नवाये उसे हम उमंग से दण्डवत प्रणाम करें। जो हमारे लिए एक पैसा खर्च करे उसका हम मुहरों की कीमत का काम कर दें। जो हमारे प्राण बचावें, उसका दुख दूर करने के लिए हम अपने प्राण तक निछावर कर दें। जो हमारा उपकार करें, उसका तो हमें, मन, वचन, और कर्म से दस गुना उपकार करना ही चाहिए। लेकिन जग में सच्चा और सार्थक जीना उसी का है जो अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार करता है।

श्री भगवद्गीता :-

गाँधी जी की आत्मकथा से पता चलता है कि वह भगवतगीता को तत्वज्ञान का सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे। उन्होने भगवतगीता पर गीता बोध नाम का एक भाषण भी लिखा और उसका अनुवाद भी अनासक्ति योग के नाम से किया। गीता पदार्थ कोष उनकी अन्य रचना है वह गीता को माता कहते थे जैसा कि उनकी पुस्तक गीता माता से स्पष्ट है -

वह अंतिम क्षण तक गीता का नित्य पाठ करते रहे ओर उनके सिद्धांतो के अनुसार आचरण करते रहे तथा दूसरों को उनके पालन का उपदेश एवं प्रवचन देते रहे। गाँधी जी का विश्वास था कि गीता की शिक्षा में अन्य शक्ति है, अहिंसा है। इन विचारों से स्पष्ट

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा - बापू जी

है कि गाँधी जी गीता दर्शन के मानने वाले भाषाकार भी है यद्यपि जीवन में उन्होने ईसाई एवं इस्लाम धर्म के सिद्धांतों को भी अपनाया है फिर भी आधारभूत दर्शन गीता का ही है।

गीता माता में गाँधी जी के ये शब्द है -

"गीता अर्थात् हमारा आधार रूप ग्रंथ, हममें से बहुतों का आधार गीता है, इसलिए मैंनें गीता का नाम लिया है पर अमतुल (अमतुस्सलाम) प्रार्थना या कुरेशी गीता के बदले कुरान शरीफ पूरा या उसका कोई भाग या किसी धर्म का किसी भी भाषा में कोई भी ऐसा हो आधार रूप ग्रंथ गीता है। "

अन्यत्र भी गाँधी जी ने लिखा है कि गीता महाभारत का अंग है। इसमें भौतिक युद्ध के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरंतर होते रहने वाले द्वंद्व युद्ध का ही वर्णन है। गीता के कृष्ण मूर्तिमान शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान है। "

गीता दर्शन में कुछ विशेष बातें मिलती हैं जिनका विवरण संक्षेपतः इस प्रकार है-

1. ब्रह्म बोध :-

महाभारत के अश्वमेघ पर्व में गीता के उपदेश का मूल मंत्र बताया गया है अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पुनः गीता के उपदेश को मांगा तो उन्होने कहा कि मैंने उसे बड़े ही एकाग्र मन से तुझे दिया था। वह उपदेश ब्रह्म के स्वरूप बोध के लिये पर्याप्त था। अब तो यह सम्पूर्ण उपदेश मेरी स्मृति में नहीं रहा। इसलिए मैं पुनः गीता का उपदेश नहीं कर सकता हूँ। सारी गीता का यही निष्कर्ष है कि वह ब्रह्म बोध का उपदेश देती है।

2. **ज्ञान निष्ठा और योग निष्ठा :-**

ब्रह्म बोध के लिए दो उपाय है - 1. ज्ञान निष्ठा 2. योग निष्ठा या कर्मयोग। ज्ञान निष्ठा में व्यक्ति अपने समस्त कार्यो, इच्छाओं, अहंकारों अभिमानों यहां तक कि अपने आपको छोड़ देता है और ज्ञान मय परमेश्वर से एकनिष्ठ हो जाता है इसके सिद्धांत है -

1. यह दृश्यमान चराचर जगत ब्रह्म के सिवाय कुछ और नहीं है। अतएव हम तथा हमारे कार्य सभी ब्रह्ममय है।
2. जगत मायामय एवं नाशवान है इसलिए जगत में मन बुद्धि और इन्द्रियों की आसक्ति

नहीं होनी चाहिए।

3. सभी जगत की अधिष्ठाता आत्मा है।

4. आत्मा भावमय है और ब्रह्मा में निवास करती है।

योगनिष्ठ या कर्मयोग में व्यक्ति मन, वचन, कर्म से प्रभु के अधीन होता है और निरीह और निष्काम कर्म करता है कर्मयोग के तीन भेद है -

1. एकमात्र कर्मयोग

2. भक्ति मिश्रित कर्मयोग

3. भक्ति प्रधान कर्मयोग

एक मात्र कर्म योग में फल को त्याग देते है भक्ति मिश्रित कर्मयोग में अपने अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार पूजा, अर्चना, सेवा, कर्म, आदि करते हैं। भक्ति प्रधान कर्मयोग में अनासक्ति, अनिच्छा और त्याग से सम्पन्न होकर सब कुछ उस विश्वात्मा का है ऐसा समझना और भजन, ध्यान, उपासना, कर्म सब कुछ को परमेश्वर को अर्पण कर देना होता है। ''

3. सार्वभौम जीवन दर्शन :-

गीता में कुछ असाधारण विशेषतायें सभी के लिए ग्राह्य मिलती है। सत्य, अहिंसा, त्याग, निरपेक्षता, समत्व कर्म, और उपासना ये विशेषतायें होती है जिनसे व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है यह विशिष्ठता केवल अपनी जन्मभूमि के लोगों के लिए ही सीमित नहीं है बल्कि धरती के विभिन्न भागों के प्रत्येक व्यक्ति के लिए हैं। गीता से स्पष्ट है कि जीवन का ध्येय मारकाट नहीं है बल्कि जीवन का ध्येय परम आनंद की प्राप्ति है।

4. प्रवृत्ति और निवृत्ति :-

गीता का अध्ययन दो दृष्टियों से लाभदायक है। कर्म की दृष्टि से स्थूल वृद्धि वाले जगत के लिए यह पुस्तक प्रवृत्तिकारक है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य दूसरे के प्रति क्या और कैसे हों यह मिलता है प्रेम, भक्ति भावना, दया और शरणागति जैसे गुणों से युक्त प्रवृत्तिकारक कर्म करने चाहिए। निवृत्तिकारक पक्ष में यह पुस्तक व्यक्तियों को अदृष्ट शक्ति की खोज के लिए प्रेरित करती है। वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं साधारणतः राजा, रंक, संत, यौद्धा, समाजसेवी, सभी अपने अपने दृष्टिकोण से परमत्व के खोज में लगते हैं ओर इस मार्ग की ओर

से जाने वाली गीता ही है।

5. **दैवीयजीवन का अनुसरण :-**

एसेज ऑन गीता नामक पुस्तक में योगी अरविन्द ने लिखा है कि "गीता हमें कर्मो को कामनारहित होकर करना नहीं सिखाती बल्कि सब धर्मो को छोड़कर दैवी जीवन का अनुसरण करना एक मात्र परम में शरण लेना सिखाती है और एक बुद्ध, एक रामकृष्ण और एक विवेकानंद का दैवी कर्म उसके उपदेश से पूर्ण सामंजस्य में है" गीता का योग कर्मो में कुशलता है योगी स्थितप्रज्ञ होता है अर्थात् दैवी प्रज्ञा में स्थित होता है इस प्रकार योग देवी शक्ति से अविच्छिन्न तादात्म्य रखता है जिसके लिए दैवीय जीवन का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार गीता के अनुसार व्यक्ति को अवतारवाद में विश्वास करना पड़ता है अवतार का अर्थ है ईश्वर का मानव स्तर पर उतरना तथा धर्म की स्थापना की चेष्टा करना और साधु संतों, निरीहों, निर्दोषों की रक्षा करना जैसा कि श्रीकृष्ण ने स्वयं किया ईश्वर में विश्वास गीता का संदेश है।

ऊपर दी गई विशेषताओं को गाँधी जी ने भी स्वीकार किया तथा उसके अनुसार अपना एक जीवनदर्शन बनाया और उसका व्यवहार जीवन में किया।

जैन धर्म का प्रभाव :-

जैन धर्म सम्प्रदाय गुजरात और काठियाबाड़ में बहुत पहले से ही अत्यंत लोकप्रिय रहा है। वहां के वैष्णव सम्प्रदाय पर भी जैन धर्म का प्रभाव पड़ा है। अनेकान्तवाद, अहिंसा और व्रतभाव को गाँधी जी ने जैनियों से स्वीकार किया। सत्य बहुमुखी होता है मानव अपूर्ण है इसलिए वह सत्य के सभी पहलुओं का सम्पूर्ण दर्शन नहीं कर पाता है। प्रत्येक धर्म में सत्य किसी न किसी हद तक तो होता ही है तथापि गाँधी जी की दृष्टि से जैनियों के स्याद्वाद का मतलब यह होता है कि कोई भी धर्म अपने आप में परिपूर्ण नहीं हो सकता है।

जैन धर्म में सन्यास को प्रधानता दी गई है। गाँधी जी को वैराग्य का सम्मोहन भले ही रहा हो, उन्हें धर्म साधनाजनित काया क्लेश मंजूर नहीं था। शरीर को मुख्य रूप से समाज सेवा का साधन माना था। उन्होने जैन धर्म के निवृत्तिवाद को सामाजिक क्रियाशीलता के साथ जोड़ने का काम किया।

गाँधी विचार दोहन - किशोरलाल मशरूवाला सस्ता साहित्यमंण्डल प्रकाशन
गाँधी दर्शन पृष्ठ 53 - महात्मा गाँधी

अहिंसा, सत्य, अस्तेव, बह्मचर्य, असंग्रह, अस्वाद आदि जैन तीर्थकार प्रणीत व्रताचरण के नियमों को उन्होने अपनी सत्याग्रह साधना में शामिल कर लिया तथापि पश्चिमी देशों के धर्म सम्प्रदाय और वहां के दार्शनिकों के सामाजिक और राजनीतिक विचारों से परिचित होने के बाद गाँधी जी ने अपनी पारम्परिक व्रत कल्पना में नयी जान फूंक दी। सत्य वचन बोलने तक ही सत्य की व्याप्ति को सीमित न कर उन्होंने उसे सामाजिक न्याय के दायरे तक पहुंचाया।

बौद्ध धर्म का प्रभाव :-

बौद्ध धर्म में भूतदया को अहिंसा की आत्मा माना जाता हैं। अहिंसा परमोधर्मः सिद्धांत पर गाँधी जी की अटूट श्रद्धा थी। लेकिन उन्होने आदमी की आत्मनिष्ठ प्रतिष्ठा से उसका तालमेल बैठाया इतना ही नहीं बल्कि अन्याय से कड़ा मुकावला करने के प्रभावी साधन के रूप में अहिंसा को प्रतिष्ठित किया। असंग्रह और अस्वाद के माध्यम से वे लौकिक जगत के झंझटो से दूर भागने की सीख नही देना चाहते थे। तन, मन को अनुशासित करने के साधन के तौर पर उन्होने व्रतों की आवश्यकता पर बल दिया।

यहूदी धर्म का प्रभाव :-

गाँधी जी के अनुसार एक ईसाई धर्म अपवादरूप था। उसके प्रति कुछ अरूचि थी। उन दिनो कुछ ईसाई हाईस्कूल के कोने पर खड़े होकर व्याख्यान दिया करते थे। वे हिन्दू देवताओं की और हिन्दू धर्म को मानने वालों की बुराई करते थे मुझे यह असहनीय मालूम हुआ। मैं एकाध बार ही व्याख्यान सुनने के लिए खड़ा रहा दूसरी बार खड़े रहने की इच्छा नहीं हुई।

उन्हीं दिनो एक प्रसिद्ध हिन्दु के ईसाई बनने की बात सुनी। गाँव में चर्चा थी कि उन्हें ईसाई धर्म की शिक्षा देते समय गौमांस खिलाया गया और शराब पिलाई गयी। उनकी पोशाक भी बदल दी गई और ईसाई बनने के वाद वे भाई कोट पतलून और अंग्रेजी टोपी पहनने लगे। इन बातों से मुझे पीड़ा पहुंची। जिस धर्म के कारण गौमांस खाना पड़े, उसे धर्म कैसे कहा जाये ? मेरे मन ने यह दलील दी फिर यह भी सुनने में आया कि जो भाई ईसाई बने थे उन्होंने अपने पूर्वजों के धर्म की, रीति रिवाजों की और देश की निंदा करना शुरू कर दिया था। इन सभी बातों को सुनकर मेरे मन में ईसाई धर्म के प्रति अरूचि उत्पन्न हो गयी।

व्यक्तित्व का ताना बाना - गाँधी जी

प्रदत्त राजा राममोहन राय पुस्तकालय संस्थान कलकत्ता

टालस्टाय का प्रभाव :-

मैटलैंण्ड ने बाइविल की कहानियों को रूपक कथा भले ही कहा हो, तथापि पवित्र धर्मग्रंथ के रूप में बाइविल की यथार्थता उन्हें मंजूर थी। लेकिन टालस्टाय को उसकी यथार्थता कतई स्वीकार्य नहीं थी। हर आदमी को मन ही मन ईश्वरीय सत्य का अहसास होता है। इसलिए अपने विवेक से ईमान रखना ही असली धर्म है। यह टालस्टाय मानते थे। टालस्टाय की किताबें पढ़ने के बाद शब्द प्रामाण्य के खोखलेपन का अहसास उन्हें हुआ। टालस्टाय जन्म से ईसाई तो गाँधी जी हिन्दू थे। अतएव आत्मा और परमात्मा के परस्पर सम्वंध कर्म, पुनर्जन्म आदि के वारे में उन दोनों की धारणायें भिन्न होना स्वाभाविक थी। लेकिन दोनो दर्शन शास्त्रीय बुद्धिजनित बारीकियों की अपेक्षा इंसान के भीतर की नैतिक प्रेरणा को अधिक महत्व देते थे। नीति ही धर्म की आत्मा होती है इसलिए धर्मशाास्त्रों की पीठ और आदेश यदि नीति की कसौटी पर खरे न उतरते हो तो वहां उनका विरोध कर कर्मा वाचा मनसा अपनी अन्तप्रेरणा से ईमान रखना ही असली धर्म साधना है। यह दृष्टिकोण टॉलस्टाय ने आगे बढ़ाया। टालस्टाय के ही अनुरूप गाँधी जी ने भी अस्पृश्यता, विषमता और अनीति की समर्थक शास्त्र सम्मतियों और रूढ़ियों को वेशक धर्म विरोधी करार दिया।

गाँधी जी के सामाजिक एवं राजनैतिक लेखन कार्य :-

गाँधी जी का कार्य दो प्रकार का है एक तो समाज सुधार तथा दूसरा लेख लिखना। समाज सुधार के अंतर्गत सबसे महान कार्य दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों की दशा सुधारना तथा भारत के लोगों को ब्रिटिश शासन से मुक्त करना है। साथ ही साथ अछूतों (हरिजनों) का उद्धार, हिन्दु मुस्लिम एकता तथा शिक्षा का प्रचार एवं देशी उद्योग, कौशलों को विकसित करने के लिए खादी और ग्राम विकास का कार्य है। इसके लिए उन्होंने सर्वोदय मण्डल की स्थापना की। समय समय पर जो कुछ भी विचार इनके मन में आयें अथवा किसी ने कुछ पूछा तो उसका उत्तर इन्होंने लेखों के द्वारा दिया जो विशेषतः दो पत्रों यंग इंडिया और हरिजन में छपते रहे। वह अंग्रेजों के विरूद्ध तो अवश्य रहे लेकिन अंग्रेजी में ही अधिक लिखते रहे साथ साथ गुजराती में भी लिखते रहे।

गाँधी जी द्वारा लेखन कार्य :-

व्यक्तित्व का ताना बाना - गाँधी जी

प्रदत्त राजा राममोहन राय पुस्तकालय संस्थान कलकत्ता

आत्मकथा, माई एक्सपेरीमेन्ट विद् ट्रथ, सर्वोदय, मेरा कर्म, सत्याग्रह, रामनाम, हिन्दू स्वराज्य, हिन्दू धर्म, क्रिश्चियन मिशन, यरवदा जेल से, दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, नीति धर्म, मंगल प्रभात, आश्रमवासियों से अनीति की राह पर, ब्रह्मचर्य, प्रार्थना प्रवचन, मेरे समकालीन, गीता बोध, अनासक्ति योग, गीता माता, पन्द्रह अगस्त के बाद, विद्यार्थियों के लिए, वेसिक शिक्षा आदि। ये सभी साहित्य लिखने के अलावा निम्नलिखित पत्रों में अपने विचार लिखा करते थे -

हरिजन सेवक, भूदान यज्ञ, मंगल प्रभात, नई तालीम,, ग्रामोद्योग पत्रिका, कस्तूरबा दर्शन, जीवन साहित्य, आरोग्य, नया हिन्द।

इससे स्पष्ट होता है कि लेखन का कितना कार्य गाँधी जी करते थे। इसके फलस्वरूप उन्होंने अपार साहित्य का सृजन किया जो हमें आज कई खण्डों में प्रकाशित मिलता है।

गाँधी जी के राजनीतिक कार्य -

गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में वकालत की लेकिन वह वहां के भारतीयों की बुरी दशा तथा उनके साथ किए जाने वाले बुरे व्यवहार से इतने प्रभावित हुए थे कि वह उनके सुधार की ओर झुक गए। उन्होंने भारतीयों के प्रति जाति, रंग एवं द्वेष की भावना को दूर करने के लिए भारतीयों को संगठित किया और एक मण्डल की स्थापना की। अब इस मण्डल के माध्यम से गाँधी जी ने सरकारी अधिकारियों से भारतीयों के कष्ट निवारणार्थ पत्र व्यवहार किया। अधिकारियों ने सहानुभूति दिखाई तथा उनकी मांगों को उचित माना। इसमें गाँधी जी को कुछ सफलता मिली। 1894 ई0 में नेटाल में भारतीयों को कौंसिल की सदस्यता से दूर करने के लिए बिल पारित हुआ। इसलिए गाँधी जी ने हस्ताक्षर के साथ एक आवेदन पत्र तैयार किया और बिल का विरोध किया। इसी वर्ष गाँधी जी ने नेटाल कांग्रेस भी स्थापित किया इसी वर्ष प्रिटोरिया में मजदूर कर का विरोध किया। जिससे 25 पौंड के स्थान पर तीन पौंड का टैक्स हो गया। बाद में वह भारत लौट आये और उस समय के नेता लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, जमशेद जी, टाटा आदि से मिले। सन् 1897 ई0 में इन्हें एक तार मिला जिसमें उन्हें अफ्रीका बुलाया गया था। इसलिए वह सपरिवार वहां गए जहाज से उतरते समय वहां पर एकत्र भीड़ पर अत्याचार हुए और उन्हें अपमानित किया गया, लेकिन गाँधी जी धैर्य के साथ अटल रहे, अंत में वह डरबन के बन्दरगाह पर उतरे। सन् 1914 ई0 तक गाँधी जी का जीवन अफ्रीका के

भारतीयों को स्वतंत्र करने में बीता।

1897 से 1914 ई0 के बीच गाँधी जी ने अफ्रीका में एक नया अनुभव किया, तब उनके आगामी जीवन एवं कार्य की वह पूर्व पीठिका बनी। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों में नवजीवन एवं समाज निर्माण का कार्य तो गाँधी जी ने किया ही, साथ ही साथ उनकी शिक्षा के लिए भी कोशिश करते रहे। इस कार्य के लिए गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के फीनिक्स स्थान पर एक आश्रम स्थापित किया और उसे एक धर्म संस्था [Religion institution] का रूप दिया। जहां सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा दी जाती थी। 1899 ई0 में बोअर युद्ध शुरू हुआ जिसमें गाँधी जी ने सेवा कार्य वहीं के नेताओं (श्री खान साहब और मनसुखलाल) को दे दिया और भारत चले आये।

भारत आकर गाँधी जी ने कुछ वकालत का कार्य शुरू किया और यहां के कुछ नेताओं से सम्पर्क स्थापित कियां। लेकिन 1904 ई0 में गाँधी जी को फिर अफ्रीका बुलाया गया और वहां के सत्याग्रह आंदोलन को गाँधी जी ने कुछ आगे बढ़ाया। इस कार्य को प्रसारित करने के लिए गाँधी जी ने अब एक समाचार पत्र इण्डियन ओपिनियन निकालना शुरू किया। इसके बाद जोहान्सवर्ग चले गए कि वहां बकालत शुरू करें यहां पर भी उन्होने भारतीयों को ऊँचा उठाने के लिए सत्याग्रह शुरू किया जो न्यू एशियाटिक लॉ के विरोध में था। इसमें उन्हें और उनके साथियों को कई बार जेल भी जाना पड़ा। मि0 पोलक की सहायता से सन् 1911 ई0 में उन्होने टालस्टाय फार्म ट्रांसवाल में स्थापित किया जिसमें सत्याग्रही कैदियों के परिवारों को रखकर धार्मिक जीवन के लिए तैयार करते थे। यह फार्म शिक्षा की एक प्रयोगशाला हुआ। गाँधी जी ने यह अनुभव किया कि मनुष्य की आत्मा को ऊँचा उठाया जावे और उसे ईश्वर का साक्षात्कार कराया जावे। इसके लिए शारीरिक, भावात्मक एवं बौद्धिक शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। सन् 1915 ई0 में गाँधी जी भारत लौट आये तथा गाँधी जी का लोगों ने खूब आदर सत्कार किया।

सन् 1915 ई0 में गाँधी जी ने साबरमती में फीनिक्स फार्म की भांति एक सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। 1917 ई0 में चम्पारन में गोरों के अत्याचार के विरूद्ध आंदोलन किया, फलस्वरूप गोरों के अत्याचार को अंग्रेजी सरकार ने कानूनन बंद कराया। चम्पारन सत्याग्रह में उन्हें सत्य का बोध हुआ। इसके बाद गाँधी जी भारतीय राजनीति में आ गए और कई आंदोलन के अगुआ बन सन् 1919 ई0 में भारत अधिनियम [GOVT. OF INDIA ACT 1919] पास हुआ। जो भारतीयों के हित में अच्छा नहीं था, उन्हें स्वराज्य एवं स्वतंत्रता नहीं

मिली, फलस्वरूप इन्होंने भारतीय कांग्रेस की ओर से असहयोग आंदोलन शुरू किया जो लगभग दो वर्ष तक चलता रहा। सन् 1921 ई. में इन्होने राष्ट्रीय शिक्षा योजना के सम्बंध में विचार प्रकट किए। सन् 1924 में हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए आंदोलन किया। 1930 ई0 में गाँधी जी ने नमक कानून के विरूद्ध आंदोलन किया स्वयं नमक बनाया और जेल गए। इसके फलस्वरूप भारतीयों को शासन में अधिकार दिए जाने के लिए कहा गया। सन् 1832 ई0 में पुनः प्रथम मताधिकार के विरूद्ध सत्याग्रह आंदोलन किया। सन् 1933 में उन्होने हरिजनोद्धार का बीड़ा उठाया और सन् 1934 में कांग्रेस से अलग रहकर देश सेवा का भार लिया। इसी वर्ष से ग्रामोद्धार का काम भी शुरू किया गया। 1935 ई0 में सेवा ग्राम (वर्धा) में आश्रम बनाया। और ग्रामीण उद्योग के विकास का कार्य उन्होने 1935-36 ई0 में शुरू किया। सन् 1935 में शासन में भाग लेने के लिए अधिकार दिए गए। 1937 ई0 में वर्धा में बेसिक शिक्षा योजना का प्रारूप तैयार हुआ और बाद में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों द्वारा उसके अनुसार शिक्षा दी जाने लगी।

सन् 1937 ई0 से 1939 ई0 के मध्य के करीब कांग्रेस शासन सात प्रांतों में रहा। सन् 1939 ई0 में दूसरा विश्व महायुद्ध आरम्भ हुआ जिसमें सहायता देने का विरोध कांग्रेस ने किया और फलस्वरूप शासन कार्य छोड़ दिया सन् 1942 ई0 में गाँधी जी के नेतृत्व में वर्धा में एक सभा हुई जिसमें भारत छोड़ो आंदोलन के लिए प्रस्ताव पास किया गया। फलस्वरूप अंग्रेजी शाासन के विरूद्ध आंदोलन हुआ। सन् 1945 ई0 में युद्ध समाप्त होने पर स्वतंत्रता देने के लिए अंग्रेजों ने गाँधी जी एवं कांग्रेसी नेताओं से बातचीत शुरू की और फलस्वरूप सन् 1945 ई0 में अंतरिम शासन स्थापित हुआ। सन् 1946 ई0 में शिमला कान्फ्रेंस के असफल होने पर कैबिनेट मिशन के नेताओं ने भारत छोड़ने का प्रस्ताव स्वीकार किया और अंत में 15 अगस्त 1947 ई0 को अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया तथा देश स्वतंत्र हो गया। शासन स्थापित हुआ। सन् 1946 ई0 में शिमला कान्फ्रेंस के असफल होने पर कैबिनेट मिशन के नेताओं ने भारत छोड़ने का प्रस्ताव स्वीकार किया और अंत में 15 अगस्त 1947 ई0 को अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया तथा देश स्वतंत्र हो गया।

विनोबा जी का व्यकित्तव एवं कृतित्व :-

जन्म एवं शिक्षा :-

महाराष्ट्र का वह क्षेत्र कोंकण प्रदेश कहलाता है। वहाँ कोलावा जिले की पेंण तहसील में सत्तर - अस्सी घरों का गागोदे नाम का एक गाँव है। जो कि वम्वई से सवा सौ किलोमीटर दूरी पर स्थित है। गाँव वहुत गरीब है। वहुत से लोग तो वहाँ पर लंगोटी पहनकर ही जीते थे। इस गांव में सन् 1895 के सितम्बर महीने की 11 तारीख को विनायक का जन्म हुआ।

दस वर्ष की उम्र तक विनायक का वचपन इसी गांव में वीता। उन दिनों लोग इसे विनु अथवा विन्या के प्यार भरे नाम से जानते थे। विनोवा जी की शुरू की पढ़ाई पाठशाला में नहीं बल्कि घर पर ही हुई। काका ने उन्हें घर पर ही पढ़ाया। यह पढ़ाई भी रोज एक घण्टे से अधिक नहीं चलती थी। बाकी के समय पांच छः घण्टे वह पास के पहाड़ों में भटका करते थे। वह गाय चराने वाले लड़कों के साथ ही घूमा करते थे। इस तरह ठेठ वचपन से ही उन्हें खुले में घूमने और प्रकृति का आनंद उठाने की आदत पड़ गयी थी।

इस उम्र में विनोबा जी के कोमल चित्त पर अपने दादा के गहरे संस्कार पड़े। अभी तक विनोबा जी की पढ़ाई घर पर ही हुई थी। वारह साल की उम्र में वे बड़ौदा के हाईस्कूल में भरती हुए। वे पढ़ने में बहुत तेजस्वी थे। पहले नम्वर से पास हुआ करते थे। छात्रवृत्ति भी मिलती थी इनाम भी मिला करते थे। गणित इनका वहुत ही प्रिय विषय रहा। मैट्रिक की परीक्षा में गणित विषय में 100 में से 99 अंक मिले थे। विनोवा जी को संस्कृत से भी प्रेम था। पिताजी के आग्रह पर संस्कृत की जगह फ्रेंच लेनी पड़ी। मां को यह पसंद नहीं था वे सोचती थी कि अपने धर्म की भाषा संस्कृत लड़के को न आये वह कैसी बात है ? विनायक कहते " मां तुम चिंता मत करो विद्यालय में नहीं सीख पाया तो संस्कृत मैं घर में सीख लूंगा। यह कोई जरूरी नहीं कि प्रत्येक विषय विद्यालय में ही सीखा जाये।

विनोबा जी विद्यालय की अपेक्षा विद्यालय के वाहर ही अधिक पढ़े और गुने। यहाँ तक कि मैट्रिक की पढ़ाई के वाद तो कॉलेज की पढ़ाई से मन विल्कुल उचट गया

जीवन और कार्य - विनोबा भावे

था। कॉलेज के पहले साल में वे जैसे-तैसे पास भर हुये थे। विनोवा जी की रूचि का क्षेत्र विशाल बनता जा रहा था। उन्हें पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था। वड़ौदा के केन्द्रीय पुस्तकालय से पुस्तकें ला लाकर वे उन्हें पढ़ते ही रहते थे। राजवाड़े की इतिहास सम्बंधी सभी पुस्तकें उन्होंने पढ़ डाली थीं।

समर्थ स्वामी रामदास की दासवोध नामक पुस्तक का उन पर गहरा असर पड़ा है। मोरोपंत की केकावली तो उन्हें इतनी प्रिय थी कि वे जोर जोर से उसका पाठ करते रहते थे। उनकी स्मरण शक्ति आरम्भ (शुरूआत) से ही बहुत तीव्र रही है। बहुत सी बातें उन्हें कण्ठाग्त हो जाती थी।

जब लोकमान्य तिलक का गीता रहस्य प्रकाशित हुआ, तो विनोवा जी ने उसे एक कार्य बैठक में पढ़ डाला। वे उनके कसेरी पत्र को भी नियमित रूप से पढते थे। विनोवा जी का तिलक के प्रति प्रबल आकर्षण रहा। जब तिलक को छ' साल की सजा हुई, तो विनोवा जी ने शक्कर खाना छोड़ दिया था। वह समय राष्ट्रीय चेतना के उभार का समय था। विनोवा जी पर उसका रंग चढ़ता चला गया उन दिनों अंग्रेजी सरकार जिन पुस्तकों को आपत्तिजनक और राजद्रोही कहकर जब्त करती थी, उन्हें भी विनोवा जी रूचिपूर्वक पढ़ा करते थे और अपने मित्रों को भी रूचिपूर्वक पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।

लन्दन में रहते समय वीर सावरकर ने सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिखा था। इटली के देशभक्त मेजिनी के जीवन चरित्र पर लिखी उनकी प्रस्तावना नौजवानों के दिलों में आग सुलगाने की शक्ति रखती थी। पांगरकर ने रामदासी वुवा के नाम से एक कहानी लिखकर उसमें इस बात की रोमांचकारी कल्पना प्रस्तुत की थी कि देशभक्त लोग गुप्त रीति से आंदोलन किस तरह चला सकते हैं ये सारी पुस्तकें उन दिनों जब्त हो चुकी थी। यदि कोई इन्हें पढ़ता हुआ पकड़ा जाये तो मुसीबत ही खड़ी हो जाती थी। लेकिन विनोवा जी को जहां कहीं से भी प्राप्त होती वहां से इनको प्राप्त करके खुद पढ़ते थे और अपने मित्रों को भी पढ़ने के लिए देते थे।

विद्यार्थी जीवन :-

विनोबा जी अपनी किशोरावस्था में बहुत ही उग्र स्वभाव के थे। उनकी जवान बहुत तीखी थी, वे अपनी मस्ती में मस्त रहते थे। अपने कपड़ों पर या वनाव श्रंगार

पर उनका जरा भी ध्यान नहीं जाता था। सिर के बाल बड़े रहते थे। नाखून भी बड़े रहते थे अगर कोई पूछ बैठता कि क्यों भैया ये बाल इस तरह क्यों बढ़ा रखे हैं तो वे झट से पूछ बैठते क्या आप नाई का धंधा करते हैं ? और अगर कोई अपना रौब गांठने के लिए अंग्रेजी में बोलने लगता तो विनायक जी उससे तुरंत पूछते क्या आपकी मां मेम हैं ?

ऐसा ही दूसरा रोचक प्रसंग है। छुट्टी के दिनों में विनोवा वड़ौदा के केन्द्रीय पुस्तकालय में जाकर बैठते और वहां दो चार घण्टे पुस्तक पढ़ा करते थे। गर्मी के दिनों में वह कमीज उतारकर नंगे बदन बैठा करते थे। पुस्तकालय में आकर ऐसा असभ्य व्यवहार करने के लिए उनकी शिकायत की गई। इस पर पुस्तकालय के अंग्रेज व्यवस्थापक ने विनोवा को बुलवा भेजा और पूछा :-

" तुम्हें रीति नीति का कोई ख्याल है या नहीं ? "

" जी मैं तो अपने देश की रीति नीति जानता हूं ।"

" तुम्हारे देश की रीति नीति क्या है ? "

" जो आदमी खुद कुर्सी पर वैठा रहे और दूसरे को अपने सामने खड़ा रखे, उसे हमारे देश में असभ्य माना जाता है ।"

गोरे साहब लड़के की हिम्मत देखकर खुश हो गये। उन्होंने उसे बैठने के लिए कुर्सी दी। विनोबा ने आगे कहा -

" हमारे देश की दूसरी सभ्यता यह है कि जव तेज की गर्मी पड़ रही हो तो बदन खुला रखा जाये। "

गोरे साहब ने विनोबा जी की यह बात भी मान ली। वाद में उन्होंने विनायक जी से पूछा कि वह कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ते हैं ? उनकी रूचि की पुस्तकें की जानकारी पाकर वे इतने खुश हुए कि उन्होने अपने लाइब्रेरियन से कह दिया कि वे पुस्तकालय में विनायक को जो भी सुविधा चाहिए सो देते रहें।

विनोबा जी के लिए इस प्रकार की निर्भयता और स्पष्टवादिता सहज थी। बचपन में उनके मित्र कहते थे कि विनायक की वाणी में और पत्र में बहुत जोश था। वे गागोदे की पहाड़ियों में खूब घूमे फिरे थे। इस तरह उनके घूमने फिरने का उनका शौक वड़ौदा में भी न

जीवन और कार्य " आत्मकथा " - विनोबा भावे पृष्ठ 11

केवल बना रहा, बल्कि बढ़ता ही गया। एक बार मे पांच सात मील चल लेना उनके लिए बहुत ही सहज था। प्रत्येक दिन में कुल मिलाकर वे पन्द्रह मील तो चल ही लेते थे। कभी कभी तो तेज दुपहरी में दिन के बारह बजे कड़ी धूप में घूमने की धुन उन पर सवार हो जाती थी और वे अपने किसी न किसी मित्र को साथ में लेकर निकल पड़ते थे। इस हालत में उन्हें समय का कोई पता ही नहीं रहता था। चलते समय उनकी बातचीत और चर्चा का प्रवाह अखण्ड रूप से जारी रहता था।

उन दिनों विनोबा जी जूते नहीं पहनते थे। गर्मी की चिलचिलाती धूप में तो कोलतार की सड़के भी पिघलने लगती है ऐसे मौसम में नंगे पैर चलने से पैर जलने लगते थे। तब विनायक को दौड़ना पड़ता था। आगे चलकर उन्होने यह माना है कि इस तरह चप्पल या जूते न पहनना अवैज्ञानिक था। इसी कारण उन्हें चश्मा जल्दी लगने लगा।

वास्तविकता यह थी कि विनायक के मन में अपनी किशोरावस्था में ही वैराग्य की भावना प्रज्वलित हो चुकी थी। खाते समय भी वे अपने विचारों में इतने डूबे रहते थे कि दाल में नमक डालना रह गया हो या दुगुना डल गया हो तो भी विनोबा जी को उसका पता नहीं चलता था। ब्रह्मचर्य की प्रेरणा उनके लिए सहज थी। दस बरस की उम्र में ही विनायक ने जीवन भर ब्रह्मचारी रहकर देश सेवा करते रहने का संकल्प ले लिया था। उन्हीं दिनों उन्होंने कहीं पढ़ा कि ब्रह्मचारी को अमुक अमुक नियमों का पालन करना चाहिए।

जैसे गद्दी पर न सोना, चप्पल जूते न पहनना, छतरी का उपयोग न करना आदि आदि। अतएव वे इन नियमों का पालन दृढ़तापूर्वक करने लगे। धीरे-धीरे उनके चित्त में यह बात बैठती चली गयी कि जीवन का ध्येय है, स्वराज्य। अर्थात् अपना राज्य। अर्थात् आत्मा की सत्ता। यह समीकरण उनके मस्तिष्क में दृढ़ हो गया।

विद्यार्थी मंडल की स्थापना :-

विनोबा जी ने अपने सभी मित्रों को एकत्रित करके सन् 1918 में विद्यार्थी मण्डल की स्थापना की। इस मण्डल द्वारा राष्ट्रीय भावना का पोषण करने वाले उत्सव मनाये जाते थे। मण्डल की ओर से एक हस्तलिखित मासिक भी निकलता था। मण्डल ने अपना एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था। उसमें 1600 पुस्तकें इकट्ठा हो गयी थी। अनेक सालों के बाद यह ग्रंथालय साबरमती आश्रम को भेंट स्वरूप दे दिया गया था।

मण्डल में वाचन, मनन, चर्चा, वाद-विवाद और हास्य विनोद के कार्यक्रम होते रहते थे। प्रत्येक रविवार के दिन दोपहर के समय अभ्यास मण्डल की बैठक हुआ

करती थी। उसमें अलग अलग विषयों पर व्याख्यान के साथ उन पर जोर दार चर्चा चला करती थी।

विनोबा जी इस मण्डल के केन्द्र पुरूष बने रहे। उनकी प्रखर बुद्धि ने और तेजस्वी व्यक्तित्व ने सभी को मुग्ध कर रखा था। उन दिनों उन्होने मेजिनी पर जो भाषण दिया था और उससे जो आग झड़ी थी, उसे उनके मित्र आज भी याद करते हैं। उस समय में सभी लोग गरमागरम (तीखे) विचार वाले थे। उग्रतावादी थे इन सभी लोगों को इस बात की लगन लगी थी, कि इस देश से अंग्रेजों को निकालकर बाहर करने के लिए कुछ न कुछ करना ही चाहिए। सहज ही सभी की निगाह विनोबा पर पड़ी। सभी ने उनसे कहा कि तुम किसी संगठन की रचना करके उसके तंत्र का संचालन स्वयं करो। लेकिन इस तरह के किसी तंत्र के पचड़े में पड़ना विनायक के स्वभाव के बिल्कुल विपरीत था। इसलिए उन्होंने कहा – नहीं भैया नहीं ! यह मेरा काम नहीं। अगर आप कोई चीज खड़ी करेंगे, तो मैं उसका सदस्य अवश्य बनूंगा। और अगर मुझे बम फैंकने भेजोगे, तो मैं बम भी फैंकूंगा। लेकिन यह तंत्र वंत्र मेरे बस की बात नहीं।

उनका यह रूझान उसी समय से है लेकिन इसके बावजूद लोगों को अपनी ओर खींचकर रखने की एक अदम्य शक्ति भी उनके व्यक्तित्व में तभी से है। वे मनुष्य को अपना बना लेते हैं। इसलिए जो भी एक बार उनके साथ स्नेह सम्बंध से जुड़ जाते हैं वे जीवन भर उनके बने रहते है यही कारण है कि जब विनायक खुद अपना घर छोड़कर गाँधी जी के आश्रम में भरती हुए तो बाद में उनके दोनो भाई और बड़ौदा के इस मित्र मण्डल के लगभग सभी मित्र एक के बाद एक गाँधी जी के कामों में आ जुटे। इसमें विनोबा जी का आकर्षण मुख्य रहा।

विनोबा जी का व्यक्तित्व :-

विनोबा जी संस्कृत के पण्डित थे। उन्होने आश्रम में शुरू से ही प्रवेश किया था। आश्रम के सबसे पहले सदस्यों में से एक है। अपने संस्कृत के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए वह एक वर्ष की छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्ष के बाद ठीक उसी घड़ी जबकि उन्होने एक वर्ष पहले आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रम में फिर आ पहुंचे। मैं तो उस दिन भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रम में पहुंचना था। सभी प्रकार की सेवा प्रवृत्तियों-रसोई से लगाकर पाखाना सफाई तक में वह हिस्सा ले चुके थे। इनकी स्मरण शक्ति आश्चर्य जनक थी।

जीवन और कार्य – विनोबा भावे पृष्ठ 4

विनोबा के संस्मरण – गोपालराव काले पृष्ठ 94

वह स्वभाव से ही अध्ययनशील थे, पर अपने समय का ज्यादा से ज्यादा समय कातने में ही लगाते थे, उस कार्य में विनोवा जी इतने अनुभवी हो चुके थे कि वहुत ही कम लोग उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं।

विनोवा जी का विश्वास है कि व्यापक कताई को सम्पूर्ण कार्यक्रम का केन्द्र बनाने से ही गाँवों की गरीवी दूर हो सकती है। स्वभाव से ही शिक्षक होने के कारण उन्होने श्रीमती आशादेवी को दस्तकारी के द्वारा बुनियादी तालीम की योजना काविकास करने में वहुत योग किया है।

श्री विनोवा जी ने कताई को एक बुनियादी दस्तकारी बनाकर एक पुस्तक भी लिखी है वह बिल्कुल मौलिक वस्तु है। उन्होने हँसी उड़ाने वालों को भी यह सिद्ध करके बता दिया है कि कताई एक अच्छी दस्तकारी के द्वारा बुनियादी तालीम में बखूवी किया जा सकता है। तकली कातने में तो उन्होने क्रान्ति ही ला दी और उसके अंदर छिपी हुई तमाम शक्तियों को खोज निकाला। हिन्दुस्तान में हाथ कताई इतनी सम्पूर्णता किसी को प्राप्त नहीं हुई जितनी कि उन्होने प्राप्त की।

विनोबा जी के पास शिष्यों का एक ऐसा दल था जो उनके इशारे पर प्रत्येक तरह का बलिदान करने को तैयार था। एक युवक ने अपना जीवन कोढ़ियों की सेवा में लगा दिया। उसे इस काम के लिए तैयार करने का श्रेय विनोवा जी को ही था। औषधियों का कुछ भी ज्ञान न होने पर भी अपने कार्य में अटल श्रद्धा होने के कारण उन्होंने कुष्ठरोग की चिकित्सा को पूरी तरह समझ लिया था। उनकी सेवा के लिए कई चिकित्सा घर खुलवा दिए एवं उनके परिश्रम से सैंकड़ों कोढ़ी अच्छे हो गये थे।

विनोवा कई बर्षो तक वर्धा के महिला आश्रम के संचालक भी रहे। बाद में वह वर्धा से पांच मील दूर पवनार नामक गांव में जा वसे थे और वहां से उन्होने अपने तैयार किए हुए शिष्यों के द्वारा गांव वालों के साथ सम्पर्क स्थापित किया। वह इतिहास के निष्पक्ष विद्वान थे। विनोबा जी का विश्वास था कि गांव वालों को रचनात्मक कार्यक्रम के वगैर सच्ची आजादी नहीं मिल सकती।

विनोवा जी की जीवन यात्रा का दूसरा चरण उस समय पूरा हुआ जव

सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र - विनोवा भावे

तीसरी शक्ति - विनोबा भावे

वह सन् 1916 में गाँधी जी के आश्रम में पहुंचे। लगातार तीस सालों तक आश्रम जीवन की साधना चलती रही। अध्ययन, अध्यापन, कर्मयोग के विविध प्रयोग साहित्य सृजन, लेखन सम्पादन, ध्यान, उपासना, आदि का क्रम चलता रहा। चित्त को कुछ समाधान प्राप्त हुआ। घर छोड़ते समय एक इच्छा हिमालय जाने की और दूसरी बंगाल पहुंचने की थी। वैसे देखा जाये तो वे न हिमालय जा पाये और न बंगाल। परन्तु इस विषय में विनोवा के विचार यों है '' मुझे तो लगता है कि मैं दोंनो जगह एक साथ पहुंच गया हूं। गाँधी जी के पास मुझे हिमालय की शांति भी मिली ओर बंगाल की क्रान्ति भी प्राप्त हुई। मुझे यानि कि विनोवा जी को गाँधी जी से जो विचारधारा मिली उसमें शांति और क्रान्ति का अपूर्ण संगम था। गाँधी जी के आश्रम में मुझे वहुत कुछ प्राप्त हुआ और उसके परिणामस्वरूप यह अनुभव हुआ कि जीवन एकरस और अखण्ड है। आश्रम में आने पर मुझे नई ज्वाला मिली।

आश्रम के इस दुर्लभ रत्न का पता देश को और दुनिया को पहली बार तभी चला, जब सन् 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए गाँधी जी ने विनोबा को पहले सत्याग्रही के रूप में चुना। यह सत्याग्रह एक विशिष्ट सत्याग्रह था। गाँधी जी ने सत्याग्रह के कई प्रयोग किए लेकिन इस बार प्रतीक रूप में व्यक्तिगत सत्याग्रह करना था। इस सत्याग्रह में प्रत्येक को नहीं बल्कि कुछ परखे हुए व्यक्तियों को ही गाँधी जी सत्याग्रह के लिए चुनने वाले थे। इस तरह चुने गए सत्याग्रहियों को एक के बाद एक सरकार के सामने राष्ट्र का नैतिक विरोध व्यक्त करना था। सभी लोग सोचते थे कि इनमें पहला सत्याग्रही कौन होगा ? देश में गाँधी जनों का जो समूचा समूह था उसमें से सत्याग्रह के जीवित प्रतीक के रूप में पहले व्यक्ति को चुनना था। इसलिए यह व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जिसके जीवन में अहिंसा और सत्याग्रह की निष्ठा का सबसे अधिक दर्शन होता हो, गाँधी जी ने समूचे गाँधी परिवार में से ऐसे पहले व्यक्ति के रूप में विनोवा को दुनिया के सामने खड़ा कर दिया। जब लोगों की जवान पर इस काम के लिए सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू और राजेन्द्र बाबू जैसे कई बड़े बड़े नेताओं के नाम चढ़े हुए थे ऐसे समय में गाँधी जी ने इस काम के लिए विनोबा जी को पसंद किया, जिन्हें वाहर की दुनिया विल्कुल नहीं जानती थी। यह निर्णय विनोबा के प्रति गाँधी जी के प्रेम, विश्वास और श्रृद्धा का सूचक था। गाँधी जी के मन में विनोवा के चिंतन पर गहरी आस्था थी। गाँधी जी के लिए उनकी राय अथवा सम्मति का वहुत महत्व था कई तात्विक विषयों पर गाँधी जी विनोबा के साथ चर्चा किया करते थे। और उनकी सलाह लिया करते थे। गाँधी जी राजनीतिक मामलों के वारे में भी कभी कभी विनोबा से भी चर्चा किया करते थे। ऐसे समय विनोबा कहते मैं तो राजनीतिक मामलों से दूर रहता

हूं इसलिए मेरी सलाह का क्या उपयोग ? इसके जवाव में गाँधी जी कहते-

" सच है कि तुम राजनीति में नही पड़ते हो, लेकिन जिस तरह क्रिकेट के खेल में अम्पायर खुद नहीं खेलता फिर भी उसे खेल की अच्छी जानकारी होती है, इसी तरह तुम भी राजनीति से अलग रहने के कारण ही उसकी बातों को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो। "

आध्यात्मिक विषयों में तो गाँधी जी विनोबा पर बहुत ही निर्भर करते थे। सन् 1934 में गाँधी जी ने चाहा कि विनोबा उनके लिए गीता साप्ताहिक पाठ की एक योजना बना दें। इसके जवाब में विनोबा ने गीता ध्यान संगति लिखकर दी।

विनोबा का ग्राम दान भी ऐसा है एक सत्वशील बीज है लुई फिशर ने सच ही कहा है -

" ग्राम दान पूर्व की ओर से आने वाला सबसे अधिक सृजनात्मक विचार है ।"

गाँधी जी के कार्य का यह समाजवादी प्रयोग सन् 1951 से लेकर आगे दो ढाई दशक तक चला। इस बीच विनोबा के व्यक्तित्व पर नये नये पुट चढ़ते चले गये। जव तक वे आश्रम में रहे तब तक एकान्त साधना, गहरे प्रयोग और मूक सेवा का काम चला। फिर उनका एक एक क्षण जनता के बीच बीतने लगा। और सतत् लोक सम्पर्क चला। 35 वर्षो तक आश्रम में उनकी जो साधना चली, उसमें मुख्य रूप से उनकी वह साधना प्रवृत्ति युक्त नहीं थी। विनोबा जी स्वराजय के आंदोलन के साथ और विविध रचनात्मक कार्यो के साथ बरावर जुड़े रहे। अपने समाज निरीक्षण में वे बिल्कुल तरोताजा यानि अप टू डेट रहा करते थे। वे यह भी मानते थे कि सामाजिक समस्याओं को टालने से चित्त शांत नहीं रह पाता, इसलिए परमार्थिक वृत्ति वाले लोगों को समाजिक समस्याओं के हल खोजने के काम में लगाना चाहिए इस कारण उन दिनों गाँध ी जी जो भी करते या कहते थे, विनोबा उनका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहते थे।

सन् 1960 में इस प्रेम यात्रा के तट पर एक तीर्थरूप घटना घटी। मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश की सीमाओं पर चम्बल नदी के वीहड़ों का जो इलाका है वह सदियों से डाकुओं के इलाके के नाम से मशहूर है इस इलाके में कई सौ सालों से चोरी, डकैती, लूट और हत्याओं की एक परम्परा सी चली आ रही है। विनोबा जी की प्रेम यात्रा इस इलाके से गुजरी। चम्बल घाटी के इलाके में प्रवेश करते समय विनोबा ने स्पष्ट शब्दों में कहा था बागी समस्या

आत्मकथा - विनोबा भावे

का हल खोजना मेरा विषय नहीं है। लेकिन सर्वोदय का विचार गंगा के समान है उसमें नहाकर कोई अपने पाप धोना चाहे तो भले ही धो ले।''

लाखों रूपये खर्च करके भी सरकार जिन लोगों को पकड़ नहीं सकी और दबा नहीं सकी, उनके दिलों पर एक प्रभाव पड़ा। एक दो नही वल्कि इक्कीस वागी अपनी इच्छा से आगे आये और उन्होने अपने को विनोबा के सामने समर्पित कर दिया।

हिंसा ने अहिंसा के चरणो में अपने हथियार डाल दिए। विनोवा जी का एक एक क्षण ईश्वर स्मरण में बीतता रहता था और वह ईश्वर के इशारे पर किसी सार्वजनिक काम का श्रीगणेश करते रहे, उन विनोबा को भी इस घटना के पीछे ईश्वर के सीधे सीधे सूत्र संचालन की एक विशेष अनुभूति हुई।

सन् 1962 में देश की सीमा पर चीन का आक्रमण हुआ। उन दिनो देश के अच्छे अच्छे लोगों के दिल व्याकुल हो उठे थे। उसी समय विनोबा की यात्रा बंगाल के अन्दरूनी इलाकों के गांवो में चल रही थी। हमले की खबर मिलते ही उनकी स्वस्थ और धीर गम्भीर आवाज गूंज उठी, वीर बनो ! महावीर बनो ! जो न तू क्रूर है और न कायर ही है, अर्थात् जो निर्भयता के साथ सामना कर सकता है वह वीर है जो किसी भी तरह के हथियार के बिना मरने के लिए तैयार है, वह महावीर है।''

अपनी इस यात्रा के चलते विनोबा ने देश में छः आश्रमों की स्थापना की। बोध गया में समन्वय आश्रम, पठानकोट में प्रस्थान आश्रम, वंगलोर में विश्वनीडम, इन्दौर में विसर्जन आश्रम, उत्तर लखीमपुर में मैत्री आश्रम और पवनार में ब्रह्मविद्या मंदिर।

क्रान्ति कार्य के समाज व्यापी प्रयोग के साथ ही इस प्रकार का प्रेम कार्य भी अनायास होता रहा है। विनोबा की सर्वतोमुखी प्रतिभा दिन पर दिन खिलती चली गयी, और उसमें से नये नये उन्मेश प्रकट होते गए। इस तरह विनोबा की यह प्रेम यात्रा राष्ट्र के नैतिक पुनरूत्थान की यात्रा बन गयी।

क्रान्ति एवं आध्यात्मिक द्वैत :-

15 अगस्त 1947 स्वतंत्रता का दिन था। मुझे व्याख्यान के लिए वर्धा शहर बुलाया गया। मैंने पूछा कि '' देखो भाई स्वराज्य मिल गया। क्या अब पुराना झण्डा एक दिन के लिए भी चलेगा। '' अगर पुराना झण्डा चला तो उसका यही मतलव होगा कि पुराना राज्य जारी है जैसे नये राज्य में नया झण्डा होता है वैसे ही नये राज्य में नयी तालीम होनी चाहिए।

विनायक के मन में एक बार गम्भीर मंथन चल रहा था। उन्होंने स्वयं लिखा है " अपने बचपन से ही मेरा ध्यान बंगाल और हिमालय की तरफ लगा हुआ था। मैं हिमालय और बंगाल जाने के सपने देखा करता था। वन्दे मातरम् की क्रान्ति की भावना मुझे बंगाल की ओर खींचती थी। दूसरी तरफ हिमालय का ज्ञानयोग मुझे अपनी ओर खींच रहा था। जब सन् 1916 में मैं घर छोड़कर निकला, तो मेरी एक इच्छा बंगाल जाने की और दूसरी इच्छा हिमालय पहुंचने की थी। हिमालय और बंगाल दोनो के रास्ते में काशी नगरी पड़ती थी, संयोग से मैं वहां पहुंच गया।"

विनोबा जी काशी में करीब दो महीने रहे। गंगा के किनारे एक छोटी सी कोठरी में रहते थे। सुबह अन्न क्षेत्र में भोजन करते थे वहां दिन में एक ही बार भोजन मिलता था और दक्षिणा के रूप में दो पैसे मिलते थे शाम को इनमें से एक पैसे का दही और एक पैसे का शकरकंद खरीदकर खा लेते थे। दिन भर पढ़ते और सोचते रहते थे। वहां पर उन्होंने पुरानी परिपाटी के अनुसार संस्कृत, वेदांग और काव्य रचना का अभ्यास शुरू किया। वहां के पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ डाली। गंगा के किनारे बैठकर घण्टों सोच विचार करते रहते और उन दिनो वे कविता भी लिखते और लिखी हुई कविताओं के कागजों की पुड़िया बनाकर उसे गंगा के प्रवाह में बहाते रहते। कभी कभी वह काशी में चलने वाले शास्त्रार्थो की सभा में पहुच जाते थे और ध्यानपूर्वक शास्त्र चर्चा सुना करते थे।

एक दिन द्वैतवादियों और अद्वैतवादियों के बीच हुए जोरदार वाद-विवाद के अन्त में अद्वैतवादियों की जीत हुई तभी विनोबा जी ने सभा के बीच खड़े होकर कहा " आज अद्वैत की हार हो गई अगर अद्वैतवादियों ने द्वैतवादियों से चर्चा की तो इसी से सिद्ध होता है कि अपने व्यवहार में द्वैत को स्वीकार किया है। इसलिए आप हारे है अतएव अद्वैत की चर्चा करके व्यवहार में द्वैतवादी बन जाने के बदले हमें द्वैतवादियों को भी अपने में सम्मिलित करके वास्तविक अद्वैत सिद्ध करना चाहिए।"

उन दिनो क्रान्ति और अध्यात्म का द्वैत भी विनोबा जी को बहुत परेशान किया करता थ। उनका ह्रदय इन दोनो के बीच अद्वैत के लिए छटपटाता रहता था। तभी एक दिन उन्हें गाँधी जी की याद आई। उन्होने गाँधी जी के आश्रम की एक पत्रिका देखी। गाँधी

जीवन और कार्य (साधना की पूर्व तैयारी) - विनोबा भावे पृष्ठ 17

शिक्षा विचार (शिक्षणार्थियों से) - विनोबा भावे पृष्ठ 135

जी का काशीवाला प्रसिद्ध भाषण तो विनायक ने अखवार में तभी पढ़ लिया था जब वे वड़ौदा में थे।

4 फरवरी 1916 के दिन वनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय के शुभारम्भ के समय जो सभा आयोजित हुई थी उसमें गाँधी जी सम्मिलित हुए थे। उस समय वड़े बूढ़े विद्वानों राजा महाराजाओं और वाइसराय की उपस्थिति में गाँधी जी ने वहां की धूमधाम और ठाट बाट की वहुत बड़े शब्दों में भर्त्सना की थी। उन्होने राजा महाराजाओं को स्पष्ट शब्दों में कहा था कि आप अपने धन का दुरूपयोग देश की गरीबी मिटाने में कीजिए। सभा में वाइसराय की सुरक्षा के लिए पुलिस की और खुफिया पुलिस की जो भीड़ वहां उमड़ी थी, उसकी तरफ इशारा करके उन्होने पूछा था कि आप इस देश की जनता से क्यों डरते है ?

गाँधी जी ने अपने भाषण में वमवाजी, क्रान्तिकारियों कीदेशभक्ति की ओर उनके त्याग की प्रशंसा की और फिर चुटकी लेते हुए उनसे पूछा कि यों लुक छिपकर वम फेंकने में कौन सी वहादुरी है ? खून करने या डाके डालने में वीरता क्या है ? अगर अपने देश में हम अंग्रेजों को नहीं चाहते हैं तो हम खुल्लमखुल्ला उनसे कहें कि वे चले जायें और अगर ऐसा कहने के लिए फांसी पर लटकना पड़े तो हंसते हंसते मर जायें।

गाँधी जी की ऐसी तीखी भाषा को समिति की अध्यक्षा श्रीमती एनीवेसेन्ट सहन नहीं कर सकीं थीं, इसलिए वे और दूसरे कई राजा महाराजा एक एक कर सभा से उठकर चले गए थे। लेकिन श्रोता तो इस वात से ही वहुत खुश हो गए थे कि उनके मन की बात को वीर गाँधी ने इतनी बहादुरी के साथ वाइसराय के सामने कहा। इस सभा के समाचार इस समय अखवारों में छपे थे। विनायक व उनके मित्रों ने ये समाचार वड़ौदा में पढ़े थे।

विनायक पर गाँधी जी के इस भाषण का वहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। इसके बाद उन्होने गाँधी जी के आश्रम की पत्रिका पढ़ी। विनोवा ने अनुभव किया कि यह एक ऐसा पुरूष है जो देश की राजनैतिक स्वतंत्रता और उसके आध्यात्मिक विकास को एक साथ सिद्ध करना चाहता है। और विनोबा को इसी की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होने गाँधी जी को पत्र लिखकर उनसे कुछ सवाल पूछे, जवाव मिलने पर कुछ और सवाल पूछे। गाँधी जी ने लौटती डाक के आश्रम में भरती होने सम्बंधी नियमों की पत्रिका भेजी और लिखा कि पत्र व्यवहार से वात बहुत साफ नहीं हो सकेगी, इसलिए आकर मिलिए।

और विनोबा जी के पैर अद्वैत की खोज में महात्मा गाँधी की ओर मुड़े।

आध्यात्मिक कृति के संस्कार :-

विनोवा जी की माता अत्यंत भक्त हृदय की थी। धर्म में और साधु संतो में उनकी अगाध श्रद्धा थी। मराठी संतो के कई पद उन्हें जवानी याद थे। उनके कण्ठ भी मधुर था। नहाते धोते घर का काम काज करते और रसोई वनाते समय भी वे भजन गाती ही रहती थीं। घर में एक देवधर था। वहां बैठकर वे रोज पूजा पाठ किया करती थीं और अपनी पूजा के अंत में अपने दोंनों कान पकड़कर कहा करती थीं '' हे अनंत कोटि व्रह्माण्ड नायक ! मेरे अपराध क्षमा कर। '' और यों कहते कहते उनकी आंखों से आंसुओं की धारा वहने लगती थी। विनोवा जी के चित्त पर अपनी माता की इस भक्ति का और उनकी ईश्वर निष्ठा का गहरा प्रभाव पड़ा है।

समझने की वात यह है कि यह वाहरी क्रियाकाण्ड मात्र नहीं था। यह सभी तो उनके जीवन में समा चुका था, उसकी गहराई में उतर चुका था, इस कारण रोज रोज के व्यवहार में भी सहज ही प्रकट होता रहता था। रोज रात को दूध में जामन डालते समय माँ भगवान का नाम लिया करती थी। एक बार विनोबा ने पूछा '' माँ! दही जमाते समय भगवान को बीच में लाने की क्या जरूरत है ? माँ बोली ''बेटा, अपनी ओर से भले ही हमने सभी तैयारी की हो, पर दही तो तभी जमेगा जब भगवान की कृपा होगी। प्रयत्न मनुष्य का, कृपा भगवान की।

दरवाजे पर भिखारी भीख मांगने आया करते थे। गीता का हवाला देकर विनायक कहा करते थे कि भीख तो सुपात्र को ही देनी चाहिए। इस पर मां उन्हें समझाती थी '' बेटा, इन भिखारियों के वेश में भगवान ही हमारे दरवाजे आता है। ऐसी स्थिति में मैं पात्र अपात्र का विवेक करने क्यों बैठूं ? ऐसा भेद या विवेक करने वाले तुम या मैं कितने सुपात्र है ? विनोबा कहते हैं कि अपनी माँ के इस प्रश्न का उत्तर मुझे आज तक नहीं मिला।

गागोदे में भावे परिवार के साथ एक अच्छे चाचा भी रहते थे। मां उनकी सेवा वहुत ही भाव से किया करती थी। जब वे मर गये, तो घर में स्नान सूतक की कोई बात नही उठी। इस पर विनोबा ने पूछा : - ऐसा क्यों ? तव सारी वात का भेद खुला। माँ ने कहा : - ''बेटा वे हमारे परिवार के नहीं थे। वेचारे अंधे थे और उन्हें कोई सम्भालने वाला नहीं था, इसलिए मैंने उनसे कहा था कि वे हमारे साथ आकर रहें व्यवहार इतने अपनेपन का रहा कि

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ 11

आत्मकथा - विनोबा भावे पृष्ठ 13

इतने सालों तक परायेपन का पता ही नही चला।

जब पड़ोस के किसी घर में जरूरत खड़ी होती, तो रखुमाई अपने घर की रसोई बनाकर पड़ोसी के घर की रसोई बना दिया करती थी। एक दिन बिनु ने कहा '' माँ तुम तो बहुत स्वार्थी हो ! पहले अपने घर की रसोई बनाती हो और फिर पड़ोसी के घर रसोई बनाने जाती हो। '' माँ ने कहा : '' विन्या, तुम तो बिल्कुल मूर्ख हो! अगर मैं पहले पड़ोसी के घर की रसोई बना दूं, तो उन्हें ठण्डा भोजन मिलेगा। बाद में बनाऊँ, तो गरम गरम मिलेगा।

भावे परिवार में एक गरीब विद्यार्थी को रख लिया था। घर में कोई बासी चीज बच जाती थी तो मां उसे खुद खाती थी या अपने बच्चों को खिलाती थी एक दिन विनोबा ने अपने तर्क से सोचा और कहा '' माँ तुम तो कहती हो कि सभी को समान दृष्टि से देखना चाहिए फिर तुम ऐसा भेद क्यों करती हो ? '' माँ ने जबाव दिया :'' बेटा, तुम सच कहते हो। तुम मुझे पुत्र के रूप में दिखाई देते हो । जब कि यह विद्यार्थी भगवान के रूप में दिखाई पड़ता है। वैसे तो सभी में भगवान का रूप दिखना चाहिए, लेकिन आसक्ति के कारण तुम मुझे पुत्र स्वरूप लगते हो, इसलिए यह भेदभाव बना रहता है।

ऐसी यह भक्त हृदया माँ को भले ही कहीं हरिदर्शन की कथा तक न पहुंच पायी हो, फिर भी बांटकर खाने के संस्कार तो इन्होने अपनी संतान को बचपन से ही दिए थे। माँ जिस प्रेम से बात समझाती थी, बाद में वही बात विनोबा ने सारी दुनिया को समझायी। माँ बालकों से पूछा करती '' बोलो देव बनोगे या राक्षस ? भला राक्षस बनना कौन पसंद करता ? लेकिन देव कौन और राक्षस कौन ? माँ कहती '' देने वाला देव, रखने वाला राक्षस । ''

विनोबा जी पर रखुमाई के प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। बचपन में पूरे वात्सल्य के साथ उन्होंने विन्या को उत्तम संस्कार दिए थे।

एक बार माँ ने कहा : यह संस्कृत गीता मेरी समझ में नही आती। मुझे मराठी गीता ला दो। विनोबा जी ने मराठी का गद्य अनुवाद ला दिया इस पर माँ बोली '' गद्य नहीं, पद्य हो तो अच्छा । '' पद्य अनुवाद ला दिया। कुछ दिनो के बाद माँ ने फिर कहा '' यह पद्य तो संस्कृत के समान ही कठिन है।'' विनोबा बोले - '' माँ इससे सरल दूसरा कोई अनुवाद है ही नही। '' माँ के मुंह से सहज ही बात निकल पड़ी '' तो तुम ही हमारे लिए अनुवाद क्यों नही कर देते ? विनोबा जी उस समय तो माँ की यह इच्छा पूरी नही कर सके पर माँ ने बेटे में जो विश्वास रखा था, वह कुछ सालों के बाद फला और हमें मराठी पद्य में गीता का बढ़िया अनुवाद मिला। इस प्रकार माता पिता के संस्कारों के द्वारा ही विनोबा जी का पिण्ड पुष्ट हुआ।

वैराग्य पूर्ण जीवन :-

विनोवा जी के व्यक्तित्व में हमें वैराग्य का रूप भी देखने को मिलता है।

अपने वेटे की विचित्रताओं अथवा विशेषताओं को भी माँ प्रेम से निभा लेती थी। विनोवा जी को घूमने का वहुत शौक था मित्रों के साथ उनकी चर्चायें भी अखण्ड रूप से चलती रहती थी। इसलिए रात को वह वहुत देर वाद घर पहुंचते थे। घर के दूसरे सव लोग खा पीकर निपट जाते थे लेकिन माँ विनोवा की वाट में वैठी रहती। आने पर वहुत ही प्रेम से भोजन करवाती। इसके लिए उन्होने वेटे से कुछ भी नहीं कहा।

अपनी छोटी वहिन शांता के विवाह के अवसर पर विनायक ने कहा – मैं विवाह में सम्मिलित नहीं होऊँगा और विवाह का भोजन भी नहीं करूंगा। माँ ने चुपचाप सुन लिया और अपने विनोवा के लिए अलग से रसोई वना दी। लेकिन परोसते समय उन्होने विनोवा को वहुत ही प्रेम से समझाया –" अरे विनोवा, विवाह के भोज के लिए वनी मिठाई तुम न खाओ, इसे तो मैं समझ सकती हूं लेकिन खाना खाने में क्या आपत्ति? वही दाल है और वही चावल ! दोंनो जगह मैंने ही उन्हें पकाया है। माँ की सच्ची वात तुरंत ही विनायक की समझ में आ गयी। ऐसा लगता था कि यह भी सत्याग्रह की एक रीति थी। माँ ने पहले वेटे का सत्य स्वीकार कर लिया और फिर प्रेमपूर्वक उसे अपना सत्य समझा दिया।

माँ जानती थी कि वेटा एक अलग ही मिट्टी का वना है। वेटे का जो विकास हो रहा था, उसे देख देखकर माँ वहुत खुश होती थी। वे देखती थी कि वेटा कठोर साधना कर रहा है। उसके अन्दर वैराग्य की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह वेटे को इस रास्ते पर वढ़ने से विल्कुल भी नहीं रोकती थी, उल्टे उसे प्रोत्साहित करती रहती थी। 42 साल की उम्र में सन् 1918 में रखुमई का शरीर छूटा। उस समय विनायक आश्रम में थे। जैसे ही गाँधी जी को विनोवा की माँ की गम्भीर वीमारी के समाचार मिले, उन्होने विनोवा को वड़ौदा भेज दिया। माँ के अंतिम दिनों में विनोवा उनकी सेवा सुश्रूषा कर सकें। लेकिन इस वात को लेकर मतभेद खड़ा हो गया कि उत्तर क्रिया व्राह्मणों से करवायी जाये या नही। विनोवा ने कहा " मुझे यह स्वीकार्य नहीं कि उत्तर क्रिया व्राह्मणों के हाथो हों। " पिताजी की यह दलील थी मेरी मृत्यु के वाद विना किसी क्रियाकाण्ड के मेरा अग्नि संस्कार करोगे, क्योंकि क्रियाकाण्ड पर मेरा कोई खास विश्वास

जीवन और कार्य – विनोवा भावे पृष्ठ 206

नहीं है। लेकिन अपनी माँ के बारे में तो तुम्हें उनके विचारों और उनकी भावनाओं के अनुरूप वर्ताव करना चाहिए।''

विनोबा के व्यक्तित्व में हमें वैराग्य के दर्शन होते हैं। वे वेदान्ती थे कभी कभी कह देते हैं '' मैं कौन हूं ? इस प्रश्न का मुझे एक मात्र उत्तर मिलता है कि मैं आत्मा हूँ।'' जिन दिनो विनोबा सावरमती आश्रम में रहते थे, तभी एक दिन नदी में नहाते समय वह वहने लगे। उस समय वचाओ ! बचाओ ! की पुकार मचाने के वदले उन्होने चिल्लाकर कहा – '' वाप को मेरे प्रणाम पहुंचाओ ! उनसे कहिए कि विनोबा नदी में वह गया, और कहिए कि आत्मा अमर है '' जिस समय लोग उन्हें बचाने के लिए पहुंचे उस समय विनोबा '' आत्मा अमर है '' रट कर रहे थे। हम उनकी भावना देख ही चुके हैं कि स्वराज्य यानि आत्मा की सत्ता। इसके अलावा, विनोबा यह भी कहते है कि ग्रामदान का विचार आत्मा की व्यापकता का विचार है।

इसलिए विनोबा बार बार कहते रहते हैं कि इस नर देह का मुख्य स्त्रोत है, आत्मा का साक्षात्कार। यह देह तो आपको एक ट्रस्ट के रूप में मिली है। इसका यही मुख्य काम है वकाया के सम्पूर्ण कार्य गौण है। इस प्रकार हमें हमेशा यह सोचना चाहिए कि इस तरह नर देह के मुख्य उद्देश्य रूप आत्म साक्षात्कार के कितने करीब पहुंच पाये हैं।

विनोबा की दृष्टि से सेक्यूलर का अर्थ धर्मविहीन नहीं, बल्कि सभी धर्मो का समन्वय है। वे कहते थे, कि सार स्वीकार करो, असार को छोड़ो। विभिन्न धर्म ग्रंथो में से चुनकर उनका सार महत्व निकाल लिया जाये तो प्रत्येक धर्म ग्रंथ के युग के अनुरूप नवीन स्वरूप प्राप्त हो और दूसरे धर्मों को मानने वालों के लिए भी यह सुलभ हो जायें। इसी प्रेरणा से विनोबा ने विभिन्न धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया, दोहन किया, शोधन किया और सम्पादन किया। इस सभी के परिणामस्वरूप समाज को उत्तम आध्यात्मिक पथ प्राप्त हुआ।

विनोबा ने इसी तरह संतो के साहित्य का भी निचोड़ संशोधन और विवरण किया है। इन सभी में उनकी ज्ञानदेव चिन्तनिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह भी एक विशेष भावास्था में लिखी गयी है। उसके बारे में स्वयं विनोबा ने कहा है '' इस चिन्तनिका में मैंने जितना चिन्तनांश उड़ेला है, उतनी गीताई और गीताई कोश को छोड़कर दूसरी किसी कृति में नहीं उड़ेला है। उसमें एक ऐसी मिठास है जो कभी वासी नहीं होगी।

तीसरी शक्ति – विनोबा भावे

आत्म कथा – विनोबा भावे

इसके अतिरिक्त विनोवा जी के असंख्य प्रवचनों पर से संकलित और सम्पादित रूप में भी उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। उन पुस्तकों में सर्वोदय विचार का सुन्दर विवरण और विवेचन है। विनोबा जी की शैली बहुत रोचक अर्थगर्भित और प्रसादपूर्ण है। उनके लेख और प्रवचन बहुत ही मधुर और ह्रदयस्पर्शी होते है। उनकी विद्वता असीम है फिर भी उनकी शैली में न तो उसका कोई वोझ व्यक्त होता है और न शुष्कता ही व्यक्त होती है। जीवन भर की उनकी तपस्या के कारण उनके शब्दो में सूक्ष्म वोधकता, निर्मल पावकता और अनोखी प्रेरकता आ गयी है।

वैराग्य का अर्थ देखे हुए या सुने हुए अथवा कल्पनागत विषयो की अर्थ शून्यता या निःसारता बुद्धि में जगना वैराग्य का मतलव ऊवना नही है वैराग्य निश्चल और निर्भय अवस्था है विरक्त पुरूष को कुछ लेने की आवश्यकता नही और न कुछ छोड़ने की जरूरत है। वैराग्य अथवा मन की समता है।

विनोबा जी के आश्रम में श्रम के साथ हमेशा वैराग्य का वातावरण बना रहता। वहाँ पर जो भी कार्य होते। वे उपासना की वृत्ति से चला करते थे। विनोवा जी का विभिन्न विषयों का अध्ययन और अध्यापन अखण्ड रूप से चलता रहता था। विनोवा जी का अध यथन भी बहुत सूक्ष्म और गहरा होता था। वे वेदों और उपनिषदों के अध्ययन में तल्लीन होते थे, तो वे अपने आसपास की सभी प्रवृत्तियों को भूल जाते थे। कुछ समय तक तो वे वेदाध्ययन में इतने डूबे कि उन्होने शरीर श्रम को भी छोड़ दिया, जो आश्रम जीवन का अविभाज्य अंग माना जाता था। आहार सूक्ष्म ही लेते थे। उन दिनों वे दूध, फल, और खजूर ही लेते रहे। दिन रात उनके कमरे से वेद वेदान्त की आवाज आती रहती थी। अपनी तीव्र बुद्धि से वेदों के विशाल क्षेत्र में से अर्थ को निकालने का विनोबा जी का यह वैदिक श्रम बुनाई के श्रम की तुलना में तो ठीक पर कुदाली से ख़ोदने के श्रम से भी खराब नही होता था।

विनोबा जी कहा करते थे कि " चार पुस्तक पढ़कर दिमाग में थोड़ी जानकारी इकट्ठा कर लेना ही बौद्धिक श्रम नहीं है मैं तो वौद्धिक श्रम उसे मानता हूं जिसमें श्रम करने वाले को खाने पीने का भी ज्ञान नहीं होता और जिसमें शारीरिक श्रम से भी अधिक थकावट जान पड़ती है। चित्त को एकाग्र करके बुद्धि से निकालना चाहिए। " यह सच है कि वेदाध्ययन के बाद विनोबा जी थक जाते थे उनका वेदाध्ययन किसी शरीर श्रम से कम कठोर नहीं होता था।

वैज्ञानिक वृति के संस्कार :-

विनायक के पिता नरहर भावे बड़े स्वाभिमानी, टेकवाले, व्यवस्था के आग्रही, उत्तमशील और लगन वाले पुरूष थे। पुरानी मान्यताओं और आहर विहार के संकुचित विचारों से वे बिल्कुल विमुख थे। वे इस बात की बहुत सावधानी रखते थे कि बालक अच्छे संस्कार वाले बनें और उनकी उद्योगों में रूचि बढ़े। जिन दिनों विनायक छोटे थे और गागोदे में रहते थे उन दिनो एक बार दीपावली के अवसर पर उनके पिताजी घर आने वाले थे माँ ने विनोबा से कहा था कि जब तुम्हारे पिताजी आयेंगे तो वे तुम्हारे लिए मिठाई लायेंगे। पिताजी ने आने पर विनु के हाथ में लाल पीले रंग का एक पैकेट रखा और उसके ऊपर का कागज हटाकर कहा - '' लो रामायण, महाभारत और भागवत की यह मिठाई लो। '' माँ की आंखो से आंसुओं की धारा बह चली, बोली ''इससे बढ़कर मिठाई और क्या हो सकती है ? बस तभी से विनायक को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने की धुन लगी।

कला और उद्योग में पिता की विशेष रूचि थी। उन्होने जीवन भर रंगाई के क्षेत्र में संशोधन का काम किया। उनका कमरा प्रयोगशाला के जैसा लगता था। रंगों के बारे में वे तरह तरह के प्रयोग बराबर करते रहते थे। वे कपड़ों के छोटे छोटे टुकड़ों को रंगा करते थे और परीक्षा करते कि कौन सा रंग कच्चा और कौन पक्का है। कौनसा रंग धूप में टिकेगा और कौन सा धूप और पानी दोंनो में टिकेगा। महाराष्ट्र चरखा संघ में रंगाई के सारे काम की व्यवस्था उनके निर्देशन में की गयी थी।

जब बड़ौदा में कपड़े की पहली मिल शुरू हुई, तो उन्हें बहुत खुशी हुई। उस दिन घर आकर यह सूचना इतनी हर्ष के साथ दी कि माँ के मुंह से अपने आप ही निकल पड़ा '' इतनी खुशी तो आपको विन्या के जन्म का समाचार सुनकर भी नहीं हुई होगी।'' वे हमेशा कहा करते थे कि भारत का आधुनिकीकरण होना चाहिए। मशीनरी आनी चाहिए।

जब गाँधी जी ने ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की और हाथ कागज का उद्योग शुरू किया तो यह कल्पना उनको बहुत पसंद आई। गाँधी जी के निमंत्रण पर वे मगनबाड़ी पहुंचे और निरीक्षण के बाद उन्होने सलाह दी कि कागज का खोवा बनाने के लिए मशीन का उपयोग करना चाहिए। बाँकी सम्पूर्ण क्रियायें भले ही हाथ से हों।

यह सन् 1934 की बात है उन दिनो ग्रामोद्योग के सभी काम हाथ

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ 9

ही से करने पर जोर दिया जा रहा था, इसलिए उनकी सलाह मानी नही गई लेकिन बाद में वह मान ली गयी। और अब हाथ कागज के कारखानों में लुगदी या खोवा मशीन से ही बनाया जाता है।

उन दिनो पिताजी ने विनायक को एक पत्र लिखा था। पत्र इस प्रकार था –

'' इस पत्र का कागज मैंने अपने हाथ से बनाया है। जिस स्याही का उपयोग किया है उसे भी मैंने ही बनायी है और जिस कलम से पत्र लिखा है वह भी मेरी बनाई हुई है। कागज में थोडा नीलापन रह गया उसे भी दूर किया जा सकता है। पर इसे दूर करने के लिए जिस द्रव्य की आवश्यकता है उसे बाहर से मंगवाना होगा, इसलिए उसका विचार छोड़ दिया है। नीलापन बुरा तो नहीं है।''

विनोबा की माँ की मृत्यु के बाद पिताजी 30 वर्ष और जिए। अकेले रहे उन्होने किसी की सेवा नहीं ली। अपने सभी काम खुद ही कर लिया करते थे। उन्होने पूरे पचपन साल की पक्की उम्र में संगीत सीखना शुरू किया। कुछ समय तक फैय्याज खां जैसों के पास भी रहे। खुद संगीत सीखकर उसमें इतने कुशल बन गए कि दूसरों को भी सिखाने लगे। आगे चलकर उन्होन संगीत शास्त्र पर कुछ पुस्तकें भी लिखीं उनकी इस लगन की और नयी नयी बातें सीखने की उमंग के दर्शन हमें विनोबा जी के जीवन में भी देखने को मिलते हैं।

विनोबा जी का आचार्यत्व :–

आचार्य से तात्पर्य आचार्यो का होता है, अनुशासन और सत्ताधारियों का होता है शासन। शासन और अनुशासन। इन दोंनो के बीच जो फर्क है उसे हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यदि दुनिया शासन के मार्गदर्शन में रहेगी, तो दुनिया में कभी समाधान नहीं होगा। लेकिन इसके बदले, दुनिया आचार्यो के अनुशासन में चलेगी, तो दुनिया में शांति रहेगी। आचार्य कैसे होते हैं ? विनोबा जी ने गुरूनानक की भाषा में आचार्यो का वर्णन करते हुए कहा है कि वे निर्भय निर्वर और निष्पक्ष होते हैं। आचार्य कभी अशांत नहीं होते। इनके मन में कभी दुख नहीं होता। यदि लोग उनके मार्गदर्शन में चलेंगे तो लोगों का कल्याण होगा। इसे कहते हैं अनुशासन। आचार्यो का अनुशासन ऐसे आचार्य जो मार्गदर्शन करेंगे, अगर शासन उसका विरोध करेगा तो उसके विरूद्ध सत्याग्रह करने का सवाल उठेगा परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यहां का

आत्म ज्ञान और विज्ञान – विनोबा भाते

शासन ऐसा कोई भी काम नहीं करेगा, जो आचार्यो के अनुशासन के विरोध में होगा। इसलिए सत्याग्रह करने का मौका भारत में नही आयेगा।

देश में उत्पन्न हुई गम्भीर उलझन को सुलझाने की दिशा में विनोबा का यह पहला कदम था। इसके बाद तुरंत ही अपने विचारानुसार एवं श्री मन्नारायण जी के माध्यम से उन्होने जनवरी 1976 में अपने आश्रम में आचार्यो का एक सम्मेलन आमंत्रित किया। उस सम्मेलन में मुक्त और निर्भय चर्चा हुई। सम्मेलन की तरफ से एक सर्वसम्मत निवेदन भी प्रकाशित हुआ। उस समय की परिस्थिति में वह बहुत उपयोगी था। इसी बीच सन 1976 के मई महीने में विनोबा ने यह घोषित किया कि यदि सारे देश में गोवध बंदी की घोषणा नहीं की गयी तो वे 11 सितम्बर 1976 को उपवास शुरू करेंगे। यहीं उनके आचार्यत्व के दर्शन होते हैं। विनोवा जी के अनुसार संस्कृत में शिक्षक को आचार्य कहते हैं। आचार्य शब्द ही खुद वोलता है। आचार्य का अर्थ यह वताया गया है कि अचिनोति अर्थात् अचिरति। आचारं कारयति। जो सभी विषयों का अध्ययन करता है, खुद आचरण करता है और दूसरों से आचरण कराता है उसका नाम है आचार्य। संस्कृत में चर धातु कामधेनु जैसी है। चर पर से चारित्र्य। चारित्र्य यानि शील। चारित्र्य पर से Characters शब्द बना। चरण यानि पांव। उसका आचरण के साथ संवंध है तो चर धातु पर से आचार्य शब्द बना। ऐसे ही संचार, विचार, प्रचार,उच्चार आदि शब्द चर धातु से बने हैं। हमारे देश के बड़े बड़े ज्ञानी आचार्य कहलाये जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य।

हिन्दुस्तान में आचार्य शब्द के लिए जो आदर है, वह बाहर की किसी भाषा में नहीं है। यहां आचार्य देवोभव कहा गया है इस तरह के आचार्य (विनोवा जी) जो कि भारत में थे, जिन्होने समाज को रूप दिया। सिर्फ पुस्तकें ही नहीं लिखीं बल्कि ज्ञान के ग्रंथ लिखे और हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण प्रांतों में घूम घूमकर तत्वज्ञान का प्रचार किया। विनोवा जी ने प्रत्यक्षतः विद्यार्थियों को भी ज्ञान दिया। आचार्यो के तीन गुण है।

1. शीलवान -
2. प्रज्ञावान -
3. करूणावान।

शीलवान साधु होता है। प्रज्ञावान ज्ञानी होता है। करूणावान माँ होती है। परन्तु आचार्य साधु, ज्ञानी और माँ तीनों ही होता है। जो कि विनोवा जी की छवि में स्पष्ट

देखने को मिलते हैं। ऐसे आचार्यो के द्वारा ही हमारा देश बना है।

आज चारो ओर अंधकार है, परन्तु प्रकाश के सामने अंधकार का कोई मूल्य नहीं है। शिक्षकों की जो अल्पशक्ति है वह ज्योति है, प्रकाश है, वह ज्ञान है, वह विचार है, चिंतन मनन है। अब ऐसे आचार्यो, प्राचार्यो आदि द्वारा जो कार्य होने जा रहा है उसका नाम क्या रखा जाये ? विनोबा जी के अनुसार आचार्यकुल से बेहतर नाम कोई नहीं सभी आचार्यो का एक ही कार्य है ज्ञान की उपासना करना, चित्त शुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के लिए वात्सल्य भावना रखकर उनके विकास के लिए सतत् प्रयत्न करते रहना, सम्पूर्ण समाज पर जो समस्यायें आती है उन पर तटस्थ भाव से चिंतन करके सर्वसम्मति का निर्णय समाज के सामने रखना और समाज को उस प्रकार से मार्गदर्शन देते रहना इत्यादि। आचार्यत्व के अंदर ही समाहित है।

अनन्य प्रेम और वात्सल्य :-

विनोबा जी ने अपने आश्रम में विद्यार्थियों को पढ़ाया ही नहीं है बल्कि, अत्यंत प्रेम और वात्सल्य के साथ स्वयं रसोई बनाकर उनको भोजन भी करवाया है। साबरमती आश्रम में उन्होने छात्रावास के बालकों को जागो मोहन प्यारे जैसे मधुर भजनों से सुबह जगाना शुरू किया था। पवनार आश्रम में एक बहुत मजेदार लड़का था लेकिन उसे छिपकर बीड़ी पीने की आदत पड़ गयी थी। एक दिन वह पकड़ा गया। विनोबा ने उस पर गुस्सा होने के बदले प्रेम से समझाया -" तुमने छिपकर बीड़ी पी, यह तुम्हारा गलत काम हुआ। मैं तुम्हें बीड़ी का बण्डल मँगा देता हूं जब तुम्हें पीने की इच्छा हो, उस कमरे में जाकर पी लिया करो।" और सचमुच ही आश्रम के खर्च के खाते में बीड़ी के दाम डलवाकर उन्होने बीड़ी मंगवा दी। दूसरे आश्रमवासियों को यह एक अजीब सी बात लगी। लेकिन प्रेमपूर्वक समझाने का विनोबा का यह अपना एक अनोखा तरीका था। कुछ ही समय में लड़के ने बीड़ी पीना छोड़ दिया।

वैसे आश्रम में विनोबा जी का अनुशासन बहुत कठोर रहता था। उनका अपना जीवन कड़े श्रम से परिपूर्ण रहता था। वे अपने विद्यार्थियों से भी ऐसे ही कड़े परिश्रम की अपेक्षा रखते थे। फिर भी अपने वात्सल्य के कारण वे हमेशा अपने विद्यार्थियों के चहेते बने रहे।

एक बार साबरमती आश्रम के छात्रावास के विद्यार्थियों से कहा गया कि वे अपना

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ 153

बाबा विनोबा - श्री कृष्णदत्त भट्ट

व्यवस्थापक स्वयं पसंद कर लें। इस पर उन लोगों ने ऐसे कठोर और मृदु विनोबा को ही पसंद किया। उनके एक विद्यार्थी ने कहा कि बाहर से विनोबा जी जितने कड़े दिखते है अंदर से वह उससे कहीं अधिक कोमल है। उनका स्वभाव नारियल की तरह बाहर से कठोर होते हुए भी अंदर से मिठास से भरा हुआ है।

ऋजुतापूर्ण भगवत श्रम :-

विनोबा जी की दृष्टि में न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। जो कोई भी उनके सामने है वह उनका उपास्यदेव है, और जो काम हाथ में है वह उपासना रूप है। वैसे तो किसी के मृत्यु के समाचार से विनोबा को दुख नहीं होता था लेकिन सन् 1957 में गाँधी जी के पुत्र देवदास की मृत्यु से उन्हें दुख हुआ फिर इसका पृथक्करण करते हुए उन्होंने कहा - " मुझे लगता है कि मैं देवदास को संतुष्ट नहीं कर सका था, इसका दुख मुझे है साबरमती में जब देवदास मेरा विद्यार्थी था, उस समय उसको जितना चाहिए था, उतना मुझसे दिया नही जा सका। मैंने अपने मन में सोच रखा था कि आगे भविष्य में मैं कभी उसको संतुष्ट कर सकूंगा। एक बार एक कारण वश बापू ने देवदास को मेरे पास भेजने की इच्छा व्यक्त की थी। उस समय मैंने लिखा था कि अगर आपको और देवदास को यह लगता हो कि मेरे पास आने से उसे लाभ होगा तो वह जरूर आ जाये। मेरा अनुमान है कि बापू ने यह पत्र देवदास को दिखाया होगा और बापू की ही इच्छा की बात होती तो वह जरूर आया होता, लेकिन उसकी अपनी इच्छा की भी बात थी, शायद इसी कारण वह न आया हो। इस बात की भी कभी स्पष्टता नहीं हो पायी। मैं मानता हूं कि मुझे इसी कारण दुख हुआ होगा"।

इस प्रसंग से विनोबा जी के ऋजतापूर्ण भगवत श्रम के दर्शन होते हैं। अपने हृदय के इस उत्कृष्ट गुण के कारण ही विनोबा सत्य और अहिंसा के पुजारी जैसे अनेक सच्चे सेवक तैयार कर सकें। उनके ऋजतापूर्ण भगवत श्रम के जीवन से ओतप्रोत होने के कारण उसका प्रभाव पड़ता है उन्होने बार बार कहा है कि जो आचरण करता है, वह आचार्य है, आचार्य क्या कहता है इसके साथ ही वह क्या करता है इसका भी अपना महत्व है।

अध्ययनशील जीवन :-

विनोबा जी अपने जीवन में निरंतर अध्ययनशील रहे। उन्होने अपने जीवन के द्वारा ही निरंतर अध्ययनशीलता को जारी रखा। वे हम सभी से कहते थे कि हमारा

जीवन और कार्य - विनोबा भावे

अध्ययन सर्वोदय विचार का नहीं, बल्कि दूसरी सभी विचारधाराओं का होना चाहिए। विनोवा जी के अनुसार सामाजिक कार्यों में विभूतिमत्व की आवश्यकता रहती है। ऐसी जिस विभूति का नेतृत्व हमने स्वीकार किया हो, सेवक के नाते हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करें। यही कारण है कि जब विनोबा आश्रम में थे तव वे गाँधी जी के विचारों का अध्ययन बहुत बारीकी से करते थे। गाँधी जी के हरिजन आदि सामायिक पत्रों में प्रश्नोत्तर छपा करते थे। विनोवा पहले प्रश्न पढ़ जाते थे और अपने मन में ही उनके उत्तर दे लेते थे। वाद में गाँधी जी द्वारा दिए गए उत्तर को पढ़कर देखते थे कि कहाँ क्या फर्क हो रहा है, गाँधी जी के चिंतन में कौनसी विशेषता रही है ? विनोबा जी के अध्ययनशील होने से ही यह सम्भव हुआ कि उन्होने गाँधी जी के विचारों को अपने में समाहित कर लिया है।

विनोबा जी ने जब देखा कि गाँधी जी जव उनसे हिन्दी में बात करते हैं तो वे रूक रूककर बोलते हैं इसलिए उन्होने गुरूमुख से निकलने वाली गुजराती भाषा सीख ली इससे यह मालूम पड़ता है कि वह जिस कार्य की सोच लेते थे वह कार्य विशेष अध्ययन के उपरांत पूर्ण करने में सफल होते थे। इससे उनके अध्ययनशील जीवन के दर्शन होते हैं।

सन् 1937 में बयालीस साल की उम्र में विनोवा ने मूल अरवी में कुरान का अध्ययन शुरू किया। पहले पवनार गांव के एक उर्दू शिक्षक से उन्होने कुरान पढ़ना सीखा। इस प्रकार नित्य नई बातें सीखना और दूसरों को सिखाना, विनोवा के अध्ययनशीलता का मुख्य काम रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा इतना अधिक लोक संग्रह हो सका है। उन्होने अध्ययन एवं अध्यापन को ही क्रान्ति का वाहन माना है इसलिए जव आश्रम छोड़कर वे समाज के व्यापक क्षेत्र में आये, तो उनके द्वारा लोक शिक्षण का प्रचण्ड काम हआ। अपने अध्ययनशील होने के कारण बाद में वे चलते फिरते विद्यापीठ के समान वन गये।

गीता का अनुशीलन :-

विनोवा ने साहित्य सृजन द्वारा भी बहुत बड़े लोक संग्रह का काम किया है। उनके साहित्य में भी गीताई और गीता प्रवचन ये दोनो ही उनकी अमर कृतियां है। विनोवा जी की अपनी श्रद्धा यह है कि गीताई के रूप में भगवान ने उनके हार्थो उत्तम सेवा करवा ली है। आज वे कहते हैं '' मुझे भूल जाईये। केवल गीताई को याद रखिये '' इन दोनों का सृजन

जीवन और कार्य - विनोबा भावे, पृष्ठ 152

तीसरी शक्ति - विनोबा भावे

एक विशेष भावावस्था में हुआ है। विनोबाजी का अनुभव यह है कि "गीताई लिखते समय और गीता प्रवचन करते समय मैं केवल समाधिस्थ था।" गीताई भगवदगीता का अत्यंत सरल और मधुर भाषा में किया गया समश्लोकी मराठी रूपांतर है। यह केवल शब्दानुवाद नहीं है।

संस्कृत श्लोकों के अंतरंगी भावों को सरलता से स्पष्ट करने के लिए विनोबा ने उसमें नये नये शब्दों के प्रयोग किये हैं और कहीं कहीं अपने को इष्ट लगने वाले नये अर्थों की पर्त चढ़ाई है। (अनेक जानकारों ने कहा है कि मिठास, चौकसाई, अर्थवोध, काव्ययुग आदि सभी दृष्टियों से गीता एक प्रिय कृति है)

गीता के बारे में विनोबा ने कहा है -

" गीता के साथ मेरा सम्बंध तर्क से परे हैं। मेरा शरीर माँ के दूध से पुष्ट हुआ है, लेकिन उससे भी अधिक मेरे हृदय का और मेरी बुद्धि का पोषण गीता के दूध से हुआ है। गीता मेरे लिए प्राणतत्व के समान है।"

गीता के विषय में विनोबा जी का चिंतन मनन और निदिध्यासन वर्षो से निरंतर चलता रहा है। उसी के फलस्वरूप समाज को यह विचार मिले हैं। गीता प्रवचन में वहुत ही सरल भाषा में और प्रसादपूर्ण शैली में बच्चो सेलेकर वूढ़ों तक सभी के लिए सुलभ विचार प्रकट हुए हैं।

स्थितप्रज्ञ दर्शन विनोबा की एक और कृति है। इसमें गीता के दूसरे अध्याय में वर्णित स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का अभ्यासपूर्ण शैली में तलस्पर्शी विवरण किया गया है। गीता चिंतनिका में एक एक श्लोक पर तात्विक विवेचन के साथ चिन्तनात्मक लेख लिखे गये हैं विनोबा ने गीता पर 108 संस्कृत सूत्रों की रचना की है। जो साम्यसूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। विनोबा जी ने गीता को साम्ययोग कहा है।

कर्मयोगी के विविध प्रयोग :-

वर्धा में विनोबा जी के नेतृत्व में ढाई से तीन दशक तक अत्यंत एकाग्रता के साथ साधना चली। इस साधना के चलते वहाँ कातने बुनने के प्रयोगों के साथ साथ नयी तालीम के, गौ सेवा के, कुष्ठ सेवा के, आहार शुद्धि के ओर खेती आदि के कई कामों के प्रयोग चले। इन सभी प्रयोगों में वैज्ञानिक प्रयोगशाला की सूक्ष्मता और चौकसाई रहती थी। काम चाहे अनाज साफ करने का, चक्की चलाने का, बर्तन माँजने का, रोटी सेंकने का अथवा कातने बुनने

जीवन और कार्य - विनोबा भावे, पृष्ठ 203

का ही क्यों न हो, प्रत्येक काम कितने समय में कितना हुआ इसका हिसाब रखना ही होता था। विनोबा जी का आग्रह रहता था कि कम से कम समय में अधिक से अधिक काम सुन्दर और उचित रीति से होना चाहिए और प्रत्येक कार्य की क्रिया भी शास्त्र शुद्ध और प्रथम श्रेणी की होनी चाहिए।

वह खादी का युग था। चरखे पर कातने वाले सूत की ताकत से स्वराज्य प्राप्त करने की जो बात उन दिनों गाँधी जी ने कहीं थी, देश पर उसका प्रभाव जादू की तरह हुआ था। जनता खुश थी इस खादी के समूचे शास्त्र को विकसित करने के काम में विनोबा और उनके साथी जी जान से जुट गए थे। खेत में कपास उगाने से लेकर असली खादी की धुलाई तक की प्रक्रियाओं के प्रयोग स्वावलम्बन की दृष्टि से किये गये। इन प्रयोगों के आधार पर चरखे में तरह तरह के सुधार होते गये। गरीब से गरीब आदमी के लिए भी जो तकली आसानी से उपलब्ध है, उस तकली पर तेज गति से कातने का एक समूचा शास्त्र खड़ा हो गया। बुनने की प्रक्रियाओं को भी आसान बनाने के प्रयोग चलते रहे। उन दिनो विनोबा कहा करते थे कि हमारे पूर्वजों ने चकला, बेलन, थाली, कड़छ्ल, जैसे रसोई बनाने के जो बहुत सीधे सादे साधन तैयार कर लिए थे, उन सबसे आज घर घर में रसोई बन रही है।

इसी तरह कातने बुनने के साधनों में और उनके उपयोग की पद्धति में सुधार करते करते हमें अपने समाज को बहुत सरल, सर्वसुलभ और कार्यक्षमता अनुसार साधन उपलब्ध कराने चाहिए। इन सभी प्रयोगों के अंत में अब खादी के काम की दिशा में अम्बर चरखे तक की प्रगति हो सकी है।

खादी की तरह ही दूसरे ग्रामोद्योगों और विविध रचनात्मक कार्यो के बारे में भी इसी तरह के प्रयोग होते रहे। इन सभी रचनात्मक कार्यो के विकास में विनोबा और उनके साथियों के प्रयोगों ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इसी बीच नयी तालीम, गौ सेवा, कुष्ठ सेवा आदि अनेक रचनात्मक कार्यो का विकास होता रहा। विनोबा जी ने इन सभी कार्यो के लिए फकीर बनकर अपना सम्पूर्ण जीवन इन्हीं को समर्पित करने वाले कार्यकर्ता तैयार किए। अभी तक कुष्ठ सेवा का काम ईसाई मिशनरियों को छोड़कर दूसरे किसी ने अपने हाथ में नही लिया था। विनोबा के एक साथी श्री मनोहर दिवान ने वर्धा में इस काम को उठा लिया। विनोबा जी का महारोगी सेवा मण्डल पहली

तीसरी शक्ति – विनोबा भावे

विज्ञान युग में धर्म – विंनोवा भावे

भारतीय संस्था थी, जिसने कुष्ठ सेवा का काम अपने हाथ में लिया था।

विनोवा जी के आश्रम जीवन में आत्म निग्रह पर वहुत जोर दिया जाता था। वहाँ लम्बे समय तक श्रम आधारित जीवन निर्वाह के प्रयोग चले। रोज जितनी कमाई हो, उतना ही खाना। इसमें दोपहर का भोजन तो हो जाता था, परन्तु शाम की रसोई से पहले सभी की पूरे दिन की कुल मजदूरी का हिसाव किया जाता था, और उसी के अनुसार जो कमाई होती, उसी के अनुसार शाम का भोजन वनता था। कभी कभी अकेली ज्वार की रोटी से ही काम चलाना पड़ता था कभी कभी आधे पेट खाकर ही उठ जाना पड़ता था। जिन दिनों में खेती के प्रयोग चलते, उन दिनों इस बात का आग्रह रखा जाता कि बाहर का एक मजदूर भी नहीं लगाया जायेगा। आश्रम में सात्विक हल्के और आसानी से हजम होने वाले आहार के बारे में प्रयोग चलते रहते थे।

सूक्ष्म प्रवेश के अपने इन अनुभवों के विषय में विनोबा ने अभी तक साधना के स्वरूप के बारे में कुछ विवरणात्मक वातें कहीं है। जैसे मैंने इसे सूक्ष्म कर्मयोग का नाम दिया है ध्यान, भक्ति और ज्ञान जैसा कोई नाम इसे नहीं दिया। यह भी कर्मयोग ही है। लेकिन इसका स्वरूप स्थूल के बदले सूक्ष्म है। यह जो सूक्ष्म प्रक्रिया है उसे मैंने सौम्य प्रक्रिया भी कहा है। यदि दुनिया को प्रभावित करके जीना है तो उसकी प्रक्रिया सौम्यतम होनी चाहिए।

विनोबा जी की आश्रम व्यवस्था :-

गाँधी जी ने वर्धा में सत्याग्रह की शाखा खोली पहले उन्होने श्री रमणीकलाल भाई मोदी को वहाँ भेजा था। किन्तु वर्धा की जलवायु उनके लिए अनुकूल साबित नहीं हुई इसलिए गाँधी जी ने वर्धा आश्रम की पूरी पूरी जिम्मेदारी के साथ विनोवा को आश्रम का कार्य सौंप दिया। चार साल कोचरव और सावरमती आश्रम में रहने के वाद 8 अप्रैल 1921 के दिन वर्धा आश्रम में पहुंचे। उनके साथ उनके कुछ साथी और विद्यार्थी भी थे। वर्धा पहुंचकर विनोवा जी ने अपने अनुसार व्यवस्था की। आश्रम की जगह अलग अलग कारणों से वदलती रही। मगनवाड़ी की पुरानी जगह, बजाजबाड़ी का पुराना घर, आज के महिला आश्रमवाली जगह, गोपुरी की जगह, वर्धा का कॉटन मार्केट, नालवाड़ी की हरिजन वस्ती और अंत में पवनार।

पवनार से विनोवा जी ने आश्रमी जीवन के अनेकों प्रयोग किये। 25-30 साल तक इस भूमि में उनकी कठिन तपस्या लगातार चली। विनोवा जी आश्रम को प्रयोग प्रधान संस्था मानते थे वे कहते थे, कि हमारे देश में आश्रम की परम्परा प्राचीन काल से चली आ

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ 129

रही है।

आश्रम शब्द श्रम शब्द से बना है। आ व्यापकता का सूचक है जहाँ सभी प्रकार के व्यापक श्रम श्रद्धापूर्वक किए जाते हैं वह आश्रम कहलाता है।

आश्रम में साधक लोग रहते है और वे लोग वहाँ जीवन सम्बंधी अनेक प्रयोग किया करते हैं। उनमें कुछ प्रयोग समाज के गुण वर्धन के लिए होते हैं और कुछ अपने अंदर की खोज और चित्त शुद्धि के लिए होते हैं। इस प्रकार आश्रमों में आध्यात्मिक और अधिभौतिक दोनो प्रकार की खोजें होती रहती हैं। इससे समाज को मार्ग दर्शन मिलता है।

विनोबा जी ने वर्धा में जो ज्योति प्रज्वलित की वह एक विशाल अर्थ वाले आश्रमी जीवन के लिए की। वे वर्ष उनकी कठिन तपस्या के वर्ष थे। विनोबा जी को वहाँ एकाग्र साधना करनी थी। इसलिए आश्रम के व्रतों और नियमों के कठोर और एकाग्रचित पालन का विशेष आग्रह रखते थे। सुबह से शाम तक घण्टी की आवाज पर आश्रम का सम्पूर्ण जीवन सतत् चलता रहता था। उसमें बिल्कुल भी छूट नहीं रहती थी। (जिस प्रकार अर्जुन को मछली की आँख दिखाई देती थी उसी तरह निश्चय किया हुआ काम भी उनकी आँखो के सामने रहता था)।

एक बार लम्बी जेल यात्रा के बाद विनोबा और उनके साथी जेल से छूटे। वे सभी वर्धा के स्टेशन पर उतरे और उन्होंने जब आश्रम में प्रवेश किया उस समय विनोबा ने सबसे पहले सुबह की लम्बी घण्टी बजाकर आश्रम जीवन का दैनिक क्रम शुरू किया। विनोबा जी की आश्रमी व्यवस्था बहुत ही नियमतः परिश्रम के साथ चलती थी।

इस तरह आश्रम में रहते हुए उन्होने लोक सम्पर्क भी बनाये रखा। जो समाज के साथ जीवित रूप में सम्बंध था। आश्रम की प्रवृत्तियों को, उसके कार्यक्रमों को भी उन्होने आश्रम तक ही सीमित नहीं रखा। जितनी प्रवृत्तियों को आसपास के गाँवों के साथ जोड़ना सम्भव हुआ, उतनी प्रवृत्तियों को वे उनके साथ जोड़ते चले गये। गहरी ग्राम सेवा और सघन ज्ञान सम्पर्क के लिए भी उन्होने अनेक प्रयोग किये।

एक बार उन्होने यह व्यवस्था की कि प्रत्येक कार्यकर्ता एक दिन में दो गाँवों के साथ सम्पर्क करें, लगातार चौदह दिनो तक विनोबा जी पैदल घूमें और पन्द्रहवे दिन घर वापिस आये। बाद में प्रत्येक कार्यकर्ता को पचास गांव सौंपे गये। इस प्रकार सभी ग्रामों में

तीसरी शक्ति – विनोबा भावे

जीवन और कार्य – विनोबा भावे

सम्पर्क कर प्रत्येक कार्यकर्ता विनोबा के पास पहुंचते थे। कुछ समय तक कार्यकर्ता ग्रामों में अलग अलग केन्द्र खड़े करके रहे। इसी तरह लोगों के साथ सम्पर्क रहता था। गाँव वालों की सीधी सूचना कार्यकर्ताओं द्वारा मिलती रहती थी और आश्रम के नये नये विचार गाँव वालों तक पहुंचते रहते थे।

इस प्रकार विनोबा जी की आश्रम व्यवस्था ऐसी थी जो वर्तमान समाज ग्राम एवं राष्ट्र के लिए लाभकारी है।

जेल एक आश्रम :-

सच पूछा जाये तो विनोबा जी के लिए कारावास भी आश्रमी जीवन तो उन पर भारतीय दण्ड विधान की धारा 109 वी धारा लगायी गयी थी। यह धारा उन अपराधियों के लिए है, जिसके गुजारे का कोई ठिकाना नहीं होता है। जो या तो आवारा होते है या गुण्डे होते हैं। इस वजह से उनको पत्थर तोड़ने की सख्त मजदूरी का काम दिया गया। वॉडरों का व्यवहार बहुत कठोर होता था। गाली गलौच का तो कोई हिसाब ही नहीं रहता था। इसकी वजह से विनोबा जी की संस्कारित आत्मा को बहुत दुख होता था।

जेल में विनोबा जी को जिस श्रेणी में रखा गया था उस श्रेणी की मजदूरी के अनुसार पत्थर तोड़ने का काम था किसी को यह आभास ही नहीं होता था कि यह मनुष्य चुपचाप कितनी शारीरिक यातनायें सहन कर रहा है।

विनोबा को जेल की एकान्त कोठरी में रखा गया था। लेकिन वहां भी उनकी खुशी एवं मौजमस्ती में कोई कमी नहीं आयी। विनोवा जी इस छोटी सी कोठरी में लगातार चक्कर काट्ते रहते इस तरह वे रोज आठ दस मील चल लेते थे। विनोबा जी उसी कोठरी में टहलते रहते और कवितायें, श्लोक, भजन आदि उन्हें जवानी याद थे उन्हीं को दोहराते और गाते रहते थे।

विनोबा जी के जेल जीवन की कुछ उपलब्धियाँ बहुत ही मूल्यवान सिद्ध हुई। विनोबा जी का बहुत कुछ गहन चिंतन और मनन जेल जीवन के दिनों में हुआ। कुछ अनमोल साहित्य का सृजन भी जेल में ही हुआ। विनोबा जी की माता ने विनोबा जी से जो अपेक्षा की थी वह 1930-31 में पूर्ण हुई। सरल मराठी में गीता का पद्यानुवाद तो जेल आने से पहले ही विनोबा ने पूरा कर लिया था लेकिन उसके अंतिम प्रूफ सन् 1932 में धुलिया जेल में देखे

जीवन और कार्य - विनोबा भावे

गये और उसका पहला संस्करण विनोवा जी की जेल यात्रा के दौरान ही प्रकाशित हुआ। धुलिया जेल में दूसरा महत्वपूर्ण काम यह हुआ कि वहां विनोवा ने गीता पर प्रवचन दिये।उसने गुरुजी के इन प्रवचनों को अक्षरशः लिख लिया वाद में आवश्यक संशोधन प्रवर्धन के साथ ये पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। सन् 1940-41में नागपुर जेल में स्वराज्य शास्त्र की रचना हुई और महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर एकनाथ तथा नामदेव के संकलन तैयार हुए। सन् 1942 में सिवनी जेल में "ईशावास्य वृत्ति" और स्थितप्रज्ञ दर्शन की रचना हुई। वेलूर जेल में विनोवा ने दक्षिण भारत की चारो भाषायें और लिपियां सीखीं।

अपने अंतिम जेल यात्रा के दिनों में विनोवा संस्था मुक्ति के विचार पर चिंतन करते रहे। जेल जीवन की कुछ बातें विनोबा को वहुत अच्छी लगती थीं। विनोवा जी कहते थे "सच्चे आश्रमी जीवन का अनुभव तो जेल में ही हुआ। गिनती के कपड़े, पानी का टमलर और कॉफी का कटोरा, बस इतना ही सामान। इससे अधिक असंग्रह व्रत का पालन और कहां हो सकता था ? नियमानुसार नहाना, खाना, काम करना और घण्टी की आवाज पर सोना और जागना, नियमित जीवन, बीमार पड़ने की अनुमति नही और भोजन में अस्वाद व्रत का पालन तो प्रतिदिन होता था। इससे अधिक संयम का पालन आश्रम में नहीं हो पाता।

इस प्रकार विनोवा जी के अनुसार जेल में रहकर भी उन्होंने एक आश्रम जीवन को अपनाया था। जेल में भी वही नियम संयमों का कड़ाई से पालन किया जो कि आश्रम में संभव थे इसलिए विनोवा जी के लिए जेल भी एक आश्रम ही था।

गाँधी जी के अधूरे कार्य को पूरा करने का व्रत :-

गाँधी जी की मृत्यृ के वाद विनोवा अपनी इस देशव्यापी यात्रा के चलते जगह जगह रचनात्मक कार्यकर्ताओं से मिले और केन्द्र देखें। उनके काम काज की जानकारी हासिल की। विनोबा जी के मन में चिंतन तो चल ही रहा था कि गाँधी जी के जाने के वाद अव मुझे क्या करना चाहिए ? विनोबा जी ने देखा कि चारों ओर वहुत निराशा छायी हुई है सभी रचनात्मक कार्यकर्ता निराश बैठे हुए हैं। अधिकतर कार्यकर्ता यह सोचकर बैठ गए कि अव अहिंसा और सर्वोदय के विचार नहीं चलेंगे। उन्हीं दिनो सरदार पटेल का एक भाषण हुआ था उसमें उन्होने कहा था -

---

बाबा विनोवा - विनोबा पृष्ठ 39

जीवन और कार्य - विनोबा पृष्ठ 35

" जब लोगों ने गाँधी जी की बात नहीं मानी तो हमारी बात कौन मानने वाला है ? अब जब कि देश आजाद हो चुका है हमें ऐसे उद्योगों का विकास करना चाहिए जिनमें युद्ध के लिए आवश्यक शस्त्रास्त्र तैयार करने की गुंजाईश हो। "

यह सभी कुछ सुनकर विनोबा के मन में तीव्र मंथन चल रहा था। उन्हें लगता था कि दुनियाँ में जितने शस्त्रों की आवश्यकता है उससे अधिक शांति की हमें ऐसे काम करने चाहिए जिसमें शांति की गुंजाईश और क्षमता हो। विभिन्न रचनात्मक कार्यों में ऐसी शक्ति और ऐसा तेज उत्पन्न करना होगा कि उनके द्वारा एक सर्वोदय समाज खड़ा हो सके। उसमें से ऐसी प्रभावकारी शक्ति प्रकट होनी चाहिए कि जिससे समूची समाज रचना को बदला जा सके।

इस प्रकार कोई पौने दो सालों के देश दर्शन के बाद विनोबा फिर अपने आश्रम में लौटे। इसी बीच उन्होने अनुभव किया कि देश में राजनीतिक स्वराज्य चाहे आ गया हो, फिर भी गाँधी जी का मुख्य कार्य तो अधूरा ही पड़ा है।

विनोबा के विचार में गाँधी जी के मुख्य दो काम थे पहला एक खादी ग्रामोद्योग आदि की मदद से आर्थिक क्षेत्र में लोग खुद ही शोषण से मुक्त हो।

दूसरा अहिंसा और सत्याग्रह के द्वारा लोग राजनीति के क्षेत्र में स्वयं शासन से मुक्त होकर स्वराज्य प्राप्त करें।

इस तरह मुख्य रूप से शोषण मुक्ति और शासन मुक्ति का गाँधी जी का जो काम अधूरा रह गया था, उसे पूरा करने की दिशा में हमें आगे बढ़ाया हैं।

सन् 1950 की पहली जनवरी से विनोबा ने पवनार में कांचन मुक्ति का एक तीव्र प्रयोग शुरू किया । विनोबा जी यह देखना चाहते थे कि बाजार के और पैसों के शिकंजे से छुटकारा पाया जा सकता है या नहीं। जिस हद तक सम्भव हो आश्रम की सीमा में ही स्वावलम्बन साध लिया जाये। जीवन के लिए उपयोगी वस्तुयें यथासम्भव श्रम द्वारा पैदा कर ली जायें। श्रम पर आधारित जीवन का यह एक अप्रतिम प्रयोग था। इस प्रकार विनोबा जी ने गाँधी जी के अधूरे काम को पूर्ण करने का व्रत लिया।

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ 49
बाबा विनोबा - विनोबा

भूदान और ग्रामदान :-

18 अप्रैल 1951 को पदयात्रा करते हुए नलगुण्डा जिले में प्रवेश किया और शाम होते होते पोचमपल्ली गांव में जा पहुंचे। लोगों ने रामधुन गा गाकर कतारों में खड़े हो संत विनोबा का हार्दिक स्वागत किया। इस गांव की जनसंख्या 3000 थी जिसमें से 2000 किसानों के पास अपनी भूमि नहीं थी। वे वर्ष भर औरों की भूमि में काम करते। उन्हें मजदूरी में अनाज का बीसवां हिस्सा एक कम्बल और एक जोड़ी जूता मिलता था।

संत विनोबा भावे गांव की विपत्तियाँ देख सोच में पड़ गये। उन्होंने पूछा -

" भाईयो ! दुख का कैसे अंत हो ?

एक ने आगे बढ़कर कहा, -

" महाराज हमें भूमि चाहिए "

विनोबा जी के पूछने पर दूसरे ने उत्तर दिया -

" महात्मन् ! यदि प्रत्येक को अस्सी एकड़ भूमि मिल जाये, तो निर्वाह हो सकता है। "

संत भावे ने सोचकर कहा -

- अच्छा ! आप लोग लिखकर दो। हम सरकार से सिफारिश करेंगे।

इस बीच संत भावे से पूछा -

" यदि सरकार से यह काम न वन पाये तो क्या गांव वाले भी अपने भाईयों की कुछ सहायता करेंगे ?

एक भाई रामचन्द्र रेड्डी आगे आया। वे बोले -

- महाराज ! मैं अपने और अपने भाईयों की ओर से 100 एकड़ भूमि इनके लिए देता हूं।"

अब क्या था ? मार्ग खुल गया। संत विनोबा ने अपने दरिद्र किसान

जीवन और कार्य - विनोबा भावे

तीसरी शक्ति - विनोबा भावे

भाईयों के लिए भूमि मांगना शुरू कर दिया। दो माह में बारह हजार एकड़ भूमि दान में मिल गयी।

इस प्रकार विनोबा की पदयात्रा चलती रही। नये नये रास्ते निकलते रहे। भूदान में ही ग्रामदान प्रकट हुआ। ऐसा लगा मानो कली में से फूल खिला हो। पोचमपल्ली की तरह एक घटना सहज ही घट गई। सन् 1952 की बात है विनोबा की यात्रा उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में चल रही थी मंगरोठ गांव में विनोबा का पड़ाव नहीं था लेकिन वे उस गांव के पास से गुजरने वाले थे जब गांव के लोग उनके दर्शनों के लिए पहुंचे तो वहां उन्हें एक मंत्र मिला " सवै भूमि गोपाल की।" सम्पूर्ण जमीन भगवान की ही है। मंगरोठ वालों ने इस मंत्र को चरितार्थ करके दिखाया। गांव के सभी लोगों ने मिलकर सन् 1952 के मई महीने की 24 तारीख के दिन अपने गांव की सभी जमीन विनोबा जी को अर्पित कर दी।

इस एक घटना के कारण ग्रामदान का जन्म हुआ। सभी जमीन भगवान की, यानि पूरे ग्राम समाज की। इसमें से ग्राम स्वामित्व की और जमीन के व्यक्तिगत स्वामित्व के विसर्जन की बात आई। ग्राम दान के इस विचार से भूदान को एक नया रास्ता मिला। परिवार को फैला कर पूरे गांव को अपना परिवार मानने और ग्राम परिवार के लिए अपना सब कुछ समर्पित करने का विचार प्रकट हुआ। अब बात केवल भूदान तक ही सीमित नही रही बल्कि त्याग, करूणा, और बन्धुभाव की बुनियाद पर अहिंसक समाज, रचना की निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया में बदल गयी। आगे चलकर विनोबा ने कहा " जब तक इस आंदोलन में इस तत्व का समावेश नहीं हुआ था कि एक से लेकर दूसरे को केवल देना ही नही है, बल्कि सबको समाज के लिए देना है, तब तक इस आंदोलन का रहस्य पूरी तरह मेरी समझ में नहीं आ रहा था जब यह बात समझ में आयी तो मुझे सचमुच करूणा के दर्शन हुए।

जीवन और कार्य - विनोबा भावे पृष्ठ ८९

विनोबा की रचनायें :-

विनोबा जी की विभिन्न रचनायें है जो इस प्रकार है -

1. गीता प्रवचन - विनोबा
2. गीता सार (अष्टादशी) - विनोबा
3. महागुहा में प्रवेश - विनोबा
4. विज्ञान युग में धर्म - विनोबा
5. विनयान्जली - विनोबा
6. भागवत धर्म स्तर (मीमांसा सहित) - विनोबा
7. प्रेरणा प्रवाह - विनोबा
8. नाम माला - विनोवा
9. गुरूबोध सार - विनोबा
10. गीताई चिन्तनिका - विनोबा
11. राम नाम (एक चिंतन) - विनोबा
12. ईशावास्य वृत्ति - विनोबा
13. धम्मपदं - विनोबा
14. खिरस्त धर्मसार - विनोबा
15. जपुजी - विनोबा
16. कुरान सार - विनोबा
17. जीवन साधना - विनोबा
18. तीसरी शक्ति - बालकोवा भावे
19. आत्मविज्ञान और विज्ञान - बालकोवा भावे
20. पूजागीत एक चिंतन - बालकोवा भावे
21. जीवन और कार्य - बालकोवा भावे
22. स्त्री शक्ति - बालकोवा भावे

अध्याय : तृतीय

महात्मा गाँधी एवं विनोबा जी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत

(अ) महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत :

(क) दार्शनिक आधार

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार

(ग) सामाजिक आधार

(घ) वैज्ञानिक विचार

(ड) समीक्षात्मक विचार

(ब) विनोबा के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत :

(क) दार्शनिक आधार

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार

(ग) सामाजिक आधार

(घ) वैज्ञानिक आधार

(ड) समीक्षा आधार

महात्मा गाँधी एवं विनोबा जी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत

(अ) महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों के आधार स्त्रोत :-

(क) दार्शनिक आधार : -

महात्मा गाँधी स्वतंत्रता संग्राम एवं नैतिक संग्राम के सर्वश्रेष्ठ नायक होने के साथ ही साथ एक दार्शनिक भी थे, यह बात अलग है कि उन्होने कभी भी स्वयं को दार्शनिक नहीं स्वीकार किया। हालांकि दर्शन के प्रयोजन को उन्होने माना है और कहा है कि दर्शन का प्रयोजन है कर्म की प्रेरणा ग्रहण करना, आत्मा की स्थिरता और शुद्धि प्राप्त करना। ज्ञातव्य हो कि कर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए गाँधी जी का दर्शन तर्को की बारीकियों में उलझा हुआ नहीं है। राह चलता हुआ अनपढ़ व्यक्ति भी उसे समझ सकता है।

गाँधी जी द्वारा प्रवर्तित विचार दर्शन को गाँधीवाद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। सामान्य रूप से किसी विशिष्ट विचारधारा को वाद की संज्ञा दी जाती है परन्तु गाँधीवाद को वाद न कहकर यदि सर्वोदय का सिद्धांत कहा जाये तो अधिक उपयुक्त होगा। इसी प्रसंग में गाँधी जी के विचारों को उद्दत करना भी अप्रासांगिक न होगा, जिनमें उन्होने अपनी विचारधारा को एक वाद की संज्ञा देने का विरोध किया है। 1936 में गाँधी सेवा संघ के सदस्यों के समक्ष एक सभा में भाषण देते हुए उन्होने कहा था -

" गाँधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है कि मैंने किन्हीं नये सिद्धांतों को जन्म दिया। मैंने तो अपने निजी शाश्वत सत्यों को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयत्न मात्र किया है। मैंने जो सम्मतियां बनायीं है और जिन परिणामों पर पहुँचा हूँ वे अंतिम नहीं है मैं उन्हें बदल भी सकता हूं। मुझे संसार को कुछ नया सिखाना है सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने है जितनी कि ये पहाड़ियां। मैंने तो केवल व्यापक आधार पर सत्य और अहिंसा के आचरण का जीवन और उसकी समस्याओं में अनेक विधियों से परीक्षण किया। अपनी सहज जन्मजात प्रकृति से मैं सच्चा तो रहा हूँ परन्तु अहिंसक नहीं। तथ्य तो यह है कि सत्य मार्ग की खोज में ही मैंने अहिंसा को ढूंढ निकाला। मेरा दर्शन जिसे आपने गाँधीवाद का नाम दिया

शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक सिद्धांत - रमनविहारी लाल

शिक्षा की सामाजिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि - रामशकल पाण्डेय

है सत्य और अहिंसा में निहित है। आप इसे गाँधीवाद के नाम से न पुकारें क्योंकि इसमें वाद तो नहीं है।''

प्रस्तुत शोध प्रवंध में गाँधीवाद के सैद्धांतिक स्वरूप का जो निरूपण ऊपर किया गया है वह इस तथ्य को वोध कराने में समर्थ है कि गाँधीवाद के मूल तत्वों में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा है। यह दोनो ही तत्व गाँधीवाद का मूलभूत आधार है और ये गाँधीदर्शन को विभिन्न क्षेत्रीय परिपूर्णता प्रदान करने में समर्थ है। सत्य और अहिंसा दोंनो ही कोई नवीन अथवा मौलिक तत्व नहीं है वरन भारतीय धर्म दर्शन, साहित्य और समाज में उनकी परम्परा का प्रसार सुदूर अतीत काल तक मिलता है।

गाँधी दर्शन में इनका जो स्वरूप निरूपित किया गया है वह इन्हें एक अभिनव आचरण प्रदान करता है क्योंकि गाँधी दर्शन में इन्हें समकालीन जीवन और परिस्थितियों के अनुरूप एक व्यावहारिक एवं नवीन स्वरूप प्रदान किया गया था।

सत्य :-

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से गाँधीवाद के मूल उपकरण में सत्य की प्रतिष्ठा आधारभूत स्तम्भ के रूप में है। प्राचीन भारतीय धर्म और दर्शन में सत्य की अवधारणा लगभग सभी युगों में होती रही है। सत्य की विजय दिखाते हुए वड़े वड़े महाकाव्य, नाटक और धर्मग्रंथ लिखे गये है उपनिषदों में तो यह भी संकेत है कि सत्य का मार्ग वह पथ है जिसका अनुगमन दैव अथवा विद्धान लोग करते है, क्योंकि यही मुक्ति का विधायक तत्व है इसी प्रकार से हिन्दू ध र्म से सम्बंधित अन्य ग्रंथों में भी व्रह्म को सनातन सत्य के रूप में मान्यता दी गई है। महाभारत आदि ग्रंथों में भी सत्य का महत्व प्रतिपादित करते हुए यह कहा गया है कि सत्य से वढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है क्योंकि सत्य ही धर्म का मूल है।

गाँधी जी सत्य का निरूपण करते हुए कहते हैं कि -

'' सत्य शब्द सत् से वना है सत् का अर्थ है अस्ति- सत्य अर्थात् अस्तित्व, 'सत्य' के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती नहीं है। 'परमेश्वर' सत्य है यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है कहना अधिक योग्य है। हमारा काम राजकर्ता के विना नहीं चलता।

हरिजन मार्च 1936 - गाँधी जी

धर्म नीति - गाँधी जी

आत्म कथा- गाँधी जी

इस कारण परमेश्वर नाम अधिक प्रचलित है और रहेगा। लेकिन विचारने पर तो पता लगेगा कि सत् या सत्य ही सच्चा नाम है और यह पूरा अर्थ प्रकट करने वाला है। ''

सामान्यतः सत्य से तात्पर्य लिया जात है सच बोलना। किन्तु गाँध ी जी ने उसका व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है और कहा है कि विचार, वाणी और आचार में सत्य होना आवश्यक है गाँधी जी निरपेक्ष सत्य को जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। गाँधी जी का सत्य व्यक्ति तक ही सीमित नहीं है, अपितु परिवेश सम्पूर्ण समाज है। गाँधी जी की इच्छा थी कि सम्पूर्ण सत्य का अनुपालन धर्म, राजनीति अर्थनीति, परिवार नीति सब में होना चाहिए।

गाँधी जी के विचार में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् में भेद नहीं है। ईश्वर को वे इन तीनों की त्रयी मानते हैं अर्थात् गाँधी जी ने कला के लिए कला सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया। वे ऐसी परिपूर्ण कला की बात करते थे उस सच्ची कला से जिससे सुख, संतोष और कलाकार के जीवन की सात्विकता प्रकट होती है।

गाँधी जी कहते है -

'' सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों ज्यों इसकी सेवा की जाती है त्यों त्यों उसमें अनेक फल उगते हुए दिखाई देते हैं उनका अंत ही नहीं होता। ज्यों ज्यों हम गहरे पेंठते हैं त्यों त्यों उनमे से रत्न निकलते है सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं। ''

गाँधी जी ने अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में इस सत्य के साथ निरंतर प्रयोग किया है यंग इंडिया 1926 में उन्होंने लिखा था -

'' स्वभाव से ही सत्य स्वयं प्रकाश्य है जैसे अविद्यारूपी आवरण हट जायेगा, वैसे ही सत्य पुनः प्रकाशित हो उठेगा। सत्यान्वेषण के लिए आत्मशुद्धि आवश्यक है।''

गाँधी जी के अनुसार वही बोलना चाहिए जो शुभ और सुन्दर हो। गाँधी जी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मृदु और प्रभावकारी सत्यवादिता का आदर्श प्रस्तुत किया है। अहिंसा गाँधी दर्शन का एक मूलभूत तत्व है और वह सर्वथा समष्टिगत वस्तु है। गाँधी जी की नीति मीमांसा में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान है। वे उसे परम धर्म (अहिंसा परमो धर्मः) मानते हैं। अहिंसा का इतना अधिक महत्व इसलिए है कि सत्य जिसे गाँधी जी ईश्वर मानते हैं कि अनुभूति प्रेम एवं अहिंसा से ही हो सकती है। गाँधी जी का यह निश्चित मन्तव्य था कि अहिंसा व्यक्तिगत न होकर सामाजिक गुण है और इस पर राष्ट्रव्यापी स्तर पर अमल किया जा सकता है। इसलिए उन्होने

व्यवहारिक अहिंसा के साथ साथ मानसिक अहिंसा की साधना पर भी वल दिया है। परन्तु यह सामर्थ्य उसमें तभी आ सकती है जबकि निरंतर साधना और अभ्यास किया जाये। अहिंसा की सफलतापूर्वक साधना तभी हो सकती है जव इस तथ्य की अनुभूति हो कि पूर्ण अहिंसा सम्पूर्ण जीवन धारियों के प्रति दुर्भावना का सम्पूर्ण अभाव है क्योंकि अहिंसा अपने सक्रिय रूप में सम्पूर्ण जीवन के प्रति सद्भावना और विशुद्ध प्रेम है इसी प्रसंग में गाँधी जी ने यह भी संकेत किया है कि अहिंसा मानव जाति में उसी प्रकार का नियम है जिस प्रकार हिंसा पशु का नियम है।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है- न मारना, किन्तु गाँधी जी के लिए इसका अर्थ इससे अधिक व्यापक है। उनके अनुसार इसका अर्थ है मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी जीवधारी को आघात न पहुंचाना। अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने हैं। किसी को न मारना इतना तो है ही कुविचार मात्र हिंसा है, जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है। शत्रुओं से प्यार, बुराई के वदले भलाई और घृणा के वदले प्यार करने की भावना गाँधी जी के अहिंसा की कल्पना का तत्व था। गाँधी जी के अनुसार -

" जो मनुष्य अहिंसा के सिद्धांत पर चलता है उसका कोई शत्रु नहीं रह जाता है। "

गाँधी जी अहिंसा की तीन अवस्थायें निर्धारित करते है - जागृत अहिंसा, औचित्यपूर्ण अहिंसा और कायरतापूर्ण अहिंसा। जागृत अहिंसा अन्तःकरण की स्वभाविक पुकार है। पुरूषार्थी एवं वीर पुरूषरंचमात्र भी हिंसा नहीं करते है औचित्यपूर्ण अहिंसा से तात्पर्य है ऐसी अहिंसा जो जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष परिस्थितिवश अपनायी जाती है यह अहिंसा असहाय व्यक्तियों का निष्क्रिय प्रतिरोध है कायरों की अहिंसा से तात्पर्य है ऐसे लोगों की अहिंसा जो कायरतावश अहिंसा का दम्भ भरते हैं।

गाँधी जी हिंसा के प्रवल विरोधी थे, उनका मत था -

" यदि हमारे ह्रदय में हिंसा भरी है तो हम अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए अहिंसा का आवरण पहने, इससे हिंसक होना अधिक अच्छा है।"

गाँधी जी का मत था -

" कठोरतम धातु भी पर्याप्त ताप के आगे पिघल जाती है इसी प्रकार से कठोर ह्रदय भी अहिंसा के पर्याप्त ताप के आगे द्रवित हो जाता है और ताप उत्पन्न करने की

अहिंसा की क्षमता की कोई सीमा नहीं है। ''

सत्याग्रह अहिंसक क्रान्ति की एक प्रक्रिया है राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक आदि क्षेत्रों में कार्यवाही के लिए अन्याय के प्रतिकार के लिए जहां क्रान्तिकारी हिंसक उपायों का उपयोग करते हैं, वहां गाँधी जी ने अहिंसक तरीके से क्रान्ति लाने के लिए सत्याग्रह का उपाय अपनाया।

गाँधी जी के समग्र चिंतन का केन्द्रबिन्दु है सत्याग्रह। सत्याग्रह राजनीतिक व्यवहार को गाँधी जी की सबसे बड़ी देन है। यह वह केन्द्र है जिसके चारों ओर उनकी अन्य धारणायें राजनीति का आध्यात्मीकरण, साधनों तथा साध्य की एकता, विश्व की नैतिक प्रकृति तथा अपने सिद्धांतों के लिए कुछ भी कष्ट उठाने, यहां तक कि मरने तक का संकल्प घूमती है।

सत्याग्रह शब्द का आविष्कार गाँधी जी ने उस अहिंसात्मक संघर्ष को इंगित करने के लिए किया था जो कि इन्होने दक्षिण अफ्रीका में भारतवासियों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए सरकार के विरूद्ध किया था।

गाँधी जी धर्म का सार नैतिकता में निहित मानते थे। उनके शब्दों में-

''सच्ची नैतिकता और सच्चा धर्म एक दूसरे के साथ अविच्छेद रूप में बंधे हुए हैं नैतिकता के लिए धर्म का वही स्थान है जो जमीन में बीज उगाने के लिए जल का होता है।''

गाँधी जी की मान्यता थी कि प्रत्येक धर्म में कुछ अच्छाईयां और कुछ बुराईयां होती है, किन्तु सभी धर्म के आदर्श अच्छे है, अतः धर्म ग्रंथों के परस्पर विरोधी उपदेशों से जब हमारी बुद्धि ठिठक कर दिग्भ्रमित होने लगे तो हमें अपने विवेक की शरण में जाना चाहिए।

सभी धर्मो के प्रति समान भाव गाँधी जी के धर्म की अपनी निजी विशेषता है। गाँधीजी एक कट्टर हिन्दु थे, परन्तु सभी धर्म उनके लिए आदरणीय थे।

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार : -

शिक्षण कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए अध्यापक को ऐसी शिक्षण विधियों को अपनाना पड़ता है जिनकी सहायता से नीरस विषय भी रूचिकर लगने लगे। मनोविज्ञान इस कार्य में सहायक सिद्ध होता है। मनोविज्ञान ने प्राचीन शिक्षण विधियों में परिवर्तन

करके, ऐसी विधियों को जन्म दिया है जिससे बालक स्वयं रूचिपूर्वक सीख सकता है। माण्टेसरी शिक्षण पद्धति, किण्डर गार्डन प्रोजेक्ट तथा ह्यूरिस्टक शिक्षण पद्धति, ऐसी मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियां है जो बालक के रूचि और स्वभाव का विशेष ध्यान रखती है।

मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की भली भांति जानकारी रखने वाला अध्यापक बालक के विकास मे पूर्ण योगदान कर सकता है।

शिक्षा की प्रकृिया पूर्णतया मनोविज्ञान की कृपा पर निर्भर है।

समाज का अपना स्वरूप होता है समाज के ही व्यक्ति की भांति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा होते हैं। इस बात को पश्चिम के लोग तथा मनोवैज्ञानिक भी अब स्वीकार करने लगे हैं। मैक्डूगल ने सामूहिक मन जैसे नये मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव किया।

इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि समूह या समाज का अध्ययन करने के लिए तथा अनुशासन की समस्याओं का अध्ययन करे उसका समाधान खोजने के लिए मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति का प्रयोग होना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने मस्तिष्क विज्ञान को समझने के लिए इस तरह बताया है -

महात्मा गाँधी जी के शब्दों में :-

" मेरी योजना में हाथ लिखने या चित्र खींचने से पूर्व यंत्रों का उपयोग करते हैं। नेत्र अक्षरों के रूप और शब्दों के रूप को देखते हैं, जैसे ये जीवन में अन्य वस्तुओं को देखते है। कर्ण वाणियों और वस्तुओं के नाम व अर्थ को सुनकर ग्रहण करते हैं।"[1]

महात्मा गाँधी जी ने साक्षरता के प्रशिक्षण को शरीर-श्रम से ही देने के लिए कहा है। उनका विचार है कि समस्त प्रशिक्षण स्वाभाविक प्रतिक्रियात्मक और तीव्रतम व सबसे ज्यादा सस्ता होना चाहिए। शरीर श्रम बालक की निरीक्षण शक्ति को विकसित करता है, क्योंकि बालक वस्तुओं को निकट से देखता है, उसका विवरण विस्तृत रूप से संगठित करता है और ठीक ठीक उसका मापन भी करता है, जिससे बालक का वौद्धिक विकास होता है। उसकी कल्पनाशक्ति का विकास वस्तु के निर्माण के समय वस्तु को प्रत्यक्ष में देखने की क्रिया द्वारा होता

विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री - आर0 एस0 पाण्डेय

1.हरिजन - 20.8.37

रहता है। बालक जिस वस्तु का निर्माण करता है वह उसके श्रम का प्रतिफल होता है। इस प्रकार उसके कार्य से उसे सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी जी का शिक्षा दर्शन मानव शरीर विज्ञान व मनोविज्ञान की जड़ में निहित है।

महात्मा गाँधी जी का दृष्टिकोण है :-

" प्रत्येक हस्तकला की शिक्षा यांत्रिक रूप में जैसा कि आजकल दी जाती है नहीं दी जानी चाहिए। वल्कि इसे वैज्ञानिक रूप में दिया जाय। वच्चा प्रत्येक प्रक्रिया के क्यों और कैसे को भी जानें।"[1]

बच्चे खेल या अनुकरण द्वारा सीखना प्रारंभ करते है और धीरे धीरे वे कुछ उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करना सीख लेते हैं। महात्मा गाँधी जी बालक की मूल प्रवृति को उपयोग में लाने का लक्ष्य रखते हैं। इसीलिए महात्मा गाँधी जी वच्चों की खेल प्रवृति की अवहेलना नहीं करते हैं, परन्तु वे मानते हैं कि मौलिक हस्तकला को खेल के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जो भविष्य में अर्थोपार्जन का माध्यम वन सके तकली से सूत कातने की गाँधीजी की कल्पना में समस्त खेल के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत सम्मिलित है ।

डा0 एम0 एस0 पटेल ने लिखा है :-

" गाँधी जी द्वारा अन्वेषित वेसिक क्राफ्ट बालक को जीवन संघर्ष हेतु तैयार करता है। जब हस्तकला का अभ्यास खेल विधि से किया जाता है तव यह प्रकृति की शिक्षा हो जाती है। जव बालक सूत कातता है तब वह अपने शरीर के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करता है, अपनी बौद्धिक शक्ति का प्रयोग करता है ओर रूचियों की खोज करता है जिनका उसके प्रौढ़ जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। "[2]

(ग) सामाजिक आधार : -

गाँधी जी का सर्वोदयी दर्शन एक सर्वोदयी समाज की स्थापना करना चाहता है। गाँधी जी अपने सिद्धांत के अनुसार ही मनुष्य के आत्म केन्द्रित स्वार्थी दृष्टिकोण का परिवर्तन परार्थवादी दृष्टिकोण में करना चाहते हैं। यह एक आंतरिक परिवर्तन होगा जो अकेला ही समाज के नैतिक पुनरोत्थान को सुलभ करायेगा। राज्य और सरकार इस नैतिकता की स्थापना नहीं कर सकती। ऊपर से दबाव डालकर किसी को नैतिक नहीं वनाया जा सकता। ऐसी नैतिकता की

---

1. हरिजन - 31.7.37
2. पटेल एम एस0 , एजूकेशन फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी पृष्ठ 186

अस्वीकृति है। अतः सरकार द्वारा व्यक्ति या समाज को नैतिक बनाना संभव नहीं है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वेच्छापूर्वक नैतिकता को स्वीकार करने की प्रेरणा ही नैतिकता का आधार है। आज के छीना झपटी, आतंक, द्रोह और शक्ति तथा धन के पीछे दौड़ने वाला समाज नैतिकता के अभाव में निम्न स्तर तक जा चुका है। मनुष्य की आत्मिक प्रगति संभव नहीं है। मानवता और नैतिकता तानाशाही प्रवृत्ति से नहीं आती, समाज की ऐसी शांति मनुष्य जीवन और समाज को उसके लक्ष्य तक नहीं पहुंचा सकती है। गाँधी जी के अनुसार ''सर्वोदय समाज का यह रूप होगा कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए समाज में स्वतंत्रता होगी। समाज में अधिक से अधिक समानता होगी। व्यक्ति के विकास के लिए अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होंगे इस समाज का आधार मनुष्य का निजी हित नहीं होगा वरन् इसका आधार और केन्द्र मनुष्य होगा। सर्वोदय समाज का जीवन सामूहिक होगा, तभी साहित्य कला और विज्ञान की उन्नति होगी। इसके साथ ही मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होगा। ''

इस प्रकार सर्वोदय समाज का आधार नैतिकता होगी, जिसमें सत्य, अहिंसा, समानता, स्वतंत्रता, सहयोग होगा। यह राज्यविहील समाज होगा। इसमें ग्रामराज्य होगा फिर रामराज्य होगा जिसमें झगड़े नहीं होंगे। यह राज्यविहीन तथा वर्गविहीन समाज होगा इसमें व्यक्ति और समाज की पारस्परिक निर्भरता रहेगी।

यह समाज ऐसा होगा जिसमें वर्ग व जाति का अभाव तथा शोषण अपराध और युद्ध का चिन्ह भी दृष्टिगत न होगा। ऐसे ही समाज को गाँधी जी ने सर्वोदयी समाज कहा है ।

सर्वोदयी समाज की विशेषताओं का वर्णन करते हुए डा0 एम0 एस0 पटेल ने लिखा है कि -

'' गाँधी जी का शिक्षा दर्शन भारतीय संस्कृति, सामाजिक दशा और भविष्य की आवश्यकताओं पर आधारित है, शिक्षा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य गाँधी के सर्वोदयी समाज की अवधारणा के अनुसार समाज की रचना करना है, ऐसा समाज सत्य, न्याय, और अहिंसा पर आधारित होगा।..... इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति स्वयं में लक्ष्य नहीं है, वल्कि जीवन के अंतिम लक्ष्य ''आत्मानुभूति'' की प्राप्ति का साधन है।''[1]

---

1. पटेल – एम0 एस0 : द एजूकेशनल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी
   नवजीवन पब्लिसिंग हाउस, अहमदाबाद प्रथम संस्करण 1953

आर्थिक पक्ष :-

गाँधी जी की शिक्षा पद्धति वालक को स्वावलम्वी व आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। ताकि समाज व राष्ट्र में आर्थिक दृष्टि से उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं को कुछ सीमा तक हल किया जा सके। गाँधीजी का विचार था कि वालक जव विद्यालय छोड़े तो अपनी जीविका कमाने के योग्य हो और समाज में एक कमाऊ ईकाई के रूप में प्रकट हो। उन्होने लिखा है :-

" आपकी इस धारणा को लेकर आरम्भ करना पड़ेगा कि यदि शिक्षा को अनिवार्य बनाना है तो भारत के ग्रामों की आवश्यकताओं को देखते हुए हमें अपनी ग्रामीण शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाना चाहिए।"[1]

श्री जे० सी० कुमारप्पा ने लिखा है -

" गाँधी जी का आर्थिक दृष्टिकोण हिंसा और असत्य के शुद्धिकरण के पश्चात का आर्थिक विचार है।"[2]

गाँधी के अनुसार एक अहिंसक और अवशोषक समाज आर्थिक वर्ग विभाजन पर आधारित नहीं होता है और साथ ही वह आर्थिक कार्यो की छीना झपटी भी नहीं करता है। क्योंकि सामाजिक समूह के प्रत्येक सदस्य को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ कार्य करने पड़ते हैं। गाँधी जी के अनुसार मनुष्यों को दूसरों को रंचमात्र भी हानि न पहुँचाते हुए अपना कार्य करके लाभ प्राप्त करना है। प्रकृति से पूर्ण सामन्जस्य रखते हुए अपना कार्य करना ही मनुष्य का आदर्श है क्योंकि :-

" यदि मानव के मध्य शांति और भलाई को लाना है और प्राणी को सच्ची उन्नति की ओर अग्रसर करना है ....तो आर्थिक क्रिया सरल व समरूप होनी चाहिए।"[3]

उन्होने आगे भी लिखा है :-

" गाँधी जी के आर्थिक आधार का लक्ष्य शुद्ध भौतिक लाभ प्राप्त करना ही नहीं है, वल्कि इस प्रकार की क्रिया में संलग्न प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास

---

1. हरिजन , 18 सितम्बर 1937
2. श्री जे० सी० कुमारप्पा : सोशल एण्ड पॉलिटिकल आइडियाज ऑफ महात्मागाँधी, पृष्ठ 36
3. जे० सी० कुमारप्पा : सोशल एण्ड पॉलिटिकल आइडियाज ऑफ महात्मा गाँधी पृष्ठ 37-38

और चरित्र की दृढ़ता द्वारा उन्नति के मार्ग पर मानवता को विकसित करना है। किसी का आर्थिक, शारीरिक नैतिक अथवा आध्यात्मिक लाभ किसी अन्य के आर्थिक, शारीरिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक हानि का कारण नहीं होना चाहिए।''[1]

(घ) वैज्ञानिक विचार -

वर्तमान युग विज्ञान के युग के नाम से जाना जाता है। मानव एवं प्रकृति की प्रत्येक क्रिया को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार विज्ञान की नयी नयी खोजों ने प्राचीन मान्यताओं को वदल डाला है। मानव जीवन का सम्पूर्ण क्षेत्र विज्ञान से प्रभावित है। यहां तक कि धर्म और दर्शन की व्याख्या भी वैज्ञानिक आधार पर की जान लगी है। तव शिक्षा विज्ञान के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकती है। आज शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों के निर्माण में विज्ञान का सहयोग अपरिहार्य हो गया है नये नये नियमों एवं सिद्धांतों के प्रतिपादन एवं उनके सत्यापन के लिए वैज्ञानिक विधि का सहयोग लेना पड़ता है।

वैज्ञानिक शिक्षण विधि का प्रमुख उद्देश्य होता है शिक्षा को प्रभावशाली बनाना जिससे कम से कम शक्ति व समय में अधिक से अधिक सिखाया जा सके। आजकल सभी इस बात से सहमत है कि शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। इस प्रकार बालक को वैज्ञानिक विधि के द्वारा अधिक से अधिक शिक्षा देने का प्रयास होना चाहिए। इसी दृष्टिकोण के अनुसार - इंजन को चलाने के लिए कोयला चाहिए किन्तु कोयला खाने के लिए इंजन नहीं बनाया गया । प्रत्युत हमारा प्रयत्न तो यही रहता है कि कम से कम ईधन से अधिक से अधिक मात्रा में शक्ति पैदा हो।

मानव जीवन के उद्देश्य का विचार करके हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वह न्यूनतम ईधन से अधिकतम शक्ति के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके।

(ङ) समीक्षात्मक विचार : -

वर्तमान समय में सम्पूर्ण देश में अनेकानेक शिक्षण संस्थायें शिक्षा देने का कार्य कर रही है जिनका एक मात्र उद्देश्य रहता है विद्यार्जन के वाद छात्र को धनार्जन के योग्य बनाना। जिसका परिणाम यह देखने को मिल रहा है कि मानवीय गुणों का निरंतर ह्रास हो रहा है।

---

1. तदैव - पृष्ठ 51

मनुष्य के जीवन का यह सर्वांगीण विचार ऐसी किसी भी अर्थरचना की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें नैतिक सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना किए बिना ही मनुष्य को सुखी बनाया जा सके।

पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शारीरिक, व्यवसायिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके । क्योंकि जब तक उपर्युक्त मानविन्दु व्यक्ति के जीवन में परिलक्षित नहीं होते है उसको शिक्षित या सभ्य समाज का पूर्ण मनुष्य नहीं माना जा सकता है।

महात्मा गाँधी का विचार था कि विद्यालयों से पढ़कर ऐसे विद्यार्थी निकलने चाहिए जो सामाजिक प्राणी होने का दायित्व पूर्ण कर सके। शील, सद्भावना, सदाचार एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करने के योग्य बन सकें।

जिनको अपने देश की नीति रीति, संस्कृति का परिचय हो। इतिहास भूगोल का ज्ञान हो जिनमें सामाजिक चेतना, देशप्रेम एवं राष्ट्रीय एकता की भावना भरी हो चरित्रवान और यशस्वी हो और अपने पैरों पर खड़े हो सकने की क्षमता हो।

यह पूर्ण मानव ही एकात्म मानव की कल्पना है जो हमारा आराध य तथा हमारी आराधना का साधन दोनो ही है। इस हेतु विद्यालयों को चाहिए कि वह बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शारीरिक, व्यावसायिक, नैतिक शिक्षा की व्यवस्था करें। विद्यार्थी को अपनी प्रकृति के अनुकूल विषय चयन की सुविधा हो। पाठ्यक्रम का असामान्य भार बालक के मस्तिष्क को बोझिल बना देता है इसलिए उसकी रूचि, मानसिक स्तर का ध्यान रखा जाना चाहिए।

वर्तमान समाज में प्रचलित अश्पृश्यताः, ऊँच - नीच, भेद भाव, गरीब, बेरोजगारी, मँहगाई, दहेज आदि बुराईयों से छात्रों को प्रत्यक्षतः परिचित कराने के लिए पाठ्येत्तर क्रियाओं पर बल दिया जाये। इस प्रकार समस्त मानवीय गुणों को छात्रों के जीवन में पुष्ट करते हुए इनसे सर्वप्रथम मनुष्य बनाने का श्रेष्ठ कार्य ईश्वरीय कार्य या विद्यालयों और शिक्षा के द्वारा किया जाना चाहिए।

(ब) विनोबा जी के शैक्षिक विचारों का आधार स्त्रोत :-

(क) दार्शनिक आधार : -

विनोबा जी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने स्वयं अपने अनुभव, मन व हृदय की विशेषताओं एवं गुणों से अपना मार्ग प्रशस्त करते हुए एक इतिहास का निर्माण किया है। विनोबा जी अपने प्रभावी व्यक्तित्व से नये भारत का निर्माण किया है। नूतन भारत के निर्माण हेतु अपने प्रयोग जन्य अनुभव से एक शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया जो भारतीय परिवेश में सर्वथा उपयुक्त है। अपने नूतन विचारों से चाहे वह शिक्षा, दर्शन, राजनीति, धर्म या प्रजातंत्र में हो, प्रत्येक क्षेत्र में उन्होने क्रान्ति मचा दी थी। इस प्रकार एक अंतर्राष्ट्रीय विचारक व चिन्तक के रूप में सम्पूर्ण विषय को प्रभावित करके महान ख्याति प्राप्त की थी।

इस विश्व में अनेक बुद्धि सम्पन्न प्राणियों ने जन्म लिया है किन्तु कोमल हृदयी व्यक्ति का प्रायः अभाव ही पाया जाता है इसी कोमल हृदयी व्यक्तित्व में इनकी महानता का सार छिपा है। विनोबा भावे का प्रादुर्भाव ऐसी परिस्थिति में हुआ था जवकि नैतिक मूल्य दिन प्रतिदिन घटते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में विनोबा जी ने नये मूल्यों को देश के समक्ष रखने का संकल्प लिया। विनोबा जी ने अनुभव कर लिया था कि मानव को इस विकट स्थिति से बाहर निकालने का कार्य केवल नये मूल्य ही कर सकेंगे, इसलिए वे अकेले ही समाज में व्याप्त समस्त बुराईयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहें। विरोध, धमकी, गलत प्रदर्शन तथा कलंक की परवाह किए बिना सत्य अहिंसा व प्रेम का दृढ़ता से अवलम्बन करते हुए भारतीय राष्ट्र को शांति व सुरक्षा प्रदान की थी।

प्रायः यह अनुभव किया गया कि महान पुरूषों एवं शांति दूतों को उनके जीवन काल में न तो समझा गया और न ही आहत किया गया। किन्तु विनोवा जी के सम्बंध में उपर्युक्त तथ्य निराधार है, क्योंकि उनके जीवन काल में ही उनकी प्रशंसा व उनके क्रान्तिकारी विचारों की ध्वनि विश्व के प्रत्येक कोने में फैल चुकी थी, सांसरिक प्रलोभन एवं उपहारों से विमुख हो शाश्वत सत्य की ओर उन्मुख होने के कारण ही वे विश्व प्रसिद्ध महान पुरूष वन सके।

विश्व में विनोवा जी के स्थान के सम्वंध में भविष्यवाणी करना हमारे लिए तो प्रायः असम्भव ही है। परन्तु विनोवा जी को महान पथ प्रदर्शकों, शिक्षकों, मनुष्य मात्र के हितैषी के रूप में आने वाले कालों में समझा जाता रहेगा। उन्हें पूर्ण रूप में जानने के लिए सतत् अन्वेषण समझ एवं निरंतर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

विनोवा जी जीवन पर्यन्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, समानता एवं सुधार के कार्यो में संलग्न रहे है, अपनी शिक्षाओं के कारण वे असंख्य पीढ़ियों तक स्मरण किये जाते रहेंगे उन्होने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसे दर्शन से लेकर जन्म नियंत्रण तक के विषयों के सम्वंध में अपने श्रेष्ठ विचारों की अभिव्यक्ति की है। और उसे अपनी लेखनी द्वारा लिपिवद्ध भी किया है।

विनोबा जी की महानता उनकी लोकप्रियता, उनके जीवन की सफलता का रहस्य, उनकी सत्यता और न्याय निष्ठा में उनकी सतत् जागरूकता में उनके विश्व प्रेम की भावना में और उनकी निर्भयता में निहित है।

(ख) मनोवैज्ञानिक आधार :-

विनोबा जी ने न तो मनोविज्ञान विषय का अध्ययन किया था और न तो वे इस विषय के विद्यार्थी थे परन्तु वे महान प्रकृति के सूक्ष्म दृष्टा थे। उन्होने मानव के व्यवहारों को उनके द्वारा किए गए कार्यो द्वारा ही अनुभव किया था। इस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक की भांति वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि मानव की शिक्षा व चरित्र उनकी मानसिक तैयारी द्वारा ही निश्चित होते हैं। मानव वंशानुक्रम से क्षमताओं और सम्भावनाओं के रूप में कुछ प्रवृत्तियों को लेकर आता है। मानव की स्वभाविक रूचि व संवेदनात्मक प्रेरणायें अधिगम को प्रेरित करती है अधिगम को पर्यावरण प्रभावित करता है। ज्ञान प्राप्ति व सीखने में मानवीय क्षमतायें पर्यावरण व क्रियाकलाप व्यक्ति को सहायता देते है। इन विन्दुओं को ध्यान में रखकर शिक्षक मनोवैज्ञानिक प्रदत्तों को स्वस्थ शिक्षा योजना के लिए खोज करता है।

विनोबा जी वालक के मस्तिष्क को सभी प्रकार की सूचनाओं से भरने के पक्ष में नहीं है। उनका विश्वास था कि बालक वौद्धिक विकास क्रिया से ही प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्र क्रिया के प्रति बालक की मूल प्रकृति को शिक्षा से अलग नहीं मानते हैं अपितु इसे शिक्षा के केन्द्र के रूप में स्वीकार करते हैं, इसी क्रिया से बालक की मानसिक शारीरिक, और आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित किया जा सकता है। इस सम्वंध में महात्मा गाँधी ने लिखा है –

" बालक की शिक्षा शारीरिक श्रम से प्रारंभ हो किन्तु यह शरीर श्रम शिक्षा से अलग नहीं बल्कि बौद्धिक प्रशिक्षण के मुख्य साधन के रूप में हो।"[1]

गाँधी जी ने आगे पुनः कहा है -

" आपको बालकों को एक पेशे अथवा अन्य में प्रशिक्षित करना पड़ेगा इस विशिष्ट पेशे के लिए आपको मन शरीर को उनके हस्तलेख को उनके कलात्मक भाव को और इसी प्रकार अन्य क्षमताओं को प्रशिक्षित करना होगा।"[2]

इसी प्रकार विनोबा जी बालक के शरीर श्रम व क्रियात्मक क्रियाकलाप पर जोर देते है जिसमें बालक की रूचि का भी महत्व होता है। बालक की रूचियों की पूर्ति हेतु पूर्व बुनियादी शिक्षा की योजना की गई है। उपर्युक्त वातावरण के सृजन द्वारा बालकों का सर्वांगीण विकास करने में योजना अपनी मनोवैज्ञानिक सुदृढ़ता का परिचय देती हैं वस्तुओं द्वारा शिक्षा में उपयोगी खेल योजना, क्रियाशीलता और समवाय पद्धतियों के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक महत्व अन्तर्निहित है विभिन्न प्रकार के उद्योगों में बालक की मूल प्रवृत्तियों को उचित रूप से विकसित होने का अवसर मिलता हे। उनका मार्गान्तरण होता है। बालकों की कल्पना व संवेगों को उचित निर्देशन द्वारा विकसित कर उनके व्यक्तित्व का गठन किया जाता है।

विनोबा जी ने शिक्षा में शरीर श्रम को महत्व दिया है क्योंकि हस्तकला शारीरिक दृष्टिकोण से बालक के शरीर का विकास करती है थकान को सहने के योग्य शरीर को कठोर बनाती है। बालकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करते हुए और अभ्यास की आदत डालते हुए विभिन्न कला और व्यापार में निष्णात वनाकर सामाजिक जीवन को पुष्ट करती है वौद्धिक दृष्टिकोण से हस्तकला की शिक्षा बालक में भौतिक ज्ञान विकसित करती है उपयोगी एवं जरूरत के प्राकृतिक पदार्थो के प्रति बालकों के उचित दृष्टिकोण का निर्माण करती है भाषा गणित, विज्ञान को कला के साथ साथ पढ़ाया जाता है जिससे मन व क्षेत्र में निश्चितता तीव्रता और निरीक्षण की योग्यता का विकास होता है। यह विधि शरीर और हाथ को विभिन्न व्यापारों में प्रयोग होने वाले यंत्रों के प्रयोग के योग्य बनाती है। तथा प्रयोग का मूल्यांकन करने के लिए उनके मन में मस्तिष्क में योग्यता पैदा करती है। हृदय के विकास अथवा भौतिक दृष्टिकोण से हस्तकला बालकों को श्रम विभाजन, मानव रोजगार, पारस्परिक सहयोग जैसे महत्वपूर्ण परिणाम से भिज्ञ करती है।

शरीर श्रम के लाभों से विनोवा जी परिचित थे, इसलिए शरीर श्रम

---

1. हरिजन - 18.9.37
2. हरिजन - 18.9.37

को शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल देते है शरीर श्रम बालक को केवल स्वावलम्बी ही नहीं बनाता है बल्कि बालक शरीर श्रम के निम्नलिखित लाभों से परिचित भी होता है -

शारीरिक विकास :-

बालक किसी किस्म के हस्तकला के कार्य में संलग्न हो तो वह मजबूत व शक्ति सम्पन्न बनता है। प्रतिरोधक शक्ति व मांसपेशियों की पुष्टता के साथ ही बालक वातावरण को अनुकूल बनाने में समर्थ हो जाता है।

मानसिक विकास :-

शरीर श्रम बालक को पदार्थ के संसर्ग में लाता है और पदार्थ की विभिन्न विशेषताओं से वह परिचित होता है। इस प्रकार उसे भौतिक तत्वों के क्रम का ज्ञान होता है। पदार्थ के साथ कार्य करते हुए बालक विभिन्न कच्चे पदार्थो व यंत्रों जिसको कार्य में लाता है साफ करता है व धार देता है एवं उसकी उपयोगिता का अनुभव करता है।

(ग) सामाजिक आधार :-

विनोबा जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा योजना के अंतर्गत श्रम के प्रायोजन एवं उद्योग की प्रधानता द्वारा वर्ग भेद की गहरी खाई को पाटने की व्यवस्था की गई है। शिक्षा के क्षेत्र में पहले से प्रचलित वर्ग ने अनुकूल शिक्षा सिद्धांत को समाप्त कर सामान्य एवं सार्वजनिक शिक्षा का आंदोलन किया है। कार्य का समान रूप से विभाजन करके समानता के आदर्श की रक्षा की गई है। श्रम की व्यवस्था और उद्योगों का चुनाव समाज में परिव्याप्त बेकारी की समस्या का उन्मूलन कर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सामाजिक कुशलता का निर्माण करती है और यह जीवन में सादगी उत्पन्न करती है इनकी शिक्षा पद्धति में प्रचलित प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति में अनुशासनहीनता की समस्या ही उत्पन्न नहीं होती है।

अहिंसक जनतंत्रात्मक समाज :-

मानव की जैवकीय एवं मनोवैज्ञानिक विशेषता शिक्षा व सामाजिक समुदाय को जन्म देती है और समाज बदले में उनके लिए शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था करता है। व्यक्तियों का मेल एवं उनके प्रभावों का दूसरों पर प्रभाव जो कि उनके अंदर छिपी हुई उनकी क्रियात्मकता, सामाजिक अनुकूलन की आवश्यकता का अनुभव कराती है। इस प्रकार सामाजिक कुशलता और उनके सामाजिक पर्यावरण को अनुकूलन करने में सहयोग देती है।

मनुष्य अनिवार्यतः एक सामाजिक प्राणी है। मानव का समुदाय में रहने का गुण सार्वभौमिक जातीय विशेषता है। सामुदायिक जीवन सुरक्षा के लिए जरूरी है और यह सहयोगी क्रियाकलापों का व सामूहिक अनुभव का माध्यम है। समाज वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है, पोषित होता है ओर सामान्य मानव व्यक्तित्व के रूप में विकसित होता है। समाज व्यक्ति को प्रतिस्पर्धात्मक एवं सहयोगी कार्य हेतु प्रोत्साहन भी देता है। इसलिए विनोबा जी शिक्षा को ऐसी प्रक्रिया मानते है जो व्यक्ति को एक अहिंसक समाज में उपयोगी भूमिका अदा करने के योग्य वनाती है ऐसी ही सामाजिक व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था कहलाती है। इसलिए वे चाहते थे कि समाज के प्रत्येक सदस्य को मुफ्त स्वतंत्र व अनिवार्य सावर्जनिक शिक्षा कम से कम अवश्य दी जानी चाहिए क्योंकि कोई भी प्रजातंत्रात्मक राज्य तब तक जीवित व स्थायी नहीं रह सकता जब तक कि उसके सदस्यों को अपना कर्तव्य पालन करने के योग्य शिक्षा न दी जाये। शिक्षित व्यक्त्यिों के हाथों में ही स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है।

नागरिकता का आदर्श विनोवा जी की शिक्षा योजना में अंतर्निहित है। लोगों से यह आशा की जाती है कि वे सार्वजनिक सेवा की उपयोगिता, जनसेवक के कर्तव्यों, सहकारी समितियों व पंचायत की कार्यप्रणाली, जिला परिषद व नगर पालिका के संविधान, मत के महत्व व उपयोग प्रतिनिधि संस्थाओं की महत्ता व उद्विकास से अच्छी तरह परिचय करें।

विनोवा जी की शिक्षा योजना में प्रेम, सत्य, न्याय, सहयोगी प्रयास, राष्ट्रीय एकता, समानता, मानव मानव में बंधुत्व के भाव के आदर्श पर विशेष जोर दिया गया है। विनोबा जी का दर्शन उस जीवन दर्शन से कोई सम्वंध नहीं रखता है जो आत्म सम्मान हीन समाज या समुदाय को बढ़ाने में सहयोग देता है। श्रम की श्रेष्ठता में गहन आस्था रखने के कारण विनोवा जी हस्तकला को विद्यालयीय जीवन और शिक्षा का अभिन्न अंग मानते थे। विनोवा जी ने नागरिकता को नया अर्थ प्रदान किया है इस सम्वंध में टी0 के.0 एन0 मेनन ने लिखा है कि -

" इन सभी तथ्यों से महत्वपूर्ण वात यह है कि गाँधी जी की शिक्षा योजना का लक्ष्य एक नये किस्म की नागरिकता का विकास करना है। वह शिक्षा जो दूसरों पर आश्रित, धनी या गरीब व्यक्ति का निर्माण करती है वह निंदनीय है।उनकी शिक्षा योजना का लक्ष्य ऐसे कारीगर को बनाना है जो सभी प्रकार के आदरणीय कार्यो को करने तथा अपने पैर पर खड़ा होने के लिए इच्छुक है।"[1]

---

1. प्रो0 टी0 के0 एन0 मेननः जनरल आफ एजूकेशन एण्ड साइकॉलोजी अप्रेल 1948

विनोवा जी के अनुसार जो वच्चे अपने को किसी किस्म की हस्तकला के कार्यो में लगाते है तो वे सामाजिक समानता और समाज सेवा के पाठ को केवल अपने देश के लिए ही नहीं पूरे संसार के लिए पढ़ते व सीखते है क्योंकि विनोबा जी पूरे विश्व को परिवार समझते थे। उनकी आस्था वसुधैव कुटुम्वकम् की भावना में निहित थी। विनोबा जी का विश्वास था कि एक सरकार वह है जो सबसे कम शासन करती है इस प्रकार उन्होने एक प्रगतिशील अहिंसक समाज के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त किया है।

(घ) वैज्ञानिक आधार :-

विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में अणु शक्ति दी है मतलब वह सृष्टि का लय कर सकता है मनुष्य एक छोटा सा भगवान बन गया है क्यों ? को तत्वज्ञान हल करता है और कैसे ? का उत्तर विज्ञान देता है। सृष्टि में प्रकृति में जो कर्म चलते है, उनके कानून का शोध जो करताहै वह है विज्ञान। पानी, हवा आदि पदार्थो के क्या-क्या धर्म है?, ये किस तरह काम करते हैं?, उनका नियम या व्यवस्था क्या है? आदि बातों का वह अध्ययन करता है।

तत्वज्ञान विज्ञान से भिन्न है। तत्व ज्ञानी वे है जो सृष्टि रचना की चर्चा करते हैं। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इनका स्वरूप क्या है, सृष्टि की रचना कैसी है, इन सभी का परस्पर सम्वंध क्या है ? ईश्वर और जीवन का स्वरूप क्या है ? ये सारी चर्चायें तत्वज्ञान करता है। मानव एक प्राणी है किन्तु उसमें और अन्य प्राणियों में आज तक कुछ न कुछ फर्क रहा है। आखिर वह फर्क क्या है ?

दूसरे प्राणी प्राणप्रधान है, जब कि मानव मन प्रधान है। वैसे ही मानव में प्राण है और मन भी किन्तु प्रधान मन ही है। प्राणी हलचल करता है तो खूब जोर से दौड़ता है। प्राणी उछलता कूदता हमला करता या टूट पड़ता है यह सारी प्राण प्रक्रिया है।

विनोबा जी अपने अध्ययन काल में विज्ञान का अध्ययन सवसे अधिक पसंद करते थे वह उनके लिए प्रिय विषय था। लेकिन आध्यात्मिक साहित्य के प्रति उनका विशेष आकर्षण और झुकाव था। इस प्रकार उनके मन में अध्यात्म और विज्ञान दोनों मिल गये और मिलकर एक हो गये। विनोबा जी की दृष्टि में दोनों ही समान है और दोनो का ही अर्थ है एक का विषय विशेष रूप से सृष्टि का बाह्य पहलू है तो दूसरे का विषय आंतरिक। ये दोनो मिलकर समग्र विश्व प्रस्तुत करते हैं।

विनोवा जी ने अनुभव किया कि विज्ञान और आत्मज्ञान को एक हो

जाना चाहिए। केवल भारत की ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की मुक्ति का यही एकमात्र मार्ग है। लेकिन मन की मुक्ति के बिना राष्ट्र की मुक्ति का कोई अर्थ नहीं है। पहले मन को वंधनमुक्त करना चाहिए और यह काम है आत्मज्ञान का। वाइविल में हम पढ़ते हैं कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अंदर है और इसे धरती पर लाना है मैं स्वर्ग के राज्य के सम्वंध में सोचता रहा और मुझे लगा कि विज्ञान और आत्मज्ञान का मेल होता है तो धरती पर स्वर्ग लाया जा सकता है। विज्ञान के दायरे में एक प्रकार से सारी दुनिया आ जाती है विज्ञान राष्ट्र को विशाल अर्थ में ले तो आत्मा भी उसके अंतर्गत आता है। इन दिनों विज्ञान का अर्थ सृष्टि के वाहरी गुण धर्मो से ही माना जाता है लेकिन आंतरिक वस्तुयें भी उसके क्षेत्र में आ सकती है। विज्ञान नीति निरपेक्ष है न वह नैतिक है न अनैतिक , इसलिए उसको मनन की आवश्यकता है अगर उसे सही मार्गदर्शन मिलता है तो वह स्वर्ग में ले जाता है सही मार्गदर्शन आत्मज्ञान से ही मिल सकता है।

अब विज्ञान की प्रगति हुई है तो आध्यात्मिक अनुभूतियों को शायद पहले से अधिक स्पष्टतया व्यक्त किया जा सके। विज्ञान जैसे जैसे प्रगति करता जायेगा वह हमें स्पष्ट अभिव्यक्ति की अधिकाधिक शक्ति प्रदान करेगा। विज्ञान विशेषता है उसकी नम्रता। वैज्ञानिक लोग हमेशा वहुत विनम्र होते है और कबूल करते है कि अभी अज्ञात तत्व वहुत है।

विज्ञान और आत्मज्ञान के बीच समान तत्व है कि दोनो सत्य की खोज में लगे हैं सत्य पूर्ण है, इसमें शंका नहीं, लेकिन उसके दो पहलू है एक उसका स्थूल रूप है और दूसरा सूक्ष्म तत्व है। विज्ञान आज स्थूल स्वरूप की खोज में लगा है तो यह करते-करते क्रमशः उस सूक्ष्म तत्व की ओर भी वढ़ेगा और उसका भी अनुसंधान करने लगेगा।

भाषा में इतिहास का वर्णन करना सम्भव नहीं है वह तो अनुभव किया जा सकता है लेकिन चूंकि वह मनुष्य है इसलिए अपना अनुभव शब्दों के द्वारा या ऐसे ही किसी माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। समाधि में हम ईश्वर को देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूंघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं , फिर भी समाधि का अनुभव इन सबसे भी कुछ भिन्न है। आज विज्ञान ने यद्यपि सृष्टि के वाहरी वाजू से काम प्रारम्भ किया है फिर भी अंदर की ओर भी वह धीरे धीरे जाने का प्रयत्न करेगा। तब उसे अनुभूति और प्रयोग की नयी नयी पद्धतियां भी खोजनी पड़ेगी विज्ञान के माध्यम से हम शिक्षा के क्षेत्र में भी नये नये प्रयोग कर विद्यार्थियों को प्रेरित कर सकते हैं जिससे उनका मानसिक स्तर ऊँचा हो।

(ड़) समीक्षात्मक आधार :-

आचार्य विनोबा भावे भारतीय विचारकों में अग्रणी एक कर्मयोगी संत माने जाते है। आपका दिव्य व्यक्तित्व शंकर, संत ज्ञानेश्वर तथा गाँधी जी के आदर्श एवं विचारों से प्रभावित हुआ तथा आगे चलकर वह गाँधी जी के विश्वस्त अनुयायी वन गये। आपने लिखा है -

" शंकर ज्ञानेश्वर तथा गाँधी ने मेरे जीवन पर वहुत गहरा प्रभाव डाला है। मैं भी (विनोबा जी) शंकराचार्य जी का आभारी हूं जिन्होने मुझे वौद्धिक आधार तथा वेदान्त की पृष्ठभूमि प्रदान की। मैं महान संत ज्ञानेश्वर का भी कृतज्ञ हूं उन्होने जो महाकाव्य लिखा है बहुत ही उज्जवल है। उसी महाकाव्य ने मेरे मन में उत्साह तथा भावनायें भरी है।"[1]

परिणामस्वरूप विनोबा जी की ईश्वर के अस्तित्व में अटूट विश्वास है तथा वह वेद एवं उपनिषद में भी आस्था विकसित हुई।

विनोबा जी के अनुसार -

" जो कुछ व्रह्मा है वह पूर्ण है। "[2]

इन्हीं विचारों के आधार पर विनोवा जी मानव जीवन के विकास हेतु नैतिकता को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कथन है कि नैतिक व्यवहार अकेले ही मनुष्य के जीवन में महान लक्ष्य आत्मा अथवा ईश्वर प्राप्ति की पूर्ति की ओर ले जाता है। फलस्वरूप सत्य, प्रेम, अहिंसा तथा आत्म संयम को उन्होने जीवन का आधार स्वीकार किया है सत्यता एक आधारभूत नैतिक गुण है जबकि असत्य एक आधारभूत नैतिक दोष।" स्पष्ट है कि गाँधी जी की भांति आपने भी सत्य को ही ब्रह्मा तथा अहिंसा और प्रेम को जीवन का केन्द्रीय सिद्धांत स्वीकार किया है। विनोबा जी के काल्पनिक समाज का आधार ही अहिंसा है अतः विनोवा जी के चिंतन में नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा ईश्वरीय विश्वास एक दूसरे से एक श्रंखला की भांति जुड़े हुए हैं। विनोबा जी के अनुसार मानव के अंत की नैतिक प्रेरणा की जड़े उसके आध्यात्मिक धरातल में होती है विनोवा जी का विचार है कि ईश्वर मानव को नैतिकता हेतु स्थिर आधार प्रदान करता है जिसका निर्माण तर्क अथवा मानवतावाद के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

जहां गाँधी जी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी होने के नाते श्री विनोवा

---

1. राम भाई सुरेश - विनोबा एण्ड मिशन पृष्ठ 226
2. बसेंट नारगोलकर - दि ग्रीड आफ सेन्ट विनोबा पृष्ठ 111-112

जी ने अहिंसा के सिद्धांत को मनसा, वाचा, कर्मणा से अपनाया, वहां सर्वोदय का विचार विनोबा जी का दर्शन प्रस्तुत करता है। सर्वोदय का स्पष्ट और सरल अर्थ "सबका उदय", "सबका विकास" एवं "सबका हित" उनका यानि विनोबा जी का कथन है कि ईश्वर ने हम सबको जन्म दिया है और विश्व की सम्पूर्ण सम्पत्ति सहित यह विश्व बनाया है इसलिए सभी समान है और इस सम्पत्ति पर सभी का समान अधिकार है।

इस प्रकार विनोबा जी ने भारत ही नहीं वरन समस्त संसार की आर्थिक मान्यताओं में क्रान्ति का सूत्रपात किया। इसे केवल आदर्श रूप में प्रतिपादित करना ही उनका उद्देश्य नहीं था बल्कि विनोबा जी ने इसे कार्य रूप में ही पर्णित करके इसकी व्यवहारिकता को भी प्रमाणित करने का प्रयास किया क्योंकि भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, शांतिसेना, सर्वोदय पात्र आदि से सहयोगी समाज की रचना ग्राम स्वराज्य एवं प्रेम स्वराज्य की स्थापना कर पाना आपका प्रयास रहा।

विनोबा जी ने ज्ञान व कर्म का समन्वय करके एक नवीन शिक्षा प्रणाली को चलाने की योजना बनाई। जिसमें उन्होंने आध्यात्मिक पक्ष एवं आर्थिक पक्ष की मान्यता प्रदान की हो। जिसके अनुसार विनोबा जी ने प्रकृति ज्ञान, ज्ञान शक्ति सम्पादन एवं आत्म ज्ञान को शिक्षा में महत्ता प्रदान की हैं।

We give them such a mastari of one lenguage that they get the understanding of linguitic principals by which they can learn other lenguage for them self, lats us teacher them how to teach themself - Vinoba

Thoughts of Education Page No. 31

अध्याय : चतुर्थ

(क) महात्मा गाँधी जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :

शिक्षा का अर्थ, शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करने की आवश्यकता, गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य– जीविकोपार्जन का उद्देश्य, सामांजस्यपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य, सांस्कृतिक उद्देश्य, शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य–आत्मानूभूति का ज्ञान, शिक्षा के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य।

(ख) विनोबा जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :

शिक्षा का अर्थ, शिक्षा के उद्देश्य – सत्य मनुष्यत्व बनाना, ज्ञान का विकास, सत्यनिष्ठा का विकास, अन्तरिम विकास, स्वावलम्बन का निर्माण, प्रज्ञा स्वयंभू बने, विश्वनागरिकता का निर्माण करना, जीविकोपार्जन का उद्देश्य, बुनियादी शिक्षा, विनोबा जी की बुनियादी शिक्षा के आधारभूत तत्व, विनोबा जी और नई तालीम, नई तालीम का उद्देश्य, स्वतंत्र एवं विचारशील व्यक्तित्व का निर्माण करना, ज्ञानार्जन की अभिरूचि उत्पन्न करना, स्वाव लम्बी एवं आत्मनिर्भर मानव बनाना, ज्ञान एवं कर्म में समन्वय, समाजसेवी व्यक्ति उत्पन्न करना, विश्व मानव

(ग) नई शिक्षा नीति के संदर्भ में गाँधी जी एवं विनोबा जी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :

गाँधीजी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा, विनोबा भावे के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा, नई शिक्षा नीति के संदर्भ में शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा

शैक्षिक स्वरूप

(क) महात्मा गाँधी जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :-

शिक्षा का अर्थ :-

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी केवल राजनीतिक नेता ही नहीं अपितु एक बड़े समाजसुधारक एवं धर्म तथा दर्शन के ज्ञाता थे। उन महान भारतीयों में गाँधी जी अग्रवाक्तेय है जिन्होने भारत की शिक्षा की जटिल समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक पद्धति से अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया है। यद्यपि वे एक राजनीतिक एवं समाज सुधारक थे। परन्तु वे एक शिक्षाविद भी थे। वे शिक्षा को सामाजिक, आर्थिक प्रगति राजनीतिक एवं नैतिक उत्थान एवं भौतिक विकास के लिए नवसंस्कार मानते थे।

गाँधी जी शिक्षा के पुनरूद्धार को अत्यंत आवश्यक मानते थे। इनका शिक्षा दर्शन मूलतः उनके जीवन दर्शन से ही प्रभावित था। उनका शिक्षा से तात्पर्य पूर्ण रूपेण साक्षर बनाना मात्र ही नहीं है गाँधी जी केवल साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते थे। उनके अपने शब्दों में-

" साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न ही प्रारम्भ। यह केवल साधन है जिसके द्वारा पुरूष और स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है अतः शिक्षा का अर्थ वालक के शरीर, मन और आत्मा का सर्वोत्तम रूप प्रकट करना है। "[1]

शिक्षा से गाँधी जी का तात्पर्य है मनुष्य के भीतर के श्रेष्ठतम तत्वों की बाह्य अभिव्यक्ति। प्रत्येक व्यक्ति कुछ जन्म जात क्षमताओं के साथ पैदा होता है, जिनका पूर्ण विकास उच्च शिक्षा के द्वारा ही संभव है। जवकि उसके ज्ञान एवं कर्म में पूर्ण समन्वय हो जाये। इस सन्दर्भ में गाँधी जी प्राचीन भारत के व्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन अत्यंत आवश्यक मानते हैं। व्रह्मचर्य ही व्यक्ति को ज्ञान सम्पन्न वनाकर जगत की सेवा के लिए तैयार करता है। समुचित शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को केवल निखारा जा सकता है उनका कहना था कि शिक्षा में ज्ञान के साथ कर्म भी समन्वित है।

1. शिक्षा के सामाजिक एवं राजनीतिक सिद्धांत - रमनविहारी लाल
   पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा शास्त्री - महात्मा गाँधी

गाँधी जी ने हरिजन 8 मई 1973 के अंक में लिखा है कि मस्तिष्क की सच्ची शिक्षा के लिए भी शारीरिक अवयवों का समुचित उपयोग आवश्यक है शारीरिक शक्ति एवं कर्मेन्द्रियों के बुद्धिपरक उपयोग से सुन्दर से सुन्दर और शीघ्र से शीघ्र मानसिक विकास संभव हो सकता है। महात्मा गाँधी के अनुसार -

" शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से हैं।"

गाँधी जी ने शिक्षा का अभिप्राय आधुनिक विचारधारा के अनुसार बताया है। लेकिन इस पर अपनी निजी छाप भी दी है। गाँधी जी केवल साक्षरता अर्थात् लिखने पढ़ने के साधारण ज्ञान को शिक्षा नहीं मानते थे कारण कि साक्षरता तो केवल आवरण मात्र है जिससे व्यक्ति सभ्य दिखाई देता है शिक्षा तो वास्तव में ऊपर से नहीं भीतर से होती है जैसा कि "एजूकेशन" शब्द का मूल अर्थ होता है। भीतर से बाहर की ओर बढ़ाना। इसको गाँधी जी ने भी स्वीकार किया है और वह लिखते हैं कि "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य में शरीर, मन और आत्मा के विचार से सर्वोत्तम को बाहर प्रकट करना है इससे स्पष्ट है कि वह शिक्षा को एक व्यापक एवं विस्तृत अर्थ में लेते थे। क्योंकि शिक्षा व्यक्ति को संकीर्ण घेरे में अथवा एकांगी ढंग से बढ़ने में नहीं होती है इसलिए गाँधी ने लिखा है -

" कि सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों को आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओं को उनके अंदर से बाहर प्रकट करें और उत्तेजित करें।"

इस प्रकार वह प्रत्येक व्यक्ति के शरीर, बुद्धि, भावना और आत्मा को पूर्ण रूप में सशक्त और विकसित करना चाहते थे और इसी को वह शिक्षा मानते थे।

व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास को ही गाँधी जी ने शिक्षा माना है। आजकल के विद्यार्थियों में केवल बौद्धिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता है बालक का शारीरिक विकास कुछ दिन पहले तक उपेक्षित था। अब राष्ट्रीय अनुशासन योजना एवं एन0 सी. सी0 आदि द्वारा बालकों के शारीरिक विकास की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक विकास भी आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के किसी एक अंग का विकास न होकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। विद्यालयों में रचनात्मक कार्य करने के भी अवसर प्रदान करने चाहिए।

साधारणतया वैयक्तिकता को निजी विशेषताओं के अर्थ में समझा

जाता है और ठीक भी है अतः इसे निजत्व का विकास भी कह सकते है निजी विशेषताओं में व्यक्ति की अपनी रूचि, प्रवृत्ति, आंतरिक गुण आदि का अधिकतम विकास किया जाता है।

शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करने की आवश्यकता :-

किसी भी प्रक्रिया को करने का एक लक्ष्य अवश्य होता है अन्यथा निरूद्देश्य कार्य करने से कोई लाभ नही और परिश्रम भी सार्थक नहीं होता। शिक्षा एक प्रक्रिया है और सउद्देश्य या प्रयोजनार्थ प्रक्रिया है। ''शिक्षा के अंतर्गत उन सभी चीजों को रखा जाता है जो हम अपने आप करते है और वे भी जो हमारे लिए दूसरों के द्वारा किए जाते हैं। जिसका प्रयोजन आवश्यक है प्रकृति के प्रक्षेपण के समीप हम लोगों को लाना।'' तात्पर्य यह है कि शिक्षा का उद्देश्य प्रकृति के विभिन्न रूपों का साक्षात्कार कराना है। और क्रिया के द्वारा चाहे करें अथवा दूसरे हमारे लिए करें। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य सभी समय में कुछ न कुछ निश्चित किया जाता रहा है। क्योंकि बिना उद्देश्यों और आदर्शो के शिक्षा बिना पतवार और बिना गन्तव्य स्थान के इधर उधर चलने वाले जहाज के समान होगा।

उद्देश्य निर्धारण से हमें कई लाभ होते हैं। उद्देश्य किसी कार्य का अंतिम बिन्दु होता है जहां तक पहुंचने का सतत् प्रयास किया जाना है। उस बिन्दु तक पहुंचने के लिए मार्ग और उपायों को निश्चित करना पड़ता है मार्ग निर्दिष्ट होने से पहुंचने में सरलता, सुगमता ओर समय भी कम लगता है। जिस प्रकार नाविक का साधन पतवार है उसी प्रकार शिक्षक के लिए उद्देश्य निर्धारण की आवश्यकता है। उद्देश्य निर्धारित होने से भूलना भटकना नहीं होता है और शीघ्र ही कार्य पूरा हो जाता है। दूसरे कार्य करने की अनुभूति होती है जिसकी प्रेरणा से वह आगे वढ़ता है। इस कारण उसे उत्साह, स्फूर्ति और बल मिलता रहता है। अतएव शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों को अपने गन्तव्य तक पहुंचने में और अधिक सुविधा मिलती है। सफलता सम्पूर्ण चाहे न हो फिर भी कदम व कदम सफलता मिलने पर ही कार्य करने वालों को प्रशंसा मिलती है और कार्य करने की रूचि बनी रहती है। रूचि के कारण शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनो रूचि में उन्नति करते रहते हैं। रूचिपूर्वक थोड़े थोड़े आगे वढ़ने सें भी लक्ष्य दिखाई देता है इससे फल प्राप्ति की आशा बंधती है और परिश्रम लगातार होता रहता है। अंत में फल की प्राप्ति होती है और कार्य पूरा हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य पहले से निश्चित करने में ही लाभ होता है अतः उद्देश्य निर्धारण की आवश्यकता है।

उद्देश्यों की आवश्यकता के सम्बंध में डी0 वी.0 महोदय लिखते हैं -

" चूंकि उद्देश्य हमेशा परिणामों से सम्वंधित होते हैं पहली चीज जिसे ध्यान में रखना चाहिए। जबकि यह प्रश्न उद्देश्य का है कि जो काम दिया गया है उसमें आंतरिक निरन्तरता है अथवा वह केवल क्रमागत कार्यो का समूह मात्र है पहले एक चीज की गई फिर दूसरी।"

औपचारिक शिक्षा का विधान तो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है सुनिश्चित एवं सुस्पष्ट उद्देश्यों के अभाव में इस शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है। निरूद्देश्य शिक्षा अपने में अर्थहीन होती है शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होती है -

1. औपचारिक शिक्षा का विधान :-

प्रत्येक समाज का मनुष्य के जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण होता है और इस आधार पर वह मनुष्य जीवन के कुछ उद्देश्य निश्चित करता है इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह शिक्षा का विधान करता है।

2. पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों का विधान :-

उद्देश्य निश्चित होने पर ही हम उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण करते है और यह पाठ्यचर्या कैसे पूरी की जाये इसके लिए शिक्षण विधियों का निर्माण करते हैं।

3. शिक्षा प्रक्रिया का सुचारू रूप से संचालन :-

उद्देश्य स्पष्ट होने से सीखने और सिखाने वाले दोनो का मार्ग निश्चित होता है। सीखने वाले (विद्यार्थी) को यह पता रहता है कि उसे क्या सीखना है और सिखाने वाले (अध्यापक) को पता रहता है कि उसे क्या सिखाना है, और कैसे सिखाना है और क्यों सिखाना है इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट होने से शिक्षा की प्रक्रिया बड़े सहीं ढंग से चलती है।

4. उत्साह में वृद्धि :-

नियोजित शिक्षा को जब सुचारू रूप से चलाया जाता है अध्यापक और छात्र इन लक्ष्यों को पूरा करते है तो उन्हें बड़ा संतोष मिलता है और वे दूने उत्साह से आगे बढ़ते हैं।

5. समय और शक्ति का सदुपयोग :-

जब अध्यापक और विद्यार्थियों को शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट होते है तो वे यह जानते है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है शिक्षा की प्रक्रिया एक व्यवस्थित ढंग से निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ती है इससे समय और शक्ति दोनो का सदुपयोग होता है।

अतः शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता के बिना यह सम्भव नहीं है। गाँधी जी का यह विचार था कि शिक्षा का कोई लक्ष्य नहीं हो सकता सर्वमान्य नहीं है। क्योंकि उद्देश्य विहीन शिक्षा का कोई महत्व नहीं होता है। इसलिए शिक्षा का एक निश्चित उद्देश्य होना ही चाहिए। प्रथमतः एडम्स महोदय का मन्तव्य है कि :-

" किसी एक उद्देश्य का चुनाव करके अन्य सभी उद्देश्यों को उसके केन्द्र में सम्मिलित करना आशा रहित कार्य है।"[1]

परन्तु अपने विचारों का मंथन करने के उपरान्त स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि :-

" आत्मानुभूति स्वयं में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक आदर्श है। "[2]

इस तथ्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि :-

" सभी आदर्श एवं लक्ष्य एक दूसरे के पूरक है, एक दूसरे से अलग करके प्राप्त नहीं किए जा सकते, उनकी एकता आवश्यक है। हमारे पास एक ऐसा आदर्श है जो सभी सम्प्रदायों की आकांक्षाओं को वास्तव में अपने में समाहित किए हुये हैं। "[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य होते हुए भी दार्शनिकों ने अपने समस्त कार्यो को एक ही उत्तम लक्ष्य "आत्मानुभूति" हेतु निर्धारित किया है। तथ्य यह है कि उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हुए भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाते कि समस्त उद्देश्य एक दूसरे से पारस्परिक रूप से अलग हैं। शिक्षा के उद्देश्यों की तुलना उस पहाड़ी की चोटी से की जाती है जहां से हम भूमि के स्पष्ट दृश्य देख सकते हैं। जॉन डिवी ने ऐसा ही किया था। उस भूमि का दृश्य विन्दु से देखने पर पहले से भिन्न दृश्य दिखाई देता है, ये भिन्न भिन्न दृश्य आवश्यक नहीं है कि वे एक दूसरे के विरोधी हों, बल्कि अधिकांश मामलों में एक दूसरे के पूरक हैं।

---

1. एडम्स सर जॉन : द एबल्युशन आफ एजूकेशनल थ्योरी, लंदन मैकमिलन पृष्ठ 39
2. तदैव – पृष्ठ 146
3. तदैव – पृष्ठ 40

भारतीय परम्परा के अनुसार गाँधी जी शिक्षा को गंभीर संकल्पिक व्यवसाय के रूप में मानते हैं। महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षाशास्त्रियों को अपना कार्य करते हुए भविष्य के लिए एक निश्चित लक्ष्य को भी अपनी दृष्टि में रखना चाहिए ताकि जीवन समस्याओं को समाधान करने में समर्थ हो सके। महात्मा गाँधी के शब्दों में:-

" शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है जो विद्यार्थियों की क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती हैं ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने बाली जीवन समस्याओं को ठीक ठीक समाधान करने में समर्थ हो सकें।"[1]

इस प्रकार शिक्षा उद्देश्य विहीन व निश्चित निर्देशन से वंचित नहीं है, परन्तु एक निश्चित लक्ष्य शिक्षण का अनुशासित निर्देशन है। महात्मा गाँधी ने भिन्न भिन्न काल व स्थान के अनुसार शिक्षा को भिन्न भिन्न विन्दुओं से देखा है। इसलिए अनेक उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं, किन्तु उनके भिन्न भिन्न उद्देश्यों को एक अंतिम उद्देश्य में सम्मिलित करना असम्भव नहीं है। अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अन्य उद्देश्य पूरक हैं। सामान्य अध्येता के लिए महात्मा गाँधी का दर्शन व शैक्षिक विचार एक विरोधी सत्य का बण्डल ही प्रतीत होगा, परन्तु यदि कोई व्यक्ति उनके लेखों व भाषणों एवं कृतियों की गहराई में दृष्टिपात करेगा तो उसे अनुभव होगा कि उनके शिक्षा के सभी उद्देश्य जीवन के विभिन्न पहलुओं को ही प्रकट करते हैं, किन्तु जब उनके दर्शन के केन्द्र में उनकी संगति कर दी जाती है तो वे स्वयं एक पूर्ण सम्बद्ध ढांचे का निर्माण कर देते हैं।

अब हमें इस तथ्य की खोज करनी है कि उनके दर्शन में समस्त उद्देश्यों की एक पूर्ण संगति किस प्रकार घटित हूई है। महात्मा गाँधी का शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास मानते हैं। शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करते हुए उन्होने लिखा है कि :-

" शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मानव के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास से है।"[2]

महात्मा गाँधी जी भारत की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दासता के बंधन से हमेशा के लिए मुक्त करना चाहते थे। वे साक्षरता को न तो शिक्षा मानते थे और न तो ज्ञान का आधार ही। इस सम्बंध में उन्होने लिखा है कि :-

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन, (साप्ताहिक) 23.5.36 एन0पी0 नवजीवन प्रेम अहमदाबाद।
2. महात्मा गाँधी - हरिजन, (साप्ताहिक) 31.7.37 एन0पी0 नवजीवन प्रेम अहमदाबाद।

" साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न प्रारम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरूष व स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।"[1]

शरीर, मन और आत्मा जिस विद्या से विकसित हो और परिपुष्ट हो वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, वौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास होना चाहिए। इसी कारण महात्मा गाँधी जी अपने शैक्षिक उद्देश्यों की उपलब्धि हेतु तीन आर (रीडिंग, राइटिंग व अर्थमेटिक) की अपेक्षा "तीन एच" (हैण्ड, हेड, तथा हार्ट) की शिक्षा पर बल देते हैं। इन तीनो तत्वों के सामन्जस्यपूर्ण विकास से बालक का सर्वतोमुखी विकास सम्भव है। महात्मा गाँधी जी का कथन है कि :-

" वाणी में उतार चढ़ाव होना उतना ही आवश्यक है जितना कि हाथ के प्रशिक्षण का। शारीरिक कसरत, हस्तकला, ड्राइंग और संगीत की शिक्षा साथ साथ दी जाये ताकि बालक बालिकाओं के अंदर निहित योग्यताओं को सर्वोत्तम रूप से विकसित किया जाये और शिक्षा के प्रति उनकी रूचि जागृत की जाये।"[2]

महात्मा गाँधी के विचार से हमारे जीवन का इस भौतिक एवं परलोक दोनो से सम्वंध है। इसलिए उन्होने शिक्षा के उद्देश्यों को भौतिकवादी एवं आध्यात्मवादी दोनो दृष्टिकोणों से सम्बंधित किया है।

प्रथम - तात्कालिक उद्देश्य

द्वितीय - अंतिम उद्देश्य या सर्वोत्तम उद्देश्य

---

1. महात्मा गाँधी - हरिजन, (साप्ताहिक) 31.7.37 एन0पी0 नवजीवन प्रेम अहमदाबाद।

2. तदैव दिनांक 11.9.37

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :-

जीविकोपार्जन का उद्देश्य :-

हमने देखा है कि महात्मा गाँधी जी के शैक्षिक सिद्धांत उनके द्वारा दक्षिणी अफ्रीका के टालस्टाय फार्म व फीनिक्स वस्ती तथा भारत के सावरमती आश्रम व सेवाग्राम में किए गए शैक्षिक प्रयोगों की उपज है। दक्षिणी अफ्रीका के प्रयोगों से उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि :-

" बालक बालिकाओं का सर्वतोमुखी विकास करना ही वास्तव में शिक्षा का कार्य है।"[1]

महादेव देसाई ने इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए लिखा है कि :-

" गाँधी जी ने अक्सर यह कहा है कि शिक्षा को बालक व बालिकाओं को पूर्ण मानव बनाना चाहिए, कोई भी शिक्षा उत्तम नहीं कही जा सकती जो उपयोगी नागरिक तथा बालक बालिकाओं को पूर्ण मानव नहीं बनाती है।"[2]

अतः विद्यार्थियों की समस्त क्षमताओं को समान रूप से विकसित होने के लिए मस्तिष्क, हृदय तथा हाथ इन तीनों की एकता तथा उनमें सामन्जस्य अवश्य होना चाहिए। तभी पूर्णमानव की प्रकृति की पूर्णता सम्भव होगी। इसीलिए महात्मा गाँधी ने एक नूतन विचार हस्तकला द्वारा शिक्षा देना प्रस्तुत किया था। शिक्षा की समस्त प्रक्रिया को किसी हस्तकला या उद्योग को केन्द्र में रखकर ही परिचालित करना चाहिए, क्योंकि मानव की मौलिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र आवास) की पूर्ति के बिना व्यक्ति मेंउच्च आदर्शो के प्रति विचार ही उत्पन्न न होगा। जीविकोपार्जन सम्बंधी उद्देश्य का अभिप्राय विद्यार्थी की रोजी रोटी रूपी आवश्यकताओं की पूर्ति से है। यदि शिक्षा हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती है तो वह हमारे लिए व्यर्थ है। कुछ लोगों को शिक्षा का उद्देश्य तुच्छ और भौतिकवादी प्रतीत होता है, परन्तु हमें यह तथ्य अंगीकार करना पड़ेगा कि यदि हम भौतिक, नैतिक और मानसिक प्रगति की कामना करते हैं तो हमें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सर्वप्रथम संतुष्ट करना चाहिए। इसी विचार से प्रेरित होकर महात्मा गाँध ी जी ने शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य को मनुष्य की रोटी और रोजी की समस्या को समाधान करना बताया है। वे विद्यार्थी को स्वावलम्बी आत्म निर्भर बनाना चाहते थे। स्वावलम्वी शिक्षा के लक्ष्य पर

1. महात्मा गाँधी – हरिजन, (साप्ताहिक) 18.9.37 एन0पी0 नवजीवन प्रेम अहमदाबाद।
2. देसाई महादेव – प्राईमरी एजूकेशन एण्ड विलेज द ईयर बुक आफ एजूकेशन 1940 इवान्स लंदन पृष्ठ 44

महात्मा गाँधी किसी प्रमाणित ग्रंथ का सहारा लेकर नहीं पहुंचे थे, वल्कि उन्होने इसकी अनुभूति स्वतंत्र रूप से की थी। यही उनकी विलक्षणता थी। इस सम्वंध में देसाई महोदय ने लिखा है किः-

" उन्होने किसी शैक्षिक सिद्धांत का अध्ययन नहीं किया था। मैं यह भी नहीं सोचता हूं कि वे "एमील" नामक किसी ग्रंथ के अस्तित्व के विषय में जानते थे।"[1]

महात्मा गाँधी ने स्वावलम्वन शब्द को दो अर्थो में प्रयोग किया है :-

1. हस्तकला केन्द्रित शिक्षा बालकों को स्वावलम्वी वनाती है।

2. यह शिक्षा स्वयं में स्वावलम्वी है।

महात्मा गाँधी जी की इच्छा थी कि प्रत्येक विद्यार्थी बेसिक विद्यालय छोड़ने के पश्चात व्यवसाय को प्राप्त कर स्वयं स्वावलम्वी बन सके। दूसरे शब्दों में नई शिक्षा हस्तकला रूपी तत्व द्वारा बालकों को अपनी जीविका कमाने का प्रशिक्षण देकर बेरोजगारी की समस्या का समाधान प्रस्तुत करेगी। इस प्रकार विद्यालयीनय पाठ्यक्रम की पूर्णता के पश्चात वे स्वावलम्बी बन सकेंगे।

विद्यार्थियों को आत्म निर्भर वनाने के लिए महात्मा गाँधी वार-वार जोर देते हैं क्योंकि उनका कहना है :-

" शिक्षा को बालकों को वेरोजगारी के विरूद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिए। सात वर्ष का कोर्स समाप्त करने के बाद चौदह वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेजा जाना चाहिए।"[2]

महात्मा गाँधी की इच्छा थी कि प्रत्येक वालक अपने माता पिता के कार्यो में सहयोग प्रदान करे। इस प्रकार की भावना की उत्पत्ति करना वास्तव में स्वयं में शिक्षा है। इस प्रकार शिक्षा द्वारा वे समाज में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या की जड़ को काटना चाहते हैं।

महात्मा गाँधी की शिक्षा का माध्यम कर्म है :-

सन् 1902 में डॉ0 जाकिर हुसैन ने अखिल भारतीय नई तालीम के द्वितीय अधिवेशन में शिक्षा "कर्म" अर्थात् "श्रम" की व्याख्या इस प्रकार की है :-

" हम लोग केवल वर्तमान समय में ही शिक्षा का माध्यम "कर्म"

---

1. देसाई महोदय : द इयर बुक आफ एजूकेशन 1940 इवान्स लन्दन पृष्ठ 436
2. महात्मा गाँधी – हरिजन, (साप्ताहिक) 11.9.37 एवं 18.9.37 एन0पी0 नवजीवन प्रेम-अहमदावाद।

नहीं मानते है बल्कि.... प्रत्येक मनुष्य ने यह बात अपने तरीकों से कही है। एक व्यक्ति के लिए "कर्म" सिद्धांत है।..... उसे पाठ्यक्रम के विषय का एक हिस्सा बनाया जाये। दूसरे व्यक्ति के लिए "कर्म" पाठयक्रम का एक विषय रहना चाहिए।...... तीसरे व्यक्ति के लिए "कर्म" द्वारा उत्पादन होना चाहिए और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो "कर्म" को ईश्वर का वरदान मानते हैं। उनकी क्रियाशीलता उनकी रचनात्मक शक्तियों का द्योतक है।"[1]

डॉ हुसैन ने प्रत्येक प्रकार के "कर्म" द्वारा ज्ञान प्राप्ति की ओर संकेत किया है, परन्तु महात्मा गाँधी जी ने "सोद्देश्य पूर्ण श्रम की ईकाई" को ही शिक्षा का माध यम माना है, अर्थात् शिक्षा उन्हीं कर्मो द्वारा देनी चाहिए जिनसे विद्यार्थियों की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। उत्पादक कर्म ही उपयोगी कर्म है। शिक्षा में "कर्म" के विषय में अन्य देशों में भी चिंतन किया गया है :-

" रूस के विद्यालयों मे शिक्षण का सिद्धांत मुख्यतः इसी बात पर आधारित है कि सभी शैक्षिक क्रियाशीलन "श्रम" पर अवलम्वित रहे। वहां अध्ययन की योजना सम्मिलित एवं संश्लिष्ट तथा समवाय के विस्तृत क्षेत्र पर आधारित है।...... विज्ञान व मानव शास्त्र के सभी विषयों को "श्रम" के केन्द्र विन्दु में और समाज व प्रकृति को उसके अगल वगल रखकर विभाजित किया गया है।"[2]

जॉन डिवी ने भी अपने शिक्षा सम्वंधी विचार इस तथ्य को दृष्टि में रखकर निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट किये हैं :-

" हम लोगों को सभी प्रकार के काष्ठ, लोहे, बुनाई, सिलाई तथा रसोई के कामों का व्यवहार जीवन यापन की विधियों जैसा करना चाहिए और शिक्षण को मात्र अध्ययन ही नहीं मानना चाहिए। हम लोगों को इन कामों की कल्पना उनकी सामाजिक सार्थकता की दृष्टि से करना चाहिए। अर्थात् उन प्रक्रियाओं के रूप में जिनसे समाज चलता है, उन साधनों के रूप में जिनके द्वारा बालक सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं को समझ सके और वे तरीके जिनके द्वारा मानव की बढ़ती हुई अर्न्तदृष्टि एवं प्रज्ञा के कारण इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती आई है, संक्षेप में उनके कर्तव्यों द्वारा विद्यालय सामुदायिक जीवन का एक साधन वनेगा न कि पाठों के अध्ययन का केवल एक स्थान।"[3]

---

1. टू ईयरस आफ वर्क, सेवा ग्राम वर्धा पृष्ठ 31
2. टू ईयरस आफ वर्क, सेवा ग्राम वर्धा पृष्ठ 165-166
3. आचार्य कृपलानी : जे0 बी0 द्वारा उद्धृत द लेटेस्ट फैड, सेवा ग्राम हिन्दुस्तानी तालिमी संघ पृष्ठ - 34

इस प्रकार अनेक चिन्तकों ने ''कर्म'' द्वारा ज्ञान देने की परिकल्पनायें की है तथा उनका प्रयोग भी किया है। जब से मानव के व्यक्तित्व के सामन्जस्य पूर्ण विकास की बात की गई तभी से मानव व्यक्तित्व के इन चार पक्षों- शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के विकास पर जोर दिया जाता रहा है। कर्म के प्रति इंग्लैंड की शिक्षा परिषद का विचार है :-

'' जिस समाज का बालक सदस्य होता है उसकी भलाई को ध्यान में रखते हुए बालक की समग्र क्षमताओं का विद्यालयीय परिवेश में विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।''

प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था में बालक की सम्पूर्ण प्रकृति के विकास का लक्ष्य रखा गया था न कि केवल बौद्धिक विकास का। महात्मा गाँधी भी पूर्ण मानव विकास हेतु हृदय मस्तिष्क या मन और हाथ तीनों की एकता पर वल देते हैं।

महात्मा गाँधी जी की शैक्षिक विचार धारा की मौलिकता इस बात में है कि वे समस्त विकास को हस्तकला की शिक्षा द्वारा ही करना चाहते हैं। ''हरिजन साप्ताहिकी'' में गाँधी जी ने अपने इस नये विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है :-

'' किसी उद्योग या हस्तकला को वीच में रखकर उसके जरियें ही समस्त सामान्य शिक्षा की प्रक्रिया को परिचालित करना चाहिए। किसी हस्तकला के विज्ञान व कला के व्यावहारिक ज्ञान के प्रशिक्षण द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए। शरीर मन व आत्मा की सभी शिक्षायें हस्तकला द्वारा ही बच्चों को प्रदान की जानी चाहिए।''[1]

महात्मा गाँधी का उपर्युक्त विचार केवल नया ही नहीं वरन् क्रान्तिकारी भी है क्योंकि मध्ययुग में :-

'' व्यावसायिक प्रशिक्षण शैक्षिक लक्ष्य से नहीं प्रदान किया जाता था। उस समय हस्तकला हस्तकला के लिए ही सिखाई जाती थी। बौद्धिक विकास के लिए बिल्कुल प्रयत्न नहीं किया जाता था। ''[2]

यद्यपि उपर्युक्त तथ्य से सहमत होना कठिन है किन्तु हमें इस विचार की सहमति की आवश्यकता भी नहीं, हमें तो यह देखना है कि महात्मा गाँधी जी ने इस सम्वंध में

---

1. हैण्ड बुक आफ सजेशन्स, फार दी कन्सीडरेशन आफ टीचर्स एण्ड अदर्स कन्सर्न्ड इन द वर्क आफ पब्लिक एलीमेन्ट्री स्कूलस हिज जस्टीस स्टेशनरी ऑफिस लन्दन पृष्ठ - 12
2. एजूकेशन रीकन्सट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालिमी संघ वर्धा 1939 पृष्ठ 118

क्या विचार व्यक्त किया है। महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि :-

" मैं नहीं जानता कि मध्य युग में क्या हुआ था परन्तु मैं मानता हूं कि उन दिनों मध्य युग या किसी युग में हस्तकला के जरिए सम्पूर्ण शिक्षा देने की बात लोगों के सामने नहीं थी, धन्धा सिर्फ धन्धे के ख्याल से सिखाया जाता था। अतः यह विचार मौलिक है।"[1]

इससे प्रतीत होता है कि पहले भी हृदय, मस्तिष्क एवं हाथ की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु इसके पहले हाथ की संस्कृति की शिक्षा द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा देने की बात महात्मा गाँधी जी के अतिरिक्त किसी के मस्तिष्क में नहीं आई थी, यही वास्तव में महात्मा गाँधी जी की मौलिकता है। यद्यपि मानवीय क्रियाओं द्वारा शिक्षा देने का विचार उतना पुराना है जितनी मानवता स्वयं में है। प्रारंभिक मनुष्य क्रियात्मक श्रम द्वारा ही सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते थे। रूसो ने लिखा है कि :-

" पुस्तक पढ़ाने की अपेक्षा में विद्यार्थियों को कारखाने में लगाना उचित समझता हूं, उनके हाथ, मस्तिष्क के विकास के लिए काम करेंगे। जब वह अपने को कामगार अनुभव करेगा तो वह दार्शनिक कहलायेगा।"[2]

शारीरिक श्रम के शैक्षिक महत्व के विषय में एडाल्फ फ्रेरी की निम्न लिखित पंक्तियां अच्छा प्रकाश डालती है :-

" सेम्पियस के अपने क्रियाशीलन विद्यालय में पॉल रॉविन ने सभी शारीरिक क्रियाओं का प्रचलन कर रखा था और उनका बौद्धिक शिक्षा के लिए साधन रूप में प्रयोग करते थे।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पॉल रॉविन, फ्रीवेल, जॉन डिवी, रूसी तथा रूस के शिक्षा शास्त्री सभी शारीरिक श्रम की शिक्षा पर बल प्रदान करते हैं, किन्तु महात्मा गाँधी की विचारधारा में जो मौलिकता एवं विलक्षणता है वह इनमें नहीं है, क्योंकि किसी भी शिक्षा शास्त्री ने हस्तकला के द्वारा सम्पूर्ण अभिक्षमताओं एवं योग्यताओं के विकास की बात करके पूर्ण मानव निर्माण की कल्पना नहीं की है। महात्मा गाँधी जी हस्तकला को अलग विषय के रूप में सिखाना नहीं चाहते, जैसा कि अन्य देशों के शिक्षा शास्त्रियों ने करने को कहा है, बल्कि शिक्षा का

---

1. महात्मा गाँधी : हरिजन (साप्ताहिक) 16.10.37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
2. रूसी : एमिल या शिक्षा एवरीमेन एडीशन डेन्ट लंदन 1925 पृष्ठ 140
3. एडाल्फ फ्रेरी : द एक्टिविटी स्कूल एडीटेड वाई के0जी0 सैयदन, किताबिस्तान, इलाहबाद .1938 पृष्ठ 38 एफ.

केन्द्र हस्तकला ही होगा और अन्य विषय उससे सम्बंधित करके पढ़ाये जायेंगे।

भारत में यूनेस्कों प्रोजेक्ट के संदर्भ में अपने विचार डॉ0 जाकिर हुसैन ने इस प्रकार व्यक्त किये हैं :-

" हस्तकला के जरिए शिक्षा प्रदान करने से प्रायः सभी समस्यायें हल हो जायेंगी जबकि अन्य किसी से यह सम्भव नहीं हो सकता।"[1]

महात्मा गाँधी जी, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों की दृष्टि से हस्तकला को श्रेष्ठ समझते हैं :-

" हस्तकला के जरिए शिक्षा प्रदान करने से प्रायः सभी समस्यायें हल हो जायेगी जबकि अन्य किसी से यह सम्भव नहीं हो सकता।"

महात्मा गाँधी जी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों ही दृष्टि से हस्तकला को श्रेष्ठ समझते हैं। व्हाइट हैड ने भी हस्त प्रशिक्षण पर जोर दिया है। उन्होने लिखा है :-

" मुख्य बात तो यह है कि क्या मानव हाथ ने मनुष्य के मस्तिष्क को बनाया है ? या मस्तिष्क ने हाथ का निर्माण किया है वास्तव में हाथ व मस्तिष्क दोनों पारस्परिक रूप से व घनिष्ठ रूप में सम्बंधित है।"[3]

महात्मा गाँधी जी की भांति इन्होने भी शिक्षा की योजना बनाते समय हाथ और मस्तिष्क के आपसी सम्बंध को ध्यान में रखने की सहमति दी है। महात्मा गाँधी की मान्यता है कि मनुष्य ईश्वर का ही रूप है, जिस प्रकार ईश्वर सृष्टि करता है उसी प्रकार मनुष्य भी निर्णायक है। यदि निर्माण की शक्ति अथवा योग्यता का विकास शिक्षा नहीं कर सकती तो ऐसी शिक्षा व्यर्थ है। विद्यार्थियों की इस योग्यता का विकास हस्तकला अथवा शरीर श्रम की शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है, परन्तु क्रियाशीलता लाभदायक होनी चाहिए तभी वह शिक्षा के रूप में स्वीकार की जायेगी। महात्मा गाँधी ने अपने शैक्षिक सिद्धांत की इस प्रकार व्याख्या की है :-

" मैं मानता हूं कि सच्ची बौद्धिक शिक्षा केवल शारीरिक अवयवों जैसे हाथ, पैर, ऑख, कान, नाक आदि के उचित व्यायाम व प्रशिक्षण के जरिए ही प्राप्त हो सकती

---

1. डॉ जाकिर हुसैन : यूनेस्को प्रोजेक्ट्स इन इण्डिया पृष्ठ 92 एफ। इटैलिक्स माइन
2. व्हाईट हेड, ए0 एन0 एम्स ऑफ एजूकेशन एण्ड अदर एसेज विलियम्स एण्ड नारगेट लन्दन 1950 पृष्ठ 78

है। दूसरे शब्दों में शारीरिक अवयवों का बुद्धिमता पूर्वक प्रयोग करने से विद्यार्थियों में श्रेष्ठ एवं तीव्रतम ढंग से बुद्धि का विकास होता है। इस सिद्धांत के अनुसार यह सोचना व्यर्थ है कि किसी एक के स्वतंत्र विकास से वे सभी क्षमतायें विकसित हो सकती हैं। ''[1]

किसी मूल उद्योग को केन्द्र में रखकर बालक की समस्त योग्यताओं का विकास करना ही महात्मा गाँधी की शिक्षा का लक्ष्य है। महात्मा गांधी शिक्षा में उत्पादन शीलता, सामाजिक तथा प्राकृतिक पर्यावरण को विशेष महत्व देते हैं। महात्मा गाँधी ने इस सम्वंध में कहा है कि :-

'' मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा से मस्तिष्क व आत्मा का सर्वोच्च विकास होगा। हस्तकला यंत्रवत नही सिखाई जायेगी। बालक हस्तकला की प्रत्येक प्रक्रिया के कारण को समझता जायेगा। एक साधारण बढ़ई किसी को बढ़ईगीरी का ज्ञान यंत्रवत देता है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से बढ़ईगीरी की शिक्षा प्राप्त शिक्षक बढ़ईगिरी के ज्ञान के साथ साथ गणित, लकड़ियों के भेद, उसके उत्पादन क्षेत्र आदि का भी ज्ञान दे सकता है।.... इस प्रकार हस्तकला के ज्ञान से गणित, भूगोल, इतिहास व कृषिशास्त्र का ज्ञान किसी को भी कराया जा सकता है।''[2]

महात्मा गाँधी का इस प्रकार का शैक्षिक प्रस्ताव वास्तव में अपने में स्वयं क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसमें समय व श्रम दोनो की बचत होती है। इसका तात्पर्य हर प्रकार की मितव्यता ही है। गाँधी जी समस्त विषयों जैसे इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान,संगीत, चित्रकारी व भाषा को समवाय विधि से एक निश्चित योजना से पढ़ने के पक्षधर है, गाँधी जी के हस्तकला केन्द्रित शिक्षा के पक्ष में काका साहब कालेलकर ने कहा है कि :-

'' अनुभव ने हमें बताया है कि विद्यार्थियों के पूर्ण व्यक्तित्व विकास हेतु शरीर श्रम द्वारा शिक्षा नितांत आवश्यक है। हमने अब तक हृदय व मानसिक विकास हेतु वाणी व कर्ण का प्रयोग करना ही जाना है। नेत्रों का प्रयोग भी निरीक्षण के अतिरिक्त अन्य विषयों को कंठस्थ करने में ही किया है, परन्तु अब हमें यह अनुभव करना चाहिए कि सच्चे अर्थो में हृदय व मन का विकास शरीर श्रम द्वारा ही हो सकता है। ''[3]

हस्तकला के ज्ञान से विद्यार्थियों में आत्म सम्मानित नागरिक होने

---

1. महात्मा गाँधी – हरिजन, (साप्ताहिक) 8.5.37 नवजीवन प्रेम अहमदाबाद।
2. महात्मा गाँधी – हरिजन (साप्ताहिक) 31.7.37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद।
3. एजूकेशन रीकन्स ट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा 1939 पृष्ठ 137

का भाव, भावी जीवन में अपराश्रिता का विचार उत्पन्न होगा जो किसी भी राष्ट्र के नागरिक का प्रमुख गुण है। के0 जी0 मसरूवाला ने कहा है कि :-

" उद्योग निर्देशन का माध्यम साधन ही नहीं बल्कि कुछ सीमा तक मानव जीवन की अत्याज्य परिस्थिति व निर्देशन का साध्य भी है। शिक्षा का उद्देश्य शरीर श्रम की प्रतिष्ठा, ईमानदारी से स्वश्रम द्वारा जीविकोपार्जन के कर्तव्य तथा सड़क पर से कूड़ा उठाने वाले मेहतर के कार्य के प्रति उत्तम भाव को पैदा करना है।"[1]

श्री महादेव देसाई ने लिखा है कि गाँधी जी की शिक्षा का लक्ष्य ग्रामीण बच्चों की शिक्षा से ही है। वे ग्राम को स्वर्ग बनाना चाहते हैं।

" गाँधी जी के शिक्षा का लक्ष्य गांव के बच्चों को उचित शिक्षा देना है, उनकी शिक्षा उनके वंशानुगत व्यवसाय व पर्यावरण के अनुकूल जीवन के लिए होनी चाहिए।"[2]

महात्मा गाँधी जी के अनुसार केवल उद्योग सीखने तथा उसके सम्बंध में जानकारी कर लेने से ही जीवन की शिक्षा पूरी नहीं हो पाती है। अतः शिक्षा के लिए समाज व प्रकृति को भी माध्यम माना गया है। बालक की वही शिक्षा पूरी हो सकती है, जो उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित तथा प्रकृति केन्द्रित हो। महात्मा गाँधी जी ने अपने भाषण में कहा है कि :-

" सन् 1915 ई0 से अब तक हिन्दुस्तान के गांवों में जितना मैं घूमा हूं और जिस हद तक उनके अंदर मैं बैठा हूं, उतना शायद ही कोई घूमा हो, दक्षिण अफ्रीका में मैंने इसका खूब अनुभव किया है। प्राथमिक शिक्षा की जो शक्ल आज है उसे मैंने गांव में देखा है। गांव के लड़को की पढ़ाई का न कोई ध्येय है न कोई ढंग है। इसलिए मैं समझता हूं कि अगर हम देहातों को कुछ देना चाहते हैं तो सेकेण्डरी व प्राईमरी को एक साथ मिला दें। इसलिए जो कुछ हमने बनाया है और बनाने जा रहे हैं वह शहरों के लिए नहीं बल्कि पूरे का पूरा गांव के बीच में रखकर उसके जरिए ही सारी शिक्षा दी जानी चाहिए।....हम तो धंधे व हस्तकला की मदद से दिमाग को भी आला बनाना चाहते हैं।"[3]

महात्मा गाँधी ने अपनी शिक्षा योजना को मनोवैज्ञानिक मानते हुए

---

1. हरिजन (साप्ताहिक) 4.12.37 नवजीवन प्रेमस अहमदाबाद
2. देसाई महादेव : द ईयर बुक आफ एजूकेशन लन्दन, इवान्स ब्रदर्स फार द यूनिवर्सटी आफ लन्दन, इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन पृष्ठ 448
3. महात्मा गाँधी : भाषण वर्धा सम्मेलन 22 अक्टूबर 1937

कहा है कि '' हमारी शिक्षा क्रान्तिकारी है।'' मस्तिष्क की शिक्षा हाथ से ही देनी चाहिए। यदि मैं कवि होता तो हाथ की पांचों अंगुलियों की क्षमताओं पर कविता लिखता। आप यह क्यों सोचते हैं कि मस्तिष्क ही सब कुछ है और हाथ व पैर कुछ नहीं है, जो अपने हाथ का प्रशिक्षण नहीं लेता है। उसके जीवन का आनंद ही समाप्त हो जाता है। उसकी सभी क्षमताओं को प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता है। केवल पुस्तकीय शिक्षा विद्यार्थियों का ध्यान पूर्ण रूप से नहीं आकर्पित कर सकती है, पुस्तकीय विद्या के शब्दों से छात्रों का मस्तिष्क थक जाता है और ध्यान इधर उधर भटक जाता है। परिणाम यह होता है कि हाथ वह काम करने लगता है जो उन्हें नहीं करना चाहिए, कान वह सुनने लगते हैं जो उन्हें नहीं सुनना चाहिए और विद्यार्थी को जो करना, देखना व सुनना चाहिए उसे नहीं करते हैं।''

हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी जी चाहते थे कि प्रत्येक बालक कमाते हुए शिक्षा ग्रहण करे। उसका परिश्रम उसके शिक्षा का एक हिस्सा होना चाहिए और जिस समाज में वह रहता है उसके अनुकूल बनने में शिक्षा को सहयोग देना चाहिए।

सामंजस्य पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य :-

हमने यह देखा है कि गाँधी जी वालक का सर्वतोमुखी विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानते हैं। और इसे ही शिक्षा कहते है। वे बालक की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित करना चाहते हैं ताकि उनका सामन्जस्य पूर्ण विकास हो सके। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो हमारी भावनाओं, संवेदनाओं, जन्मजात क्षमताओं मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक एवं जीवन के सभी पहलुओं को समान रूप से विकसित करें। हमने देखा है कि महात्मा गाँधी जी ने उद्देश्य की तह तक पहुंचने के लिए अनेक प्रयोग व व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करने के बाद ही उसे प्रतिपादित किया है। उनके उद्देश्य प्रयोग सिद्ध है। अपने प्रारम्भिक स्तर पर उनका प्रयोग सीमित विद्यार्थियों पर किया गया था, परन्तु वाद में यह मानव व्यवहार की जड़ तक पहुंच गया था। उनके शैक्षिक विचार मस्तिष्क की अपेक्षा अन्तरात्मा की पुकार से प्रभावित हैं। शक्ति मनोविज्ञान वेत्ता के भाव के समान महात्मा गाँधी जी ने ''शक्तिपद'' द टर्म फबुयुलिटी'' का प्रयोग नहीं किया है। उन्होने ''शक्तिपद'' को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक शक्ति के भाव में ही प्रयोग किया है। संस्कृति को वे मानसिक कार्य का परिणाम नहीं मानते बल्कि यह आत्मा का ही गुण है जिसे मानव व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है, व्यक्ति के व्यवहार को देखकर ही उसके सुसंस्कृत तथा कुसंस्कृत होने की परख की जाती है। सन् 1946 में कस्तूरबा बालिका आश्रम नई दिल्ली की लड़कियों को सम्वोधित करते हुए

गाँधी जी ने कहा है कि :-

" मैं शिक्षा के साहित्यिक पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूं। संस्कृति बालिकाओं के लिए मुख्य वस्तु है। उन्हें अपने बोलने, बैठने, चलने कपड़े पहनने और छोटे से छोटे कार्य एवं व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिए।"[1]

महात्मा गाँधी जी इसे शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य मानते हैं उनके अनुसार हमारा मस्तिष्क द्वेष एवं अभिमान के कुहांसों से इस प्रकार ढक लिया जाता है। कि हम वस्तु को उसके वास्तविक रूप में नहीं देख पाते। अतः शिक्षा का कार्य यह है कि वह हमारी आत्मा पर चिपके हुए गंदे विचारों के बोझ को और न बढ़ावे। बल्कि उन्हें दूर करें। आत्मा के ऊपर से इस अंधकारमय स्थिति को हटाना चाहिए। ताकि विद्यार्थियों की स्वच्छ मूलभूत प्रवृत्तियों को ऊपर उठने का अवसर मिले।

ट्रॉसवाल के टॉलस्टाय फार्म में उन्होने यह अनुभव किया था कि यदि हृदय को सच्चा प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है तो मानसिक प्रशिक्षण बेकार हो जाता है। इसके लिए ड्राइंग संगीत और हस्तकला के अध्ययन पर बल देते हैं। महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि :-

" ट्रांसवाल फार्म में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई उन बालक बालिकाओं के सर्वांगीण विकास हेतु प्रशिक्षण देने में जिनके लिए मैं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी था।"[2]

प्रश्न यह है कि सर्वांगीण विकास कैसे किया जाये ? अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने जिन्होने सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को प्रस्तुत किया था वे उसे प्राप्ति हेतु किसी मूर्त विधि का सुझाव नही दे सके थे। यदि महात्मा गाँधी एक व्यवहारिक अनुभवी एवं प्रयोगात्मक दार्शनिक न होते तो उनका आज शिक्षा जगत में कोई महत्व नहीं होता। सर्वांगीण विकास हेतु अपनी मूर्त विधि के प्रारूप को प्रस्तुत करते हुए उन्होने लिखा है कि :-

"आपको विद्यार्थियों को एक या अन्य पेशे में प्रशिक्षित करना होगा। इस विशिष्ट पेशे को केन्द्र मानकर हस्तकला द्वारा प्राप्त ज्ञान से उनके मस्तिष्क, शरीर, आत्मा, लिखावट, सौन्दर्य भावना आदि का पूर्ण विकास भी करना है।"[3]

---

1. महात्मा गाँधी/टू टू स्टूडेंट नवजीवन पब्लिसिंग हाउस अहमदाबाद 1949 पृष्ठ291
2. हरिजन : 18. 9. 37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
3. तदैव

गाँधी जी की दृष्टि में हस्तकला की शिक्षा सर्वांगीण विकास हेतु आवश्यक है। उन्होने अपनी आत्मकथा में लिखा है :-

" अच्छा हस्तलेख शिक्षा का आवश्यक अंग है।.......... बालकों को लिखना सीखने से पहले ड्राइंग की शिक्षा दी जाये, वच्चे को देखकर अक्षरों को सीखने दो जेसे ही वे अन्य वस्तुओं का चित्र खींचना सीख लें तो उन्हें सिर्फ अक्षर लिखना सीखने दो, तभी वे सुन्दर लेख प्रस्तुत कर सकेंगे।"[1]

हम देखते हैं कि इसीलिए गाँधी जी तीन "आर" की अपेक्षा तीन एच पर विशेष जोर देते हैं। पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने के लिए इन तीनों "एच" हाथ, हृदय एवं मस्तिष्क का उचित एवं सामजन्स्य पूर्ण मिश्रण आवश्यक है।

सांस्कृतिक उद्देश्य :-

जीविकोपार्जन के उद्देश्य के विरोधी प्रायः सांस्कृतिक या ज्ञान के विकास अथवा मस्तिष्क की बुद्धि के शैक्षिक उद्देश्य की चर्चा करते हैं और इसे उसकी अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान करते हैं। शिक्षा और ज्ञान का घनिष्ठ सम्वंध आदि काल से रहा है। कभी मुख्य और कभी गौण। सभी दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री इसे अपनाने के लिए अपना समर्थन देते रहे हैं। प्रायः इस लक्ष्य से यह अर्थ ग्रहण किया जाता रहा है कि शिक्षा इस उद्देश्य से प्रदान की जावे ताकि ज्ञान चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक उसकी बृद्धि हो। "वेबस्टर डिक्सनरी" में ज्ञान का अर्थ निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है :-

" ज्ञान वह है जो ज्ञात है, जो जानकारी के द्वारा सुरक्षित है या परिचितता जो वास्तविक अनुभव से प्राप्त होती है।"

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में विद्यार्थी स्वयं ज्ञान ग्रहण करता है। आदर्शवादी प्लेटों विचारों द्वारा ज्ञान प्राप्ति की बात करते हैं जवकि प्रकृतिवादी एवं प्रयोजनवादी अनुभव एवं प्रयोग से इसकी उपलब्धि मानते हैं।

व्यक्ति एवं पर्यावरण के मध्य क्रिया प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप जो प्राप्त होता है वह ज्ञान है, और इसे संगठित, सुरक्षित एवं संचित करना ही शिक्षा है या संस्कृति है। इस प्रकार संस्कृति स्वंय शिक्षा हो जाती है। जॉन डीवी ने इसका समर्थन किया है उनके अनुसार सच्चा ज्ञान वही है जो हमारे संस्कारों में संगठित होता है जिसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं

1. महात्मा गाँधी – आत्म कथा पृष्ठ 28 नवजीवन पव्लिसिंग हाउस अहमदाबाद

के अनुकूल वातावरण को बनाते हैं और जिस परिस्थिति या वातावरण में हम रहते हैं उसके अनुकूल हम अपनी इच्छाओं और उद्देश्यों को भी बदलते हैं। ज्ञान का तात्पर्य मानसिक क्रियाओं के कार्यशीलन से भी होता है। ज्ञान दो प्रकार से अर्जित किया जाता है। प्रथम विना शिक्षण के बोध द्वारा तथा दूसरा शिक्षण द्वारा। इस प्रकार ज्ञान बाह्य वस्तुओं के तथा अन्तः प्रज्ञा (इन्टुशन) के पारस्परिक सम्बंध से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार ज्ञान के लिए दोनों का होना आवश्यक है। दोनो प्रकार के ज्ञान का हमारे जीवन में महत्व है।

प्रकृति ने मानव को ज्ञानार्जन हेतु बुद्धि, विचार, स्मरण, कल्पना, ध्यान प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययीकरण आदि शक्तियां प्रदान की है अपने जीवन के व्यवहार की समयानुकूल अच्छी तरह सम्पादित करने के लिए प्राणी ज्ञान का उपयोग करता है। ज्ञान का अर्थ संकुचित नहीं बल्कि व्यापक है। सांस्कृतिक उद्देश्य के अनुसार किसी भौतिक उपयोग के अतिरिक्त ज्ञान धारण करना श्रेष्ठ है।

कार्डिनस न्यू मैन के विचार को उद्धृत करते हुए हैम्पटन ने लिखा है कि :-

" इस प्रकार के ज्ञान की विशेषता स्वतंत्रता समानता, शांति और सुधार एवं बुद्धिमता है। मैंने इसे पूर्व में दार्शनिक प्रवृति के नाम से पुकारा है। "[1]

शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को मानने वाले विद्यार्थी को नयी परिस्थितियों में व्यवहार करने के लिए उसके मस्तिष्क को बौद्धिक कार्यो में लगाकर प्रशिक्षित करने की बात करते हैं, परन्तु यह ध्यान रखना पड़ेगा कि ज्ञान ही मात्र संस्कृति नहीं है। डॉ० राधाकृष्ण ने कहा है कि :-

" वह ज्ञान जो उत्सुकता को शांत करता है वह संस्कृति से भिन्न है, संस्कृति तो व्यक्तित्व को चमकाती है। संसार के नायकों की जन्मतिथि याद करना, अट्लांटिक महासागर को तीव्रगति से पार करने वाले जहाजों के नाम स्मरण करना तथा हाल के महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जानकारी करना संस्कृति नहीं है।"[2]

उन्होने पुनः लिखा है कि :-

" उपलब्ध संस्कृति की तालिका बद्ध सूचनाओं की मात्रा द्वारा ही

1. एच० बी० हैम्पटन : सेलक्शन्स आफ न्यूमेन्स आडिया आफ अ यूनिवर्सटी, बाम्बे लॉग मेन्स्ड पृष्ठ 37
2. डा० राधाकृष्णन एस : फ्रीडम एण्ड कल्चर मद्रास नतेसन पृष्ठ 37

संस्कृति को जांचा नहीं जा सकता, किन्तु जीवन के तथ्यों के प्रति मानसिक गुणों द्वारा ही संस्कृति की पहचान की जा सकती है।''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी शिक्षा शास्त्री चाहे वे किसी भी दार्शनिक सम्प्रदाय के क्यों न हो, ज्ञान को ही अपने शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन माना है।

व्यवहारिक दार्शनिक होने के कारण महात्मा गाँधी जी की संस्कृति के प्रति अवधारणा विशेष रूप से गाँधीवादी है। महात्मा गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रही के लिए ज्ञान प्राप्ति करना अनिवार्य है। ज्ञान हृदय की संस्कृति को बहुत सहयोग देता है। प्रेम व सत्य का ज्ञान एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी है। अज्ञानी द्वारा प्रदर्शित प्रेम शारीरिक वासना है। ज्ञान ही वह साधन है जो प्रेम को इस संकुचित क्षेत्र से बाहर निकाल सकता है। जब मानव अपने भीतर निहित सत्यता की खोज करता है और अन्वेषित सत्य के माध्यम से शेष सृष्टि के साथ अपना अनिवार्य तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तो उसी क्षण उसका प्रेम शारीरिक वासना और तात्कालिक स्वार्थ की सीमा से परे हो जाता है, इस प्रकार सात्विक प्रेम की उपज होती है। अतः व्यक्तियों के चरित्र का उचित मूल्यांकन करने के लिए ज्ञान आवश्यक हो जाता है। एस0 के0 बोस ने कहा है कि :-

'' हमारी इच्छायें व प्रेरणायें दो वर्गो में बंटी है - स्वार्थी और निःस्वार्थी। सभी स्वार्थपूर्ण इच्छायें अनैतिक है। जबकि दूसरों की भलाई के लिए कार्य करने की अपनी इच्छा को बढ़ाना ही वास्तव में नैतिक इच्छा अथवा निःस्वार्थ इच्छा है।''[2]

ज्ञान से व्यक्ति स्वयं का आत्म विश्लेषण करने में भी समर्थ होता है। ज्ञान मानव को जीवन में प्रगति करने का अवसर प्रदान करता है। कोई भी व्यक्ति विना ज्ञान के ईश्वरी सहानुभूति करने में समर्थ नहीं हो सकता। नैतिकता की जानकारी हेतु ज्ञान आवश्यक है। पहले की अपेक्षा और अधिक नैतिक जीवन बनाने के लिए सतत् प्रयत्न करना ही ज्ञान नहीं है बल्कि उस बौद्धिक विकास को बढ़ाना है जिसके माध्यम से हम गलत व सही का निर्णय करने में समर्थ हो जाते हैं। इसी तथ्य को स्टीफेन्स ने इस प्रकार कहा है कि :-

'' एक नैतिक जीवन अच्छा बनने का लगातार प्रयास ही नहीं है, बल्कि उस कार्य क्षेत्र को बढ़ाना है जिसके माध्यम से हम गलत और सही में अंतर कर सकें।''[3]

---

1. तदैव पृष्ठ 23
2. बोस एन0 के0 सेलेक्शन सफ्राम गाँधी, नवजीवन पब्लिसिंग हाउस अहमदाबाद 1948 पृष्ठ 113
3. स्पिंक्स, स्टीफेन्स पॉलटिक्स एण्ड मॉरेलटी विश्वभारती क्वाटरली गाँधी मेमोरियल पीस नम्बर शांति निकेतन 1949 पृष्ठ 205

इस प्रकार नैतिकता का आंतरिक भाव उन्नतिशीलता है न कि स्थिरता। प्रथाओं की नैतिकता स्थिर होती है। वह सामान्य जीवन के मानको का अतिक्रमण नहीं करती है। जब ऐसी स्थिर प्रथाओं का विरोध करके नूतन प्रथा को स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। तब पूर्व प्रथा में विद्रोह हो जाता है और नैतिकता का मापदण्ड तत्कालीन परिस्थिति में समाप्त हो जाता है। महात्मा गाँधी के मस्तिष्क में इस अंतर का पूर्वाभास हो गया था। इसी कारण हिन्दू दर्शन के समान ही वे यह विश्वास करते हैं कि व्यक्ति व समाज दोनों का विकास जीवन के पांच नैतिक गुणों - सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय, निग्रह या आत्म नियंत्रण,अस्तेय और अपरिग्रह पर आधारित है, परन्तु उन्नतिशील नैतिकता के सम्बंध में उन्होने उपर्युक्त पांचों गुणों में प्रत्येक की व्याख्या अपने जीवन दर्शन के अनुसार प्रस्तुत की है जो उनके मौलिक चिंतन व आंतरिक सूझबूझ का द्योतक है।

गाँधी जी के अनुसार सापेक्षित सत्य स्थिर नहीं है वल्कि सत्य का परीक्षण व पुनर्सुधार सदैव होता रहता है। वास्तव में सत्य वह है जो :-

" तुम्हें तुम्हारी आन्तरिक आवाज वताती है।"[1]

इसीलिए

" उनकी सम्मति के अनुसार सत्य का अनुशरण करना किसी भी प्राणी के लिए अहितकर नहीं है।"[2]

गाँधी जी के अनुसार सापेक्षिक सत्य को गम्भीरता से मानते हुए निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। अतः अहिंसा ही उस सत्य की प्राप्ति का मुख्य साधन है। अहिंसा अपने क्रियात्मक रूप में :-

" प्रेम के सिवा कुछ नहीं है, प्रेम अपने पड़ोसियों से अपने मित्रों से ही नहीं बल्कि उनके साथ भी करना चाहिए जो हमारे शत्रु हैं।"[3]

गाँधी जी का विश्वास था कि जो व्यक्ति मनुष्य मात्र की सेवा करने का भाव रखता है या करना चाहता है उसे प्रथमतः स्वैच्छिक विपन्नता को स्वीकार करना पड़ेगा। इनकी विपन्नता त्याज्य है जिसे व्यक्ति प्रसन्नता एवं शांति के सुनहरे दरवाजे के रूप में अंगीकार

---

1. यंग इंडिया 31.12.31 बीकली द नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
2. गाँधी एम0 के0, हिन्दू धर्म,द नवजीवन पब्लिसिंग हाउस अहमदाबाद 1950 पृष्ठ 284
3. तेन्दुलकर डी0 जी0 तथा झवेरी बी0 के0 महात्मा वाल्यूम बम्बई 1951 पृष्ठ 204

करता है। विपन्नता के भाव का यदि और स्पष्ट अर्थ अभिव्यक्त किया जाये तो इसकी अवधारणा अपरिग्रह और अस्तेय से ही है। गाँधी जी उस वस्तु को चोरी समझते हैं जिसका हम अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के अतिरिक्त संग्रह व प्रयोग करते हैं। एण्ड्रयूज ने लिखा है कि गाँधी जी कहते हैं :-

" यदि मैं कोई वस्तु लेता हूं जिसकी मुझे अपने स्वयं की तात्कालिक प्रयोग के लिए आवश्यकता नहीं है और उसका प्रयोग करता हूं तो मैं किसी से वह वस्तु छीनता ही हूं.... यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक ग्रहण न करे तो संसार से विपन्नता समाप्त हो जाये और भूख से कोई भी व्यक्ति इस विश्व में न मरे।"[1]

आत्म नियंत्रण अथवा इन्द्रिय निग्रह के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य अविवाहित जीवन की अपेक्षा और अधिक भाव गरिमा से युक्त है। गाँधी जी ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि :-

" विचार, शब्द या वाणी और कार्य तीनों में यहां तक कि समस्त इन्द्रियों में सभी कालों में तथा सभी स्थानों में नियंत्रण करना ही ब्रह्मचर्य है।"[2]

स्वादेन्द्रिय पर नियंत्रण वास्तव में ब्रह्मचर्य जीवन का साधन है। स्वादेन्द्रिय का पूर्ण नियंत्रण समस्त इन्द्रिय का स्वयं में नियंत्रण है। नैतिक सिद्धांतों के आधार पर ही सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक जीवन की प्रगतिशील पुनर्योजना सम्भव है। अतः शिक्षा का उद्देश्य यही होना चाहिए जिससे सामाजिक बुराई को विद्यार्थी दूर करने में समर्थ हो सके। हम देखते हैं कि यदि आध्यात्मिक स्वतंत्रता शिक्षा का साध्य है तो ज्ञान का इससे बहुत सम्बन्ध है। गाँधी जी ने लिखा है :-

गुजरात विद्यापीठ का आदर्श सूत्र वाक्य है -

" साविद्या याविमुक्तये" इसका अर्थ है कि वही विद्या है जो मुक्ति देती है। वह ज्ञान जो हमें मोक्ष की ओर ले जाये, विद्यालयों में दिया जाने वाला ज्ञान विद्यार्थियों को वह तरीका सिखावें जो उन्हें आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग दिखा सके।"[3]

इस सिद्धांत के आधार पर वड़े में छोटे का समावेश होने का अर्थ ध्वनित होता है। अथवा राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है। गाँधी जी शिक्षा में सांस्कृतिक पक्ष के ऊपर जोर देते हैं। विद्यार्थियों को केवल पढ़ना लिखना ही नहीं है परन्तु सुविचारों को अभिव्यक्त करने हेतु उन्हें कुछ बनना है।

---

1. एण्डूज सी0 एफ0 महात्मा गाँधीज आडियाज एले एण्ड अनविन 1929 पृष्ठ 106
2. यंग इंडिया 5.6.24 वाल्यूम-11 गनेशन मद्रास 1927
3. यंग इंडिया 20.3.30 वीकली नवजीवन प्रेस अहमदाबाद

शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य – आत्मानुभूति का ज्ञान :-

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है। " सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जो मुक्त करती है। गाँधी जी के अनुसार मुक्ति के दो अर्थ हैं। वर्तमान जीवन में सब प्रकार की दासता से स्वतंत्रता, वह दासता आर्थिक, राजनैतिक और मानसिक हो सकती है। जब तक मनुष्य इनमें से किसी भी एक वंधन से वंधा हुआ है तव तक उसकी प्रगति असम्भव है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य सभी प्रकार की दासता के वंधन से मुक्त करना है। दूसरे अर्थ में मुक्ति का अर्थ है आध्यात्मिक स्वतंत्रता। इस आधार पर वड़े में छोटे का समावेश करना है, अर्थात् राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है। अतः शिक्षा संस्थाओं में दिए जाने वाले ज्ञान को आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग दिखाना चाहिए। हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी जी शिक्षा द्वारा सांसारिक बंधनो से आत्मा की मुक्ति चाहते हैं। अतः शिक्षा को चाहिए कि वह व्यक्ति को जीवन में उच्चतर आदर्शो के प्रति प्रेरित करे।

अब हम यह अन्वेषित करने का प्रयास करेंगे कि शिक्षा के समस्त तात्कालिक उद्देश्यों की महात्मा गाँधी जी के अंतिम उद्देश्य में किस प्रकार संगति है। गाँधी जी की मान्यता है कि शिक्षा का उच्चतम उद्देश्य आत्मानुभूति व ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना है अन्य सभी उद्देश्य इसी के अधीन है। मनुष्य का सभी प्रयास इसी उद्देश्य हेतु होना चाहिए। महात्मा गाँधी ने लिखा है कि :-

" आत्म शिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है...... आत्मा के विकास करने का अर्थ है चरित्र गठन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्मज्ञान प्राप्त करना। मैं यह मानता था कि उसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानि कारक भी हो सकता है।"[1]

और पुनः कहते हैं :-

" यह वहम सुना है कि आत्मज्ञान चौथे आश्रम (सन्यास) में मिलता है। पर यह सार्वजनिक अनुभव है कि जो चौथे आश्रम तक इस अमूल्य वस्तु को मुलतवी रखते हैं वे आत्मज्ञान नहीं पाते है बल्कि बुढ़ापा और दूसरा दयाजनक बचपन पाकर "भूमिभारभूता" होकर जीते हैं।"[2]

अपने पुत्र मनीलाल को पत्र में उन्होने लिखा :-

1,2. महात्मा गाँधी : आत्मकथा अनुवादक हनुमान प्रसाद पोद्धार स0मा0मं. नई दिल्ली 1951 दसम् संस्करण पृष्ठ 427

" यदि तुम वास्तविक गुणों को सीखते हो और उन गुणों से अपने जीवन को परिपूर्ण करते हो तो तुमने मेरे शैक्षिक आदर्शो को समझ लिया है। इन गुणों से युक्त होकर तुम विश्व के किसी भी भाग में अपनी जीविका कमा लोगों और ईश्वर के ज्ञान और आत्मानुभव के मार्ग का अनुशरण भी करोगे।"[1]

महात्मा गाँधी जी ने सन्यासी एवं व्रह्मचारी की जीवन शैली को समान माना है इस सम्बंध में यंग इंडिया में लिखा है कि :-

" व्रह्मचारी और सन्यासी का जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से समान है।"[2]

गाँधी जी प्रत्येक विद्यार्थी को बह्मचारी मानते हैं। विद्यार्थियों को अपने जीवन को आत्म संयम की मजबूत नींव पर आधारित कर लेना चाहिए। हमने देखा है कि महात्मा गाँधी जी हृदय की संस्कृति का सम्बंध चरित्र गठन एवं आध्यात्मिक स्वतंत्रता से मानते है। हृदय की विशिष्टिताओं का प्रभाव मस्तिष्क मन तथा हाथ की समस्त क्रियाओं पर पड़ता है। मानसिक कार्य तथा हस्तकार्य दोनों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गाँधी जी की महानता शिक्षा दार्शनिक के रूप में इस बात में है कि विश्व के अन्य विचारकों की भांति वे शिक्षा के किसी भी एक उद्देश्य पर विशेष जोर नहीं देते हैं वे अनेक उद्देश्यों को जीवन के विभिन्न पहलुओं में निष्णात होने के लिए हीप्रस्तुत करते हैं। और उन्हें एक सर्वव्यापी सर्वोच्च उद्देश्य में समाहित कर देते हैं। आत्मानुभव रूपी उद्देश्य सभी तात्कालिक उद्देश्यों को अपने में सम्मिलित कर लेता है और एक पूर्ण रचनात्मक एकता की तस्वीर भी प्रस्तुत करता है। यह उद्देश्य हमारे देश की प्रतिभा, सभी युगों और सभी स्थानों के महान दार्शनिकों की शिक्षा तथा हमारी वंशानुगत संस्कृति के अनुरूप भी है।

एडम्स ने तो यहां तक कहा कि आत्मानुभूति स्वयं में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक आदर्श है और सभी उद्देश्यों को एक दूसरे का पूरक माना है। किसी भी उद्देश्य को अन्य से अलग करके स्वतंत्र रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हम यह देखते है कि बाह्यरूप से सभी विरोधी शिक्षा के आदर्श गाँधी दर्शन में एक हो जाते हैं और आत्मानुभूति के आदर्श में अपनी संगति की अभिव्यक्ति करते हैं। महात्मा गाँधी जी का आत्मानुभव रूपी उद्देश्य काल्पनिक

---

1. पटेल आर0 एम0 : गाँधी जी की साधना (गुजराती) नवजीवन प्रेस पृष्ठ 114
2. यंग इंडिया 29.1.25 अहमदाबाद

नहीं बल्कि व्यावहारिक है।

गाँधी जी मानते है कि शिक्षा को वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं के प्रति आंख नहीं मूँदनी चाहिए। इसलिए अपने बाद के जीवन में वे स्वानुभूति के लक्ष्य पर उतना जोर नहीं देते हैं जितना कि तात्कालिक जीवन की आवश्यताओं की पूर्ति पर देते हैं, वे एक व्यावहारिक दार्शनिक थे। इसलिए उनकी शिक्षा का सम्बंध करोड़ो भारतीय जन मानस के पालन पोषण की समस्या से जुड़ा था। इसलिए मानव के अस्तित्व के लिए उन्होने एक ऐसे समाज की आवश्यकता का अनुभव किया था जहां शांति हो तथा उन्नति करने की अधिक सम्भावना हो। के० एफ० ई० ने लिखा है कि :-

" दूसरे संसार की आत्मा (के विचार ने)............ ब्राह्मणी सम्प्रदाय के ऊपर आधिपत्य जमा लिया था और सामान्य संसार के जीवन से उनके सम्बंधों को काट दिया था और उन्हें सामान्य संस्कृति तथा उन्नति के मार्ग पर भारतीयों को प्रेरित करने के अयोग्य वना दिया था।"[1]

ऐसी परिस्थिति ने महात्मा गाँधी को जीवन के प्रत्येक पहलू को विकसित करने पर बल प्रदान करने के लिए वाध्य किया। महात्मा गाँधी जी ने संसार त्यागने की बात नहीं की है, बल्कि सांसारिक कार्यो को करते हुए आत्मानुभूति की और बढ़ाने की बात की है। उनका विचार है कि यदि आत्मानुभूति के आदर्श को समक्ष रखकर जीवन के समस्त कार्यो को किया जाये तो यह संसार हमारे रहने के लिए उत्तम स्थान हो जायेगा तथा समस्त मतभेद व संघर्ष जो आज समाज की एकता को भंग करने में लगे हैं उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। और स्वर्ग व रामराज्य की कल्पना साकार हो जायेगी। महात्मा गाँधी जी चाहते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया को विस्तृत एवं वास्तविक भाव में ग्रहण किया जाये। महात्मा गाँधी के अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति का लक्ष्य मानव जाति को उच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति हेतु ऊपर उठाना है, जिसे प्राप्त कर वे सदैव आनंद का अनुभव कर सकेंगे। गाँधी जी की यह स्पष्ट अवधारणा थी कि आधुनिक विश्व के लिए आवश्यक बात यह है कि व्यक्ति जीवन मूल्यों तथा जीवन के तरीकों को सीखे और धारण करे। ऐसा करने से ही वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति एवं नये समाज का निर्माण हो सकेगा। सत्याग्रही व्यक्ति ही वह ईट है जिसके सहयोग से नये अहिंसक समाज की रचना हो सकती है। महात्मा गाँधी आत्म विहीन व्यतित्व की रचना व विकास में विश्वास नहीं करते है वल्कि प्रेम अहिंसा

1. के० एफ० ई०: इण्डियन एजूकेशन इन एन्सियन्ट एण्ड लेटर टाइम्स आक्सफोड आक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस पृष्ठ 184-185

व सत्य से युक्त मानव निर्माण की आंकाक्षा करते हैं। इसके लिए वे एक व्यावहारिक कार्य योजना को भी प्रस्तुत करते हैं। वे व्यावहारिक स्वप्न दृष्टा थे और अपने विचारों को कार्यरूप देना जानते थे। उन्होने स्वयं स्वीकार किया है :-

" मैं स्वप्न दृष्टा हूं, वास्तव में मैं व्यावहारिक स्वप्न दृष्टा हूं, मैं अपने स्वप्न को वास्तविकता में यथा सम्भव परिवर्तित करना चाहता हूं। "[1]

आत्मानुभूति हेतु स्वयं की पवित्रता आवश्यक है। इसलिए सत्याग्रही की प्रथम आवश्यकता नैतिक अनुशासन को धारण करना है। सत्य के अन्वेषक को अहिंसा की भावना से अनुशासित होना पडेगा। अहिंसा सत्य का साधन है इसलिए सत्यानुभव हेतु शिक्षा को अहिंसक भावना के विकास के लिए ही अनुदेशित किया जाना चाहिए। अहिंसा एक मानसिक अथवा बौद्धिक दृष्टिकोण नहीं है बल्कि यह हृदय और आत्मा का गुण है क्योंकि गाँधी जी के अनुसार :-

" ईश्वर से अलग करके अच्छाई को सोचना एक निर्जीव वस्तु की कल्पना करना होगा..... इसलिए सभी अच्छाईयां नैतिक है, यदि अच्छाईयों व गुणों का वास हमारे भीतर माना जाता है तो उन्हें ईश्वर से सम्बंधित करके ही सोचा जाये और उत्पन्न किया जाये।"[2]

गाँधी जी जीवन के लिए नैतिकता को बहुत महत्व देते हैं। व्यक्ति और समाज दोनो की उन्नति इसी पर आधारित है प्रेम नैतिकता का सार है। जिससे व्यक्ति ईश्वर के सन्निकट पहुंचता है। प्रेम स्वतंत्रता पैदा करता है, प्रेम के कारण ही स्वतंत्रता का दुरूपयोग नहीं होता है। समस्त प्राणियों के प्रति प्रकट किए गए अपने कर्म, प्रेम ही होते हैं। इस प्रकार मानव में प्रेम ईश्वरीय नियम या स्वयं ईश्वर ही होता है। अतः नैतिकता ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग या साधन व सार है।

महात्मा गाँधी जी हृदय की संस्कृति, चरित्र निर्माण को मस्तिष्क की संस्कृति अथवा बौद्धिक प्रशिक्षण से ज्यादा महत्व देते हैं। वे बौद्धिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शक्ति पर विशेष जोर देते हैं। बौद्धिक शक्ति को आत्मिक शक्ति के आधीन होना चाहिए। अन्यथा बौद्धिकता विनाशकारी हो सकती है। हमने देखा है कि चरित्र निर्माण करना गाँधी जी की शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

आत्मिक शक्ति तो ईश्वर कृपा से मिलती है परन्तु वासनाओं के दास

---

1. हरिजन - 19.11.33
2. हरिजन 24.8.47

के ऊपर ईश्वरीय कृपा कभी नहीं बरसती है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता हेतु वासना एवं ''स्व'' को नियंत्रण में रखना जरूरी है और हृदय की पवित्रता के लिए मन, वचन, तथा कर्म तीनों में पवित्र होना आवश्यक है। महात्मा गाँधी जी के अनुसार - ''हस्तकला केन्द्रित शिक्षा'' जो कर्म के दर्शन पर आधारित है, चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण कारक है, क्योंकि कर्म में मन, बुद्धि व शारीरिक अवयवों का सामन्जस्य होता है। प्रेम व सहयोग की भावना स्वयं कर्म में निहित है। अतः विद्यार्थियों को कार्य की प्रतिष्ठा से सत्य, अहिंसा व प्रेम की वास्तविक शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। एक सत्यवादी जीवन की समस्त समस्याओं का निर्भीकता से सामना करता है। जो कार्य से प्रेम करता है वह कर्मशील होता है। महादेव देसाई ने लिखा है कि :-

'' निर्भीक एवं सत्यवादी बालक किसी भी विषम परिस्थिति में घबड़ाता नहीं है बल्कि उसका सामना करता है..... वह अपने विद्यालय के सभी कमजोर छात्रों की रक्षा तथा जो उसकी सहायता चाहते हैं उन छात्रों की विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर समस्त क्षेत्रों में उसकी सहायता भी करता है।''[1]

महात्मा गाँधी जी ने स्वयं इस पवित्रता व निर्भीकता के भाव को अपने विद्यार्थियों में उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। इसीलिए वे चाहते हैं कि अध्यापकों एवं प्रोफेसरों को अन्य कक्षा विषयों की भांति अपने छात्रों को शिष्टाचार की भी शिक्षा देनी चाहिए। महात्मा गाँधी जी विद्यालयों को चरित्र निर्माण की फैक्ट्री ही नहीं वनाना चाहते हैं वल्कि वे विद्यालयों से यह आशा करते है कि वे विद्यार्थियों को एक अच्छे पुरूष व स्त्री के रूप में परिवर्तित करने का कार्य करेंगे। अध्यापकों को अपने प्रभाव से उन्हें इस दिशा में प्रेरित करना चाहिए। आत्मानुभूति हेतु चरित्र आवश्यक है। गाँधी जी के अनुसार आत्मानुभूति का लक्ष्य समाज सेवा व आत्मत्याग से ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्तिगत मोक्ष व आत्मानुभूति का तरीका आत्म त्याग और वलिदान का ही तरीका है। उन्होने अपने उद्देश्यों, प्रयोगों व उपदेशों द्वारा विश्व को यह दिखा दिया था कि समाज सेवा व आत्मानुभूति के उद्देश्य में कोई संघर्ष नहीं है। यही जीवन व शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रकार गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित समस्त उद्देश्यों को उनके अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति में समाहित किया जाना असम्भव नहीं है बल्कि अन्य समस्त उद्देश्यों की पूर्ण संगति की अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी के उपर्युक्त शैक्षिक उद्देश्यों को मुख्य रूप से हस्त, मस्तिष्क और हृदय की संस्कृति के उद्देश्य आत्मानुभूति व सामाजिक तथा

---

1. देसाई महादेव : विथ गाँधी जी इन सीलोन गनेशन मद्रास 1928 पृष्ठ 109

अहिंसक लोकतांत्रित समाज की स्थापना के उद्देश्यों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. हस्त संस्कृति।

2. मस्तिष्क की संस्कृति।

3. सर्वांगीण व सामन्जस्य पूर्ण विकास।

4. शारीरिक विकास का उद्देश्य।

5. नैतिकता, चारित्रिक व हृदय की संस्कृति के विकास का उद्देश्य।

6. वैयक्तिकता एवं सामाजिकता के विकास का उद्देश्य।

7. लोकतंत्रीय समाज की स्थापना व नागरिकता के गुणों के विकास का उद्देश्य।

8. आत्मानुभूति अथवा मुक्ति का उद्देश्य।

यदि सामाजिक जीवन को प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुसार संगठित किया जाना है तो उसकी आधार शिला शारीरिक श्रम तथा उत्पादक कार्यो पर डालनी पड़ेगी। अन्यथा वह समाज सच्चे रूप में लोकतंत्रीय नहीं हो सकता। राजनैतिक दृष्टि से ऐसे समाजोपयोगी नागरिकों की आवश्यकता है जो अपने दायित्वों को सफलता पूर्वक निभा सकें अथवा सहयोगी कार्यो में भाग लेकर समाज की उन्नति के लिए कार्य कर सकें, बेसिक शिक्षा लोकतंत्रीयं समाज की स्थापना में बहुत सहायक है, क्योंकि यह शिक्षा श्रम व उत्पादन कार्यो पर आधारित है। बेसिक शिक्षा आठ वर्ष की अनिवार्य शिक्षा द्वारा बालको को समस्त मूलभूत योग्यताओं कुशलताओं के तथा दृष्टिकोणों को जो एक लोकतंत्रीय समाज की स्थापना के लिए अनिवार्य है को सुसज्जित करती है। विद्यालय सामाजिक रूप से लाभप्रद क्रियाओं को प्रदान करता है। लोक तंत्रीय शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है। इसलिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उनमें नागरिकता के गुणों का विकास करें, बेसिक शिक्षा में इस तथ्य की ओर पूरा पूरा ध्यान दिया गया है। जाकिर हुसैन समिति ने लिखा है :-

" आधुनिक भारत में नागरिकता देश के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में विस्तार से लोकतंत्रीय होती है......नई पीढ़ी को अपनी समस्याओं, अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझना चाहिए।"

शिक्षा के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य :-

गत पृष्ठों में हमने महात्मा गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत किए गए तात्कालिक एवं अंतिम या सर्वोच्च उद्देश्यों के सम्बंध में सुविस्तार व्याख्या की है। अब हमें यह खोजना है कि महात्मागाँधी जी के शिक्षा के उद्देश्य सामाजिक है या वैयक्तिक अथवा दोनो में कोई संगति है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है विना समाज के व्यक्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। व्यक्ति समाज में हीउत्पन्न , पुष्पित, पल्लवित होता है। और इसी में उसके जीवन का अंत भी हो जाता है। मनुष्य की समस्त क्रियायें सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में हीसम्पन्न होती हैं। इसलिए शिक्षा का एक उद्देश्य समाज की प्रगति, विकास और उसके सदस्यों के कल्याण की भावना का विकास करना भी है। शिक्षा के इस उद्देश्य के कारण वैयक्तिक विकास के एक पक्षीय उद्देश्य की कमियां दूर हो जाती है। शिक्षा व्यक्ति का विकास इस प्रकार करे ताकि वह समाज पर भार स्वरूप न होकर उसका उपयोगी एवं कमाऊ सदस्य हो सके।

समाज की कल्पना से राजनैतिक अस्तित्व की उपज होती है। इसलिए समाज एक राज्य के रूप में माना जाता है। राज्य के संदर्भ में समाज के सदस्य नागरिक कहलाते हैं। जनतंत्रवादी राष्ट्र में शिक्षा को सामाजिक कुशलता या दक्षता के विकास का साधन माना जाता है। ऐसे राज्य में व्यक्ति अपनी आर्थिक क्षमता को बढ़ाकर योग्यतानुसार राष्ट्र के कार्यो में भाग लेता है और अन्य के अधिकारों को भी दृष्टि में रखता है। इस प्रकार उनमें सामाजिक नैतिकता का प्रादुर्भाव होता है। सामाजिक नैतिकता का अर्थ है समाज के उन्नयन हेतु अपनी इच्छाओं को उत्सर्ग कर समाज सेवा के लिए सदैव तैयार रहना।

कुछ लोग शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य की अपेक्षा वैयक्तिक उद्देश्य पर विशेष जोर देते हैं। इनके अनुसार सामाजिक संस्थाओं का लक्ष्य एवं उनका अस्तित्व व्यक्ति के जीवन को उन्नतिशील एवं खुशहाल बनाने के लिए ही है। राज्य का कार्य है कि विद्यालयों में ऐसे प्रयोग व व्यवसाय प्रारंभ करें ताकि समाज के व्यक्तियों का उत्थान हो। सर पर्सीनन शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के प्रबल समर्थक थे। नन ने यद्यपि सामाजिक उद्देश्य की अपेक्षा वैयक्तिक पर बहुत बल दिया है। किन्तु वैयक्तिकता के अतिवादी रूप के समर्थक नहीं थे। उन्होने लिखा :-

" वैयक्तिकता जीवन का आदर्श है" और प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था को "व्यक्ति की उच्चतम श्रेष्ठता" प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक पुरुष एवं स्त्री की स्वतंत्र क्रियाओं द्वारा ही मानव जगत में अच्छाई फैलती है।"[1]

यूकेन का विचार है कि :-

" हमारे जीवन का मुख्य आन्दोलन, बुद्धिमान मानव वनाने, व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने तथा आध्यात्मिक वैयक्तिकता के विकास में विजय प्राप्त करने के लिए होना चाहिए।"[2]

अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का उन्नयन करना है ।

अब हमें महात्मा गाँधी जी के विचारों का इस संदर्भ में अध्ययन करना है और यह देखना है कि उनका किस ओर झुकाव है। उनके लेखों, कृतियों एवं भाषणों के संग्रह के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उन्होने अलग अलग समय व स्थान पर सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य रूपी आदर्श का समर्थन किया है। इस कारण उनके कथनों में तारतम्य का अभाव व विरोध पाया जाता है, परन्तु उनके विरोधी कथनों के पीछे शाश्वत एकता होने के कारण विरोध ाभास समाप्त हो जाता है।

महात्मा गाँधी जी कहने में संकोच नहीं करते हैं कि :-

" व्यक्ति एक सर्वोच्च विचारणीय प्राणी है।"[3]

और एन0 के0 बोस ने गाँधी जी के विचारों के सम्वंध में लिखा है कि :-

" भय के कारण राज्य की शक्ति में वृद्धि होती है, जिसे मैं (गाँधी जी) अच्छा नहीं समझता हूं। यद्यपि शोषण को बाह्यरूप से कम करते हुए राज्य मानव की भलाई के लिए कार्य करता है किन्तु जिस वैयक्तिकता के मूल में समस्त समाज उन्नति निहित है उसका विनाश करके वह मानव जाति की बहुत बड़ी हानि भी करता है। "[4]

इसमें संदेह नहीं है कि महात्मा गाँधी वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना

---

1. नन सर टीपर्सी : एजूकेशन इट्स डाटा एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपुल्स लन्दन एडवर्ड आर्नोल्ड पृष्ठ 4
2. यूकेन रूडाल्फ लाइफस बेसिस एण्ड लाइफस आइडियल लंदन 1911 पृष्ठ 371
3. यंग इंडिया, 13.11.24 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
4. बोस एन0 के0 सलेक्शन्स फ्राम गाँधी, नवजीवन प्रेस अहमदाबाद पृष्ठ 27

चाहते हैं क्योंकि भौतिक व आध्यात्मिक विकास के लिए वे इसकी सुरक्षा आवश्यक मानते हैं। समस्त मानव को मूक पशु की भांति एक ही दिशा में ले चलना व्यर्थ हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं की चारित्रिक विशेषता होती है। स्वभाव, प्रकृति, योग्यता में कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं पाये जाते हैं इसलिए वे जाति, रंग, नस्ल का ध्यान दिए बिना प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा वैयक्तिकता का आदर करते हैं। गाँधी जी विभिन्नता में एकता के हामी थे। उनके विचार से समाज वह है जहां सभी को अपने व्यक्तिगत चरित्र की हानि पहुंचाये बिना सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई के लिए अपनी भूमिका निभानी पड़ती है।

महात्मा गाँधी जी एकता के लक्ष्य के लिए हिंसा को साधन बनाने के पक्षधर नहीं है। अहिंसा और सत्य के पुजारी होने के नाते हिंसा को न तो वैयक्तिकता के विकास और न तो सामाजिक विकास में साधन के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं। उन्होने कहा है कि :-

" यह बहुत दुख की बात होगी यदि भारत हिंसा से नये समाज की रचना करने का प्रयास करेगा। हिंसा से भलाई लाने का प्रयास वैयक्तिकता का विनाश है जब अहिंसा, प्रेम, असहयोग की शक्ति से परिवर्तन लाया जायेगा तभी वैयक्तिकता के आधार की सुरक्षा तथा सच्ची जगत की उन्नति को निश्चितता प्रदान की जा सकती है।"[1]

महात्मा गाँधी जी का विश्वास है कि यदि व्यक्ति का उचित विकास किया जाता है तो समाज का जिसका वह सदस्य होता है स्वयं विकास हो जायेगा। उन्होने कहा है :-

" मैं अनुभव करता हूं कि यदि मैं व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सफल हुआ तो समाज स्वयं अपनी देखरेख कर लेगा।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वे समाज में व्यक्ति के स्थान को कितना महत्व देते हैं महात्मा गाँधी जी राज्य की भलाई में विश्वास करते हैं वे राज्य व समाज में भेद नहीं मानते हैं। राज्य भी उनकी दृष्टि में एक सामाजिक संगठन है इसलिए सामाजिक सेवा को शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा मानते हैं। विद्यार्थियों से वे कहते हैं:-

" विद्यालय में अपनी शिक्षा को जारी रखते हुए तुम्हें मेरे द्वारा दिखाये गये सेवा के आदर्श को अपने सामने रखना चाहिए, पैसा कमाने वाले आदर्श को कभी नहीं रखना चाहिए।"[3]

1. हरिजन - 9.3.47

2. वाशवर्न कार्ल्टन : रेमार्किस ऑफ मेन काइण्ड 1932 पृष्ठ 104-105

3. हरिजन , 10.3.46 अहमदाबाद

इस प्रकार शिक्षा का यह भी उद्देश्य होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों में त्याग व सेवा का भाव उत्पन्न कर सकें, यदि ऐसा नहीं करती है तो शिक्षा की कोई उपादेयता नहीं है। वृन्दावन के महाविद्यालय के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए उन्होने कहा है :-

" यदि तुम्हारी शिक्षा जीवन्त वस्तु है तो उसकी महक तुम्हारे चारों ओर के वातावरण में फैलनी चाहिए। ..... तुम्हारा सेवा कार्य व्यावहारिक रूप में होना चाहिए। डलिया, झाड़ू और फावड़ा लेने के लिए तुम्हें तैयार रहना चाहिए।... तुम्हारी शिक्षा का सबसे वढ़िया अंश यही होगा।"[1]

वे समस्त मानव राज्य को परिवार समझते थे, इसलिए उनमें सभी की सेवा करने का भाव था। उनका आदर्श किसी को भी विदेशी नहीं लगता है। मानवता की सेवा उनके लिए ईश्वर सेवा है। इसलिए उनके उच्च आदर्श में समाज सेवा का भाव ही निहित है। महात्मा गाँधी ने स्वीकार किया है :-

" मैं भारत का एक तुच्छ सेवक हूं और भारत की सेवा करने का प्रयत्न कर रहा हूं, मैंने अपने बचपन के दिनों में ही खोज लिया था कि भारत की सेवा मानवता की सेवा की विरोधी नहीं है।"[2]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि महात्मा गाँधी ने दो विरोधी आदर्श सामाजिक उद्देश्य व वैयक्तिक को समय समय पर अभिव्यक्त किया है तो प्रश्न होता है कि उन्होने शिक्षा में इन दोनों उद्देश्यों की संगति किस प्रकार की है ? वास्तविक तथ्य यह है कि महात्मा गाँधी जी ने दोनों विचारों के अतिवादी रूप से बचकर मध्यवर्ती मार्ग को अपनाया है। उन्होने इन दोनो उद्देश्यों में संतुलन स्थापित किया है। सामाजिक सेवा के उद्देश्य व वैयक्तिकता के विकास के उद्देश्य को अलग अलग विश्लेषित करते हुए उन्हें संश्लेषित भी किया है।

उन्होने स्वयं स्वीकार किया है :-

" मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देता हूं परन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी वर्तमान स्थिति से, सामाजिक उन्नति की आवश्यकताओं से अपने व्यक्तित्व के समायोजन की क्रिया को सीखकर ही ऊपर उठा है। अप्रतिबंधित वैयक्तिकता तो जंगली जानवरों का नियम है। मैंने वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक

1. हरिजन 14.11.29 अहमदाबाद
2. हरजिन 17.11.33 अहमदाबाद

प्रतिबंध का औसत निकालना सीख लिया है पूरे समाज के कल्याण के लिए अपनी स्वयं की इच्छा से सामाजिक प्रतिबंध के अधीन होने से व्यक्ति तथा उस समाज का जिसका वह सदस्य होता है दोनों को लाभ मिलता है।''[1]

महात्मा गाँधी जी की वैयक्तिक व सामाजिक विकास में गहरी रूचि है इसलिए दोनो की अन्योन्याश्रितता में विश्वास रखते हैं।

उनका कथन है :-

'' मैं विश्वास करता हूं कि यदि एक मनुष्य आध्यात्मिक विकास से लाभान्वित होता है तो पूरा जगत उसके साथ इससे लाभान्वित हो जाता है। और यदि कोई व्यक्ति पतित होता है तो सारा संसार उसी सीमा तक पतित हो जाता है।''[2]

महात्मा गाँधी जी की दृष्टि में वैयक्तिक विकास और सामाजिक उन्नति उसी सीमा तक अन्योन्याश्रित है जब तक वे एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि :-

'' एक राष्ट्र बिना व्यक्तियों के सहयोग के उन्नति नहीं कर सकता, जिनसे राष्ट्र का निर्माण होता है और कोई व्यक्ति भी बिना राष्ट्र के उन्नति नहीं कर सकता।''[3]

इस प्रकार महात्मा गाँधी के अनुसार एक आध्यात्मिक समाज में व्यक्ति को अपनी पूर्णता के लिए प्रयास करना चाहिए। इनकी सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक शोषण एवं आर्थिक शक्ति के केन्द्रीभूत होने की भावना का अभाव पाया जाता है। आचार्य कृपलानी के शब्दों में :-

'' अनियमित पूंजीवादी व्यवस्था, आत्मावादी वैयक्तिकता के विकास तथा अभिशप्त साम्यवादी राष्ट्र की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करने से बचाने के लिए ही गाँधी जी विकेन्द्रीकृत कृषि और व्यवसाय के आर्थिक सामाजिक ढांचे के निर्माण हेतु महत्व प्रतिपादित करते हैं।''[4]

महात्मा गाँधी जी का विश्वास है कि वैयक्तिकता का विकास सामाजिक परिवेश में ही हो सकता है, क्योंकि मनुष्य का स्वभाव आत्म सम्मान की भांति सामाजिक ही है। समाज से व्यक्ति व व्यक्ति से समाज को अलग नहीं किया जा सकता है। प्राचीन काल

---

1. हरिजन 27.5.39 अहमदाबाद
2. यंग इंडिया 4.12.24 अहमदाबाद
3. यंग इंडिया 26.3.31 अहमदाबाद
4. आचार्य कृपलानी जे0बी0 द लेटेस्ट फैड सेवाग्राम हिन्दुस्तान तालिमी संघ पृष्ठ 84

में दोनो का साथ साथ विकास होता था और दोनो आपस में संयुक्त थे। कृपलानी के अनुसार :-

" व्यक्ति व समाज की हानि पर ही इनके आपसी सम्वंधों की उपेक्षा की जा सकती है। किसी एक पर अधिक बल देना दूसरे को हानि पहुँचाना है। किसी एक पर जोर संतुलन को नष्ट करता है, क्योंकि यही संतुलन सभ्यता की शाश्वत आवश्यकता है। विश्व की अधिकांश परेशानी इसी असंतुलन के कारण है। एक ओर व्यक्ति अपने उपद्रवी प्रवृति के कारण समाज में भ्रम पैदा करता है तो दूसरी ओर समाज व्यक्ति को इतना दबा देता है कि उसके संस्कार व व्यक्तित्व दोनो ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार वैयक्तिकता के पूर्व पक्ष एवं समाज के अपर पक्ष के विपरीतार्थ के मध्य मानवता इधर उधर हिलने लगती है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी जी अपने जीवन दर्शन व शिक्षा में समाज व व्यक्ति के बीच उचित संतुलन संयोजन व उसकी संगति करने में पूर्ण सफल हुये हैं। शिक्षा व्यक्ति का विकास करती है और व्यक्ति की वैयक्तिकता का विकास समूह अथवा समाज में ही होता है। व्यक्तित्व के विकास का कार्य विद्यालय का है। विद्यालय स्वयं सामाजिक प्राणियों का समूह होता है औरसमाज के लघु रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। जॉन डिवी ने भी विद्यालय को समाज का लघु रूप ही माना है। महात्मा गाँधी जी की त्याग की भावना स्वयं समाज सेवा के आदर्श को प्रस्तुत करती है। समाज सेवा ही आत्मानुभूति है। महात्मा गाँधी जी ने विश्व को यह अनुभव करा दिया है कि समाज सेवा व आत्मानुभूति के उद्देश्यों में कोई संघर्ष नहीं है। महात्मा गाँधी जी ने कहा है :-

" मनुष्य का अन्तिम व सर्वोच्च उद्देश्य ईश्वरानुभूति करना है। व्यक्ति की समस्त क्रियायें सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक ईश्वर दर्शन के अंतिम उद्देश्य के लिए ही निर्देशित होनी चाहिए। सभी मानवों की तात्कालिक सेवा करना हमारे प्रयत्न का अनिवार्य भाग होना चाहिए, क्योंकि ईश्वर के पाने का एक मात्र तरीका उसे उसकी सृष्टि में देखना है और उससे एकाकार होना है..... मैं तो सम्पूर्ण का एक अंश व टुकड़ा हूं और मैं शेष मानवता से अलग होकर उसे नहीं प्राप्त कर सकता।"[2]

महात्मा गाँधी का आत्मानुभूति हेतु सेवा व त्याग का आदर्श शिक्षा में आधुनिक प्रवृतियों का विरोधी नहीं है, क्योंकि आत्मानुभूति और आत्म त्याग में हमें चुनाव नहीं

---

1. आचार्य कृपलानी जे. बी. द लेटेस्ट फेड सेवाग्राम हिन्दस्तानी तालिमी संघ पृष्ठ 77
2. हरिजन 29.8.36

करना है और न तो विकल्प के रूप में व्यवहार करना है। राज्य का विशिष्ट गुण है राज्य का विकास अपने अंदर श्रेष्ठता का अनुभव करने वाले व्यक्ति द्वारा ही होता है। राज्य का प्रतिबन्ध व्यक्ति के विकास के लिए एक आवश्यक साधन है। हम व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं सोच सकते क्योंकि सामाजिक बंधन मानव की प्रकृति में निहित है। सबसे अधिक मौलिक व्यक्तित्व अबौद्धिक रूप से ही सामाजिक परिवेश से अलग होता है, क्योंकि मन वाला व्यक्ति मानसिक रूप से सामाजिक ही होता है।

(ख) विनोबा जी की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप :-

शिक्षा का अर्थ :-

विनोबा जी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य है कि जो मनुष्य को समाज की जाति पांति, छूआछूत, भेदभाव सम्बंधी कुरीतियों से ऊपर उठकर उनमें पूर्ण समाज के कल्याण की प्रवृत्तियां विकसित करें विनोबा जी की शिक्षा का आधार सर्वोदय दर्शन पर आधारित है। सर्वोदय शब्द सर्व उदय को संयुक्त करके बनाया गया है। सर्व का तात्पर्य पूर्ण समाज से और उदय का अर्थ यहां पर सामाजिक और आर्थिक उन्नति से है। सर्वोदय दर्शन समाज में सभी के लिए अवसर एवं समानता की उपलब्धि पर आधारित है। विनोबा जी की शिक्षा स्वयं के अनुभवों पर आधारित है। उनके अनुसार संसार में मानव जीवन एक अनवरत् यात्रा के समान है और इस यात्रा में उपलब्ध सुविधाओं के उपयोग का प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से अधिकारी है।

इस प्रकार विनोबा जी की शिक्षा में सर्वोदय द्वारा एक ऐसे समाज की कल्पना की गई है जो जांत पात, छूआछूत, भेदभाव की विचारधारा से अलग हो जिसका प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से प्रेम भाव रखे और विश्ववन्धुत्व स्थापित करने में योगदान कर सकें। विनोबा जी के शिक्षा सम्बंधी सभी विचार मुख्यतः सर्वोदयी सिद्धांतों पर आधारित है। उनके अनुसार छात्रों को जिज्ञासु बुद्धि, आत्म विश्वासी कर्तव्य परायण एवं विनम्र होना चाहिए।

विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा का व्यक्ति एवं समाज दोनों के प्रति दायित्व है। व्यक्ति के प्रति दायित्व में इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना तथा समाज के प्रति दायित्व में समाज ही नहीं वरन् देश व विश्व को निर्भय एवं सुरक्षित बनाना है। एक अहिंसात्मक समाज में शिक्षा सुरक्षा का साधन होती है अतः हमारा प्रमुख दायित्व एक ऐसी शिक्षा पद्धति की खोज करना है जो समाज में प्रेमभाव और शांति स्थापित करने में सहायक हो। आज की प्रशासन व्यवस्था के सम्बंध में उन्होने यह भावना व्यक्त की है कि उन्नत राष्ट्र के प्रशासन में शिक्षा और सुरक्षा के लिए दो अलग विभाग न होकर एक ही विभाग होना चाहिए।

विनोबा भावे के अनुसार वास्तविक शिक्षा प्रकृति की गोद में किसी ऐसे वातावरण में ही सम्भव है। जहाँ के प्राकृतिक दृश्य स्वच्छ एवं शीतल वायु प्रफुल्लित एवं हरित वनस्पतियां, सूरज, चांद,तारे, आकाश आदि सभी मनुष्य को स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

विनोबा जी के अनुसार किसी वस्तु अथवा विषय की जानकारी के लिए केवल पुस्तक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है पुस्तक ज्ञान की तुलना उन्होने एक ऐसे आवरण से की है जो विषय वस्तु का एक रेखाचित्र प्रस्तुत करता है लकिन बिना कार्य अथवा अभ्यास के प्राप्त ज्ञान अपूर्ण रहता है। वास्तविक शिक्षा की प्राप्ति के लिए दोनो को संयुक्त करना समीचीन है।

आजकल के विद्यार्थियों में केवल बौद्धिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता है। बालक का शारीरिक विकास कुछ दिन पहले तक उपेक्षित था। अब राष्ट्रीय सेवा योजना एवं एन. सी. सी. आदि द्वारा बालकों के शारीरिक विकास की ओर ध्यान दिया जाने लगा। व्यक्ति का सामाजिक नैतिक एवं बौद्धिक विकास भी आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के किसी एक अंग का विकास न होकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। विद्यालयों में रचनात्मक कार्य करने के भी अवसर प्रदान करने चाहिए।

साधारणतया वैयक्तिकता को निजी विशेषताओं के अर्थ में समझा जाता है और ठीक भी है अतः इसे निजत्व का विकास भी कह सकते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उनके स्वयं के अनुभवों पर आधारित है। विनोबा जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार अनुभवों से भरे और अधिक पूर्ण है। विनोवा भावे का विश्वास है कि कोई व्यक्ति प्रकृति से जितना ही दूर रहता है वह उतना ही असंतोष और चिन्ताओं से युक्त रहता है। जीवन में शांति के लिए प्रकृति से निकट सम्पर्क रखना नितांत आवश्यक है। शांतिमय जीवन का स्तर जीवन यापन के ढंग व प्राकृतिक नियमों के सामन्जस्य के स्तर के अनुसार निर्धारित होता है। विनोबा जी ने अपने शिक्षा के उद्देश्य में मनुष्यों की तुलना वनस्पतियों से की है। जिस प्रकार वनस्पतियाँ भूमि से अलग होकर स्वस्थ व हरित नही रह सकती उसी प्रकार व्यक्ति भी प्राकृतिक वातावरण से विलग होकर संतुष्ट और प्रसन्न नही रह सकता है। विनोवा जी के कुछ उद्देश्य निम्न है जो कि इस प्रकार है :-

1. सत्यमनुष्यत्व बनाना :-

संत जी के अनुसार कभी कभी सत्य की व्याख्या की जाती है। सत्य की व्याख्या भी सत्य की कसौटी पर कसी जायेंगी। वास्तव में सत्य की कोई व्याख्या ही नही हो सकती। सत्य स्वयं स्पष्ट है इतना स्पष्ट कि दूसरा कोई तत्व दुनिया में नही है।

विनोबा के प्रेरक प्रसंग - जमना लाल जैन

सत्य यानि सत्य ही है। संस्कृत में सत्य का अर्थ नैतिक सत्य करते हैं। किसी भी चीज की व्याख्या करनी हो तो सत्य ही उसका आधार है। सत्य में संतुलन हैं जहाँ चित्त का इधर उधर झुकाव नहीं होता। सत्य में समर्थन है, समाधान है अन्तः समाधान है जहां समत्वयुक्त निर्णय होता है वहाँ सत्य है सत्य के लिए समत्व आवश्यक है। अपने उद्देश्य में सत्य मनुष्य बनाना भी इनका महत्वपूर्ण उद्देश्य था। मनुष्यों में सत्यवृत्ति कैसे उत्पन्न की जाये जिससे कि इस दुनिया में लोग वास्तविकता को धारण करें। सत्य सबसे श्रेष्ठ नीति धर्म है आत्म प्राप्ति के लिए सत्य अत्यंत महत्व की वस्तु है सत्य का अर्थ केवल वाणी का सत्य नहीं मनसा वाचा कर्मणा सत्य है। मनुष्य का जीवन सत्य पर खड़ा रहेगा, तभी उसे आत्मा का दर्शन होगा। परमेश्वर तक पहुँचने का मार्ग सत्य से ही बना हुआ है।

2. ज्ञान का विकास :-

ज्ञान का अर्थ है आत्मज्ञान, जो बुद्धिगत है। वह जब देहेन्द्रियों में उतरता है और जीवन में समाहित हो जाता है तो विज्ञान बन जाता है। विज्ञान का अर्थ है प्रतिनिष्ठत ज्ञान। ज्ञान को विज्ञान का रूप देने में पग पग पर विवेक जागृत रखना आवश्यक है। सत्य और मिथ्या के बीच के अंतर का ज्ञान ही मूलभूत विवेक है। धर्म और अधर्म को परखना नैतिक विवेक है। स्वधर्म और परधर्म का अंतर समझना कर्तव्य विवेक है। इस प्रकार अगर पूर्ण ज्ञान जागृत न हो तो ज्ञानरूप जीना संभव नहीं होगा जब तक ज्ञान आचरण में नही उतरता तब तक उसे विज्ञान का रूप नहीं मिलता वह शाब्दिक या बौद्धिक ही रह जाता है। ज्ञान की सहायता से ज्ञान विज्ञान बनता है इसलिए विज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञान का विकास ही होता है जो कि विद्यार्थियों में उत्पन्न करना चाहिए।

3. सत्यनिष्ठा का विकास :-

भावे जी के मतानुसार हमें अपने विद्यालयों में सत्य निष्ठा निर्माण करने पर सर्वाधिक बल देना चाहिए। छात्र/छात्राओं पर हमेशा विश्वास करना चाहिए। विद्यार्थी जो भी कहता है सही है ऐसा समझकर चलना चाहिए। जो सत्यनिष्ठ होता है वह दूसरों पर हमेशा विश्वास रखता है।सत्याचरण सत्यभाषण आदि के द्वारा ही मानवमात्र का विकास संभव है सत्य के बिना हम श्रेष्ठ व्यक्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते है इसलिए सत्यनिष्ठा पर अत्याधिक बल देना चाहिए।

4. <u>अंतरिम विकास</u> :-

अंतरिम विकास से तात्पर्य उस विकास से है जो विद्यार्थियों को आंतरिक रूप से यानि अंतःमन से विकसित करते है। जैसे - हम लोग वच्चों को सूत कातना सिखाते है और उसके द्वारा ज्ञान देते है पर हम लोगों का केवल इतना ही काम नहीं है हमको इसके द्वारा यह भी देखना चाहिए कि इसके द्वारा उसका आंतरिक विकास हुआ या नहीं। उसमें उद्योग शीलता आयी या नहीं, सभी प्रकार के निर्णय बने या नही। वे सत्यवादी, संयमी और सेवाभावी बने या नहीं आदि। सभी विद्यार्थियों के आंतरिक विकास पर वल देना चाहिए।

5. <u>स्वावलम्बन का निर्माण</u> :-

विनोबा जी के अनुसार विद्यार्थियों में स्वावलम्वन का निर्माण करना चाहिए। विद्या जीवन की एक मौलिक वस्तु है वैसे कहा गया है कि विद्या तो मुक्ति के लिए है। इसी मुक्ति को आजकल हम स्वावलम्बन कहते है जिसको सच्ची शिक्षा प्राप्त हो वह सच्चे रूप में मुक्त और स्वतंत्र है। आजकल विद्यालयों में विद्यार्थियों को कुछ न कुछ ज्ञान दिया जाता है। परन्तु स्वतंत्र ज्ञान प्रप्ति कैसे करना चाहिए यह बात नहीं सिखाई जाती है। विनोबा जी का मानना है कि शिक्षा में स्वावलम्बन का बहुत महत्व है। शिक्षा में विद्यार्थियों को उद्योगों से सम्वंधित शरीर श्रम सिखाना चाहिए ताकि विद्यार्थी स्वावलम्बी बने और प्रत्येक को अपने हाथ से कार्य करने का ज्ञान देना चाहिए। क्योंकि अगर सभी लोग हाथों से कुछ न कुछ परिश्रम करने लग जायेंगे तो देश में वर्ग भेद समाप्त हो जावेगा और देश सुखी होगा, उत्पादन भी बढ़ेगा और आरोग्य भी। इस प्रकार उद्योग से बहुत लाभ होंगे। स्वावलम्बन का तात्पर्य मुख्यतः निम्न आधार पर किया जाता है -

1. अपने उदर निर्वाह के लिए दूसरों पर आधारित न रहना पड़े।
2. ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्र शक्ति जागृत हो और अन्ततः यह है कि मनुष्य में अपने आप पर नियंत्रण रखने की शक्ति आनी चाहिए। स्वावलम्वन ही मुक्ति है।

6. <u>प्रज्ञा स्वयंभू बने</u> :-

विनोबा जी के अनुसार तालीम में ऐसा तरीका अख्तियार करना चाहिए जिससे विद्यार्थी भी प्रज्ञा स्वयंभू बने और वह स्वतंत्र विचारक बने अगर विद्या में यही मुख्य

शिक्षा विचार - विनोबा

शिक्षा विचार - विनोबा पृष्ठ 24

तीसरी शक्ति - विनोबा पृष्ठ 74

दृष्टि रही तो विद्या का सम्पूर्ण स्वरूप ही बदल जायेगा। आजकल विद्यालयों में अनेक भाषाओं और अनेक विषय सिखाये जाते हैं प्रत्येक बात में विद्यार्थी को वर्षो तक शिक्षक की मदद की आवश्यकता महसूस होती है। परन्तु विद्यार्थियों को इस तरह की तालीम मिलनी चाहिए जिससे कि विद्यार्थी आगे चलकर स्वयं ही ज्ञान प्राप्त कर सके। दुनिया में अनन्त ज्ञान है। यद्यपि जीवन के लिए उस अनंत ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती तो भी पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता होती है लेकिन यह विचार बिल्कुल गलत है, कि जीवनपयोगी ज्ञान किसी स्कूल में हासिल हो सकता है। जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान तो जीवन से ही हासिल होता है। विद्यार्थियों में वह ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति जागृत करना ही विद्यालयों का परम कर्तव्य है।

7. विश्वनागरिकता का निर्माण करना :-

विद्यार्थियों में विश्व नागरिकता का निर्माण किस प्रकार हो की तालीम दी जानी आवश्यक है। जिससे उनमें इस वृत्ति का विकास होवे, बचपन में मुझे (विनोबा जी) अनेक विषयों का ज्ञान सिखाया जाता था लेकिन हमारा ध्यान इसी में लगा रहता था कि देश कैसे मुक्त हो और उसके लिए हम क्या करें ? बचपन से ही हमारा लक्ष्य भारत को आजाद बनाने का रहा है परन्तु आज के लड़के तो स्वतंत्र भारत के विद्यार्थी है इसलिए वे विश्व नागरिक बन सकते हैं। यदि हम अपने देश को ठीक ढंग से बनायें शांति की ताकत कायम करें तो अपना प्रभाव पूरे विश्व पर डाल सकते हैं। अब दुनिया और हमारे बीच कोई पर्दा नहीं है यहाँ के अच्छे कार्य दुनिया में फैलेंगे और उसका दुनिया पर असर होगा अब हम अच्छे बुरे कार्यो को सीमित नहीं रख सकते हैं इसलिए विद्यार्थियों को तालीम इस प्रकार से दी जाये जिससे विद्यार्थियों के मन में विश्व नागरिकता की भावना का निर्माण हो सकें।

8. जीविकोपार्जन का उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी स्वयं की योग्यता एवं परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन में समर्थ होना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं बन सकता तो समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होगा। अतः शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य प्रत्येक छात्र को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना है।छात्रों को अध्ययन में भी आत्मनिर्भर होना चाहिए। इसके लिए छात्रों मे स्वयं के प्रयोगो तथा अन्य लोगों के अनुभवों दोनो से ज्ञान प्राप्ति की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए।

शिक्षा विचार - जयप्रकाश नारायण 23

शिक्षा विचार - विनोबा भावे - पृष्ठ 12

तीसरी शक्ति - विनोबा

किसी भी छात्र को पन्द्रह वर्ष की अवस्था के बाद अध्यापक की सहायता पर निर्भर रहना अयोग्यता की बात होगी। इस आयु के प्रत्येक छात्र को मानचित्र व सूची पत्र आदि समझना तथा व्याकरण शब्दकोष, इन्साइक्लोपीडिया व अन्य निर्देश पुस्तकों का अध्ययन सीख लेना चाहिए। इस आयु के पश्चात छात्रों को स्वतः पुस्तकें पढ़ना नई भाषायें व नई बातें सीखना व ज्ञानबुद्धि के द्वारा अध्ययन करना चाहिए। जिस प्रकार भूमि को खोदकर पानी निकाला जाता है उसी प्रकार छात्रों में लगन और पश्रिम के द्वारा ज्ञान के खोज की प्रवृत्ति होनी चाहिए। विनोबा जी के अनुसार छात्रों को सिखाये गये विषयों का शत प्रतिशत ज्ञान होना चाहिए जिससे वे भावी जीवन की वास्तविकताओं का साहस एवं विश्वास के साथ सामना कर सकें।

बुनियादी शिक्षा :-

बुनियादी शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा जिसके द्वारा विद्यार्थियों में ऐसी जागृति उत्पन्न करना जिससे ज्ञान और कर्म दोनो की उपलब्धि हो। बुनियादी तालीम एक समुद्र है उसमें विचार की सभी नदियों का समावेश होता है बुनियादी शिक्षण का अर्थ मौलिक शिक्षा से लिया गया है जो कि शिक्षण का मूल आधार है। यही शिक्षण की जड़ है विनोबा जी के अनुसार शिक्षण के साथ उद्योग को जोड़ते है क्योंकि इसका शरीर के साथ का निकट का सम्वंध है योगशास्त्र में तो मनशुद्धि के लिए प्रथम शरीर शुद्धि बताई गयी है, हमारे शिक्षा शास्त्र का आधार भी यही होनी चाहिए। शरीर शुद्धि के साथ मनोशुद्धि होती है। विद्यार्थियों की मनोशुद्धि करने के लिए शारीरिक श्रम करवाकर उनकी भूख जागृत करनी चाहिए हमें ज्ञान की दृष्टि से परिश्रम को शिक्षा का आध ार बनाना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा के अंतर्गत कताई बुनाई बढ़ईगीरी, खेती करना चमड़े का काम और अन्य दस्तकारी। बुनियादी शिक्षा में मातृभाषा जिसमें गद्य, पद्य और अन्य प्रकार की चीजें विद्यार्थी पढ़ें। भाषा को सामाजिक शिक्षा का साधन बनाया जायें। इसमें बागवानी, पशुपालन व दुग्ध विद्या, आहार शास्त्र और पोषणशास्त्र, ग्रामोद्योग और वस्त्रविद्या, ग्राम शिक्षा देहाती इंजीनियरिंग ग्राम स्वास्थ्य, आदि इन विषयों को देखने से ज्ञात होता है कि बुनियादी शिक्षा में सम्पूर्ण विषय जीवन से सम्बंधित है। इसके अलावा बुनियादी शिक्षा योजना के अंतर्गत अध्यापक पाठ्यक्रम के बारे में भी बताया गया है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में बालमनोविज्ञान शिक्षण के नियम और सिद्धांत बुनियादी पाठशाला का प्रबंध, सहसम्बंधित शिक्षा के तरीके और अभ्यास तथा

आत्मज्ञान और विज्ञान - विनोबा पृष्ठ 139

शिक्षाविचार - विनोबा पृष्ठ 148

साथ-साथ विषयों का भी ज्ञान रखा गया है। इससे अध्यापक, बालक, विषय सामग्री, वातावरण और शिक्षण की विधि का पूरा ज्ञाता बन सके। बुनियादी शिक्षा योजना एक पूर्ण जीवन की योजना है।

विनोबा जी की बुनियादी शिक्षा के आधारभूत तत्व :-

विनोबा जी की बुनियादी शिक्षा का दर्शन त्रिसूत्री शिक्षा के रूप में होता है जिसके अन्तर्गत योग, उद्योग एवं सहयोग समाहित है क्योंकि जीवन में उद्योग और प्रयोग बहुत जरूरी है क्योंकि उद्योग के अभाव में व्यक्ति या बालक निष्क्रिय एवं निष्प्राण सा हो जायेगा जिसके परिणामस्वरूप वह भावी जीवन में अपनी आजीविका अर्जित करने से वंचित रह जायेगा। उद्योग से अभिप्राय प्रयासों एवं प्रत्यनों से है। इन प्रयासों का उपयोग प्रयोग के रूप में व्यक्ति के दैनिक जीवन के अंदर होना चाहिए। तभी उद्योग और प्रयोग की अवधारणा सत्य हो सकेगी। उद्योग एवं प्रयोग के साथ योग का समावेश भी अति आवश्यक है क्योंकि योग के अभाव में समस्त उद्योग और प्रयोग निष्प्रभावी हो जायेंगे। क्योकि जब तक किसी क्रिया में निष्ठा तन्मयता नहीं होगी तब तक उसका सफलीभूत होना संदिग्ध हो जायेगा। इसलिए विनोवा जी ने उद्योग के साथ योग एवं इन दोनो के साथही सहयोग पर भी विशेष वल दिया है क्योंकि जीवन में जव तक सहयोग की भावना नहीं होगी तब तक कोई भी कार्य सच्चे अर्थो में पूर्ण नहीं हो सकता लेकिन जीवन के शुरू हो जाते ही योग भी अत्यंत जरूरी है बुनियादी तालीम के बारे में विनोवा जी का कहना है कि तालीम उद्योग के माध्यम से परिस्थिति के माध्यम से, लेकिन आत्मा के भी कुछ गुण होते है जिनको प्रकाश में लाना ही तालीम का आधार होना चाहिए। क्योंकि गुण विकास से वढ़कर तालीम का कोई उद्देश्य नहीं होता है इसलिए बुनियादी शिक्षण का आधार आत्म गुण विकास मानकर ही बनाया गया है।

योग यानि चित्त पर कैसे अंकुश रखना, इन्द्रियों पर कैसे सत्ता रखना, मन पर कैसे काबू पाना, जवान पर कैसे नियंत्रण पाना, यही जानना योग का सच्चा अर्थ है। आत्मज्ञान से मनुष्य की बुद्धि स्थिर रहती है विवेक से अच्छा आचरण घटित होता है। ज्ञान अच्छा होने के लिए हमारे आसपास अथवा हमारे सम्पर्क में आने जाने वाले सृष्टिगत अनेक पदार्थो का ज्ञान जरूरी है आज हम लोगों को विज्ञान का जितना ज्ञान है उतना हमारे पूर्वजों को नहीं था। इसलिए प्राचीनकाल की अपेक्षा हमारे पास ज्ञान अधिक है।

बुनियादी शिक्षा के अनुसार विद्यार्थी निर्भय वने यही आवश्यक है। आजकल विद्यालयों में अच्छे अनुशासन की तालीम दी जाती है यह भी एक अच्छा गुण है। भगवान

ने गीता में अभय को सर्वश्रेष्ठ गुण कहा है इसलिए निर्भयता की बुनियाद पर सम्पूर्ण शिक्षण खड़ा होना चाहिए। निर्भयता का अर्थ यही है कि न हम किसी से डरेंगे न किसी को डरायेंगे। अपने को देह से अलग पहचानना ही निर्भयता है यही बुनियादी शिक्षा के आधारभूत तत्व है।

विनोबा जी और नई तालीम :-

विनोबा जी के अनुसार नयी तालीम कोई तंत्र नहीं है,वह एक विचार है बहुत से लोग इसे एक पद्धति के तौर पर देख रहे हैं। शिक्षण की एक नयी पद्धति पर यह सोचना गलत है कि यह एक विचार है, जैसे ब्रह्म विचार एक अत्यंत व्यापक विचार है जो प्राचीन समय में हिन्दुस्तान को मिला था। उस एक ब्रह्म विचार में से अद्वैत उपासना भी निकली, द्वैत उपासना भी निकली इस तरह की कई उपासनायें एक बह्म विचार से उत्पन्न हुई। वैसे ही यह एक व्यापक शिक्षण विचार है। नयी तालीम अर्थात् सिर्फ अच्छी तालीम नही, पुराने कुछ गलत विचार जो गलत थे उसे त्यागकर नये विचारों का समावेश। नयी तालीम यानि नये मूल्यों की स्थापना। पुरानी तालीम चोरी करने को पाप समझती थी नयी तालीम न सिर्फ चोरी को बल्कि अधिक संग्रह को भी पाप समझती है। पुरानी तालीम शारीरिक और मानसिक परिश्रम का मूल्य और प्रतिष्ठा में अंतर समझती थी। नयी तालीम दोनों का मूल्य समान समझती है। इतना ही नहीं दोनों का समन्वय करती है। दोनों का "समवाय" साधती है। पुरानी तालीम क्षमता की इज्जत करती थी नयी तालीम क्षमता को समता की दासी समझती है। पुरानी तालीम लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ति को स्वतंत्र देवता रूप में पूजती थी। नयी तालीम मानवता को पूजती है और इन तीनों को उसकी सेवा का साधन समझती है।

इस प्रकार सहचिन्तन और सहआचरण से दुनिया को अनुभवयुक्त ज्ञान मिलता है जहां विचार मंथन और प्रयोग दोनो एक हो जाते है घुल मिल जाते है उसे ही नयी तालीम कहते हैं।

नई तालीम का उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार शास्त्रकारों ने सनातन् धर्म की व्याख्या की है। "सनातनो नित्तनूतनः" जो परिस्थिति के मुताबिक नया रूप ले सकता है वही सनातन है। नित्य नूतनता का अर्थ ही यही है कि कायम टिकने की शक्ति। नयी तालीम को भी यदि टिकना है तो उसे नित्य नूतन बनना पड़ेगा। भगवान बुद्ध ने कहा है कि लकड़ी से जो एक कीड़ा उत्पन्न होता है

कुछ अर्वाचीन भारतीय शिक्षाशास्त्री - विनोबा पृष्ठ 98

वह उस लकड़ी को खाता है इस नयी तालीम के द्वारा हम समूचे समाज को बदलेंगे तथा समाज बनायेंगे, यही नयी तालीम का उद्देश्य है विनोबा जी यही कहना चाहते है कि सिर्फ नई तालीम का ही नहीं तालीम का भी यही विचार है कि समाज सेवा, सृष्टि निरीक्षण और शरीर की आजीविका ही सारे ज्ञान प्राप्ति के साधन है।

नई तालीम का स्वरूप कर्मयोग और ज्ञान योग का भेद मिटाने वाली होनी चाहिए। नई तालीम का उद्देश्य शरीर, श्रम और ज्ञान पर आधारित शिक्षा है। जो कि विद्यार्थियों को परिश्रमी एवं आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग प्रदान करेगी।

स्वतंत्र एवं विचारशील व्यक्तित्व का निर्माण करना :-

स्वतंत्र और विचारशील व्यक्तित्व से तात्पर्य ऐसा व्यक्तित्व जो स्वयं के विचारों द्वारा तैयार हो जिसमें स्वयं निर्णय लेने की शक्ति हो ऐसा व्यक्तित्व अच्छे एवं बुरे का ज्ञान करने में सक्षम होता है विद्यार्थियों को शुरू से ही ऐसी शिक्षा दी जावें जिससे विद्यार्थी धीर -वीर गम्भीर बने तथा इस समाज को और राष्ट्र को सहयोग दे सकें।

ज्ञानार्जन की अभिरूचि उत्पन्न करना :-

विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्ति की अभिरूचि उत्पन्न करनी चाहिए जिससे नवीन ज्ञान प्राप्ति की शक्ति आवे क्योंकि ज्ञान के विषय में विद्यार्थियों को स्वावलम्वी बनाना होगा। जिससे वे स्वयंमेव प्रयोग करें और दूसरों के अनुभवों से और अपने अनुभव से ज्ञान प्राप्त कर सकें ऐसी शक्ति विद्यार्थी को देना ही शिक्षक का कार्य होना चाहिए।

स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर मानव बनाना :-

विनोबा जी ने अपने शैक्षिक विचारों में कहा है कि विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जाये जिसके द्वारा स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनें। स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भर से तात्पर्य स्वयं पर आधारित एवं स्वाभिमानी बने किसी पर आश्रित न रहें। क्योंकि स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर मानव ही देश का राष्ट्र का कल्याण कर सर्वोदय की नीति अपना सकता है। छात्रों को शुरू से ही ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे आत्मनिर्भर बनें इसके लिए छात्रों को स्वयं के प्रयोगों तथा अन्य लोगों के अनुभवों दोनो से ज्ञान प्रप्ति की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए।

ज्ञान एवं कर्म में समन्वय :-

बाबा विनोबा - विनोबा पृष्ठ ९९

विनोबा जी के अनुसार ज्ञान और कर्म के दो टुकड़े नही होने चाहिए। अगर ऐसा हुआ तो कुछ लोगों के पास ज्ञान और कुछ लोगों के पास कर्म हो तो राहु केतु का समाज बनेगा। राहु यानि सिर ही सिर उसको रूण्ड नहीं सिर्फ मुण्ड औरकेतु यानि रूण्ड ही रूण्ड। ग्राम के सभी लोग केतु बनेंगे और शहर के सभी राहु। अगर ऐसा राहु केतु का समाज वना तो बहुत जटिलता उत्पन्न हो जावेगी। नयी तालीम का विश्वास है विज्ञान और कर्म दोनों एक ही वस्तु के दो स्वरूप है। एवं उनकी योजना है कि सभी शारीरिक और बौद्धिक दोनों तरह के विकास करें जैसे शब्द और अर्थ दोनों अलग-अलग होते हुए भी एक साथ रहते है वैसे ही ज्ञान और कर्म एक साथ होना चाहिए। ये दोनो कपड़े के ताना बाना जैसे है दोनो से मिलकर ही जीवन का वस्त्र बनता है। इसलिए ज्ञान शक्ति और कर्मशक्ति का समन्वय होना अनिवार्य है।

समाजसेवी व्यक्ति उत्पन्न करना :-

हमारी शिक्षा से ऐसे विद्यार्थी उत्पन्न होने चाहिए जिनमें समाजसेवी भावना हो क्योंकि यह भावना समाज को ऊँचाई की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध होगी। मनुष्य को समाज सेवा के क्षेत्र ढूढ़ने नहीं होते हैं जिसे जो सेवा क्षेत्र मिल गया उसी को जीवन क्षेत्र और प्रेम क्षेत्र बनाना चाहिए। जीवन में कुछ बातें कर्तव्य की होती है और कुछ पुरूषार्थ की। हम अपना मन निर्मल रखें यही पुरूषार्थ है। समाज हमारा अच्छा उपयोग करे यही प्रारब्ध है। बुद्धि में विवेक हो, मन में धीरज हो और हृदय में भगवद आश्रय हो तब यह संसार समुद्र मृग जल ही साबित होगा। हमें जो सेवा करनी चाहिए वह परोपकार के लिए नहीं आत्मोन्नति के लिए करनी चाहिए। विनोबा जी ने विद्यार्थयों को किसी विशेष क्षेत्र की सेवा नहीं बल्कि ऐसी समाज सेवा जिससे प्रत्येक वर्ग को लाभ मिल सके का सुझाव दिया।

इस तरह जहां पर शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर समाज सेवा के उद्देश्य से अध्ययन अध्यापन और उद्योग करते हैं वहां पर उनका अनुभव वहीं तक सीमित नहीं रहता उसका लाभ सम्पूर्ण दुनिया को मिलता है।

विश्व मानव :-

विश्व मानव से तात्पर्य किसी राष्ट्र विशेष से नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व

शिक्षा विचार - विनोबा पृष्ठ 34

जीवन और कार्य - विनोबा पृष्ठ 31

शिक्षा विचार - विनोबा

जीवन और कार्य - विनोबा

की उन्नति के लिए जो समान रूप से विचार करें ऐसे मानव उत्पन्न करना है। हमारा प्रथम कर्तव्य क्या है ? एक दिन पवनार में "आजाद हिन्द सेना" के एक भाई हमसे मिलने आये थे आते ही उन्होने जय हिन्द किया। हमने उत्तर में जय हिन्द ! जय दुनिया ! जय हरि ! इस तरह हमने सूचित किया कि जय हिन्द में भी खतरा हो सकता है इसलिए जय दुनिया रहना चाहिए क्योंकि जय दुनिया के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का आभास होता है जिससे कि एकता की भावना प्रस्फुटित होती है।

विद्यार्थियों में " मैं विश्व मानव हूँ " ऐसी वृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए। आज हम विज्ञान युग में जी रहे हैं ऐसे जमाने में कोई अपना दिल छोटा बना लेगा तो कैसे चलेगा ? आज दिमाग व्यापक बन गया है परन्तु दिल छोटा रह गया है,यह आज के युग की समस्या है। इसलिए नयी पीढ़ी को अपना दिल बड़ा बनाना होगा। उत्तम विद्या प्राप्त करके आज के जमाने के अनुकूल अध्ययन सम्पन्न बनना होगा और अपना दिल बड़ा बनाना होगा, अपने चिन्तन में व्यापकता विकसित करनी होगी। विद्यार्थियों की राजनीति विश्व राजनीति होनी चाहिए, न कि यहां की जैसी छोटी छोटी राजनीति इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी के मन में विश्व मानव की भावना (परिकल्पना)का होना आवश्यक है।

शिक्षा विचार - विनोबा पृष्ठ 45

जीवन और कार्य - विनोबा पृष्ठ 34

आत्मज्ञान और विज्ञान - विनोबा पृष्ठ 20

(ग) नई शिक्षा नीति के संदर्भ में गाँधी जी एवं विनोबा जी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :-

गाँधीजी के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :-

गाँधी जी भारतीय आदर्शवादी दार्शनिक परम्परा का अनुकूलन अवश्य कर रहे थे किन्तु वह व्यावहारिकता के विरोधी भी न बन सके। अतः शिक्षा में अंतिम वास्तविकता का अनुभव ईश्वर और आत्मानुभूति के ज्ञान के महत्व के साथ ही तत्कालीन प्रमुख तथ्य जीविकोपार्जन, चरित्र निर्माण तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण को भी महत्ता प्रदान कर और इस प्रकार शिक्षा के दोनों पक्षों का प्रबल समर्थन करके शिक्षा में दोनो ही उद्देश्यों को मान्यता दी। आधुनिक शिक्षा आत्मा की ओर से मुंह फेर लेना चाहती है। फलस्वरूप आत्मशक्ति की संभावनायें हमारा ध्यान आकर्षित करने की अपेक्षा परिवर्तनशील भौतिक शक्तियों पर केन्द्रित हो रही है। अतः आवश्यकता है उच्चतम उद्देश्य आत्मा की प्राप्ति की।

यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि गाँधी जी बालक का सर्वांगीण विकास करके व्यक्ति की महत्ता को बनाये रखने के साथ ही उसे समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए तैयार करना चाहते थे।

गाँधी जी की बेसिक शिक्षा उनके विचारों का एक साकार प्रदर्शन है। आपके विचारों में "क्रिया एवं रचनात्मक कार्य" शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं इसके अतिरिक्त केवल सूचना और साहित्य ज्ञान हेतु ज्ञान ही शिक्षा का लक्ष्य न मानकर रचना उपकरणों के प्रयोग, प्रकृति से सानिध्य, अभिव्यक्ति और क्रिया आदि को शिक्षा मानते हैं। बालक का ऐसा सामंजस्यपूर्ण विकास जो उसे गीता में उल्लिखित"योग मुक्त या स्थित प्रज्ञ" के आदर्श तक पहुंचा दे।

गाँधी जी स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व देते थे। वह स्त्री को प्रत्येक रूप में पुरूष से श्रेष्ठ मानते थे। उनका यह निश्चित मत था कि अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान मन्त्र है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है। इसलिए उनके अनुसार स्त्रियों की शिक्षा को विशेष मान्यता दी गई है।

गाँधी जी इस युग के सबसे महान व्यक्ति थे। मानव जीवन से सम्बधित ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें उन्होने कार्य न किया हो, देश को राजनैतिक स्वतंत्रता

दिलाने, समाज के अछूतों का उद्धार करने, वर्ग विहीन समाज का निर्माण करने और संसार के सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का पाठ पढ़ाने के लिए वे तब तक याद किए जायेंगे जब तक यह सभ्यता जीवित रहेगी। उन्होने शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग किये थे और देश के लिए राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की थी। शिक्षा जगत में वे एक शिक्षाशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित है।

गाँधी जी किसी नये दर्शन के प्रतिपादक नहीं है। उन्होने प्राचीन भारतीय दर्शन को व्यावहारिक रूप दिया है। परन्तु इसे व्यावहारिक रूप देने में उनकी अपनी मौलिकता है। इसलिए आज इसे एक अलग दर्शन माना जाता है। गाँधी जी आत्मा और परमात्मा में विश्वास करते थे और मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य इस आत्मा की मुक्ति मानते थे इस मुक्ति के लिए वे मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास की आवश्यकता समझते थे। उन्हीं को वे शिक्षा के उद्देश्य मानते थे। इसी आधार पर उन्होने शिक्षा की परिभाषा दी है। वे शिक्षा का अर्थ मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास से लेते थे।

शिक्षा के इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होने हस्त कौशलों पर आधारित पाठ्यचर्या का निर्माण किया था। परन्तु पाठ्यचर्या में हस्तकौशलों पर उन्होने आवश्यकता से अधिक बल दिया है। सम्भवतः वे भारत को कुटीर उद्योग धंधों का देश बनाना चाहते थे। उनकी यह बात भी केवल सैद्धांतिक सिद्ध हुई कि समस्त शिक्षा का आधार कोई हस्तकौशल होना चाहिए। हाँ पाठ्यचर्या में मातृभाषा को प्रमुख स्थान देकर उन्होंने सोये हुये भारत की आँखे खोली। यदि हमने मातृभाषा के महत्व को न समझा तो जन शिक्षा की कल्पना साकार नहीं कर सकते।

शिक्षण विधियों के क्षेत्र में गाँधी जी के विचार बहुत उपयोगी हैं। उन्होंने करके सीखने पर सबसे अधिक बल दिया है। वे तो किसी हस्तकौशल, प्राकृतिक पर्यावरण अथवा किसी सामाजिक कार्य को ही शिक्षा का आधार बनाना चाहते थे। सभी विषयों को इनके आधार पर एक दूसरे से सम्बंधित करके पढ़ाने की विधि को समवाय प्रणाली कहा जाता है। परन्तु अपने प्रायोगिक रूप में हमने इस विधि की असफलतायें ही देखी है। शिक्षण विधियों के सम्वंध में हमें गाँधी जी की इतनी ही बात माननी चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो बच्चों को अपने वास्तविक जीवन की क्रियाओं द्वारा सिखाया जाये और उन्हें करके सीखने तथा स्वयं के अनुभव से सीखने के अधिक से अधिक अवसर दिए जायें।

अनुशासन की प्राप्ति के लिए अध्यापकों को सचेत कर गाँधी जी ने

हमारा मार्गदर्शन किया है। इनके अनुसार जब तक अध्यापकों का चरित्र उज्जवल नहीं होता और उनमें आत्मबल का विकास नहीं होता तब तक वे बच्चों को अनुशासित नहीं कर सकते। बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार तो प्रत्येक परिस्थिति में आवश्यक होता ही है।

अध्यापक के विषय में गाँधी जी ने जो विचार व्यक्त किये है यद्यपि आज के भौतिक युग में वे कुछ अटपटे से लगते हैं यह बात अध्यापक को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अन्य व्यक्ति तो पदार्थो का रूप परिवर्तित करते हैं परन्तु अध्यापकों को बच्चों का रूप परिवर्तन करना होता है। उनका कार्य अन्य लोगों से अधिक कठिन होता है। इस कार्य को तब तक सही ढंग से नहीं किया जा सकता जब तक अध्यापक पूर्ण निष्ठा से कार्य न करें। अध्यापक को समाजसेवकों के रूप में कार्य करना चाहिए।

गाँधी जी के अनुसार विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और एक अनुशासित जीवन व्यतीत करना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की व्यक्तिगत रूचि, रूझान और योग्यताओं का आदर कर गाँधी जी ने अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। परन्तु सामाजिक हित को उन्होने सदैव सामने रखा था। वे व्यक्ति और समाज दोनों के हितों का समान आदर करते थे।

विद्यालय और समुदाय के बीच सम्बंध स्थापित कर गाँधी जी ने एक और बड़ा काम किया है परन्तु उनका यह अनुमान सही नही निकला कि विद्यालयों में सिखाये जाने वाले हस्तकौशल से जो माल तैयार होगा उससे अध्यापकों और विद्यालयों का खर्च निकल आयेगा।

जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा और धर्म शिक्षा के सम्बंध में गाँधी जी के विचार बहुत सुलझे हुए हैं। उनका यह विचार पूर्ण रूप से सत्य है कि अशिक्षा ही हमारे सभी कष्टों का कारण है और उसको दूर करने के लिए जनशिक्षा की आवश्यकता है। गाँधी जी ने अपने प्रयास से अनेक सामाजिक संगठनों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में अपना सहयोग देना प्रारंभ कर दिया था। स्त्री शिक्षा को भी इस युग में बहुत बढ़ावा मिला। धर्म विशेषों की शिक्षा को पाठ्यचर्या से पूर्णरूप से अलग किए जाने और नैतिक शिक्षा के लिए व्यवस्था करने के पीछे गाँधी जी के विचार बहुत उच्च थे। यह बात दूसरी है कि आज पुनः धार्मिक शिक्षा की बात सोची जाने लगी है। परन्तु हम तो आज भी गाँधी जी के इस विचार से सहमत है कि मानव की सेवा ही सच्ची धार्मिक शिक्षा है। अतः यदि हम शिक्षा के द्वारा मनुष्य को मनुष्य की सेवा के लिए तैयार कर देते है तो हमारा कार्य पूर्ण हो जाता है। परन्तु यह बात भी सत्य है कि मनुष्य को मनुष्य

की सेवा के लिए तैयार करने के लिए हमें उसे एक निश्चित विचारधारा देनी होगी और यह विचारध्-ारा धर्म ही दे सकता है।

अब अंत में यह देखना है कि गाँधी जी का शिक्षा के प्रयोग पक्ष पर क्या प्रभाव पड़ा है। 1937 में गाँधी जी ने एक शिक्षा योजना (बेसिक शिक्षा) प्रस्तुत की थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई प्रांतों में इस योजना को प्राथमिक स्तर पर पूर्ण रूप से लागू कर दिया गया। देखते ही देखते प्राथमिक विद्यालयों पर बेसिक प्राइमरी स्कूल के साइनबोर्ड लग गये। पाठ्यचर्या में बेसिक क्राफ्टों पर बल और उसके लिए सरकार से सामग्री और धन एवं समवाय विधि से कैसे पढ़ाया जाये इस पर भी आये दिन वर्कशापों का आयोजन पर हाथ कुछ भी न लगा लोग इसे निम्न कोटि की शिक्षा समझते थे। हां गाँधी जी द्वारा स्थापित गुजरात पीठ, अहमदाबाद और हिन्दुस्तानी तालीमी शिक्षा केन्द्र, सेवाग्राम आज भी उनके आदर्शो के मूर्तरूप है और वहाँ ग्राम सुधार और आत्मोत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का आयोजन होता है।

महात्मा गाँधी ने शिक्षा पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा जिससे उनके शिक्षा सम्बंधी विचारों को क्रमानुसार समझा जा सकता हो। उन्होने समय समय पर अपने विचार सभाओं में तथा हरिजन के अनेक लेखों में व्यक्त किये। उनके अनुसार शिक्षा के मूल्यों को अनुभवों में खोजना चाहिए। शिक्षा की कोई भी योजना बने परन्तु शिक्षा के द्वारा बालक में व्यावहार कुशलता का आना आवश्यक है। व्यवहार में कौशल प्राप्त करने के लिए बालक को हस्तकार्य, निरीक्षण, अनुभव प्रयोग, सेवा तथा प्रेम का आश्रय लेना होगा। गाँधी जी का कहना है कि -

" जो शिक्षा चित्त की शुद्धि न करे, निर्वाह का साधन न बनाये तथा स्वतंत्र रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाए उस शिक्षा में चाहे जितनी जानकारी का खजाना, तार्किक कुशलता, और भाषापांडित्य मौजूद हो वह सच्ची शिक्षा नहीं।"

गाँधी विचार दोहन किशोरलाल मशरूवाला सस्ता साहित्य मंडल

शिक्षा के रा. एवं सा. सिद्धांत - रमनविहारी लाल

शिक्षा के रा. एवं सा. पृष्ठभूमि - रामशकल पाण्डेय

बेसिक शिक्षा के सिद्धांत - टी0 आर0 शर्मा

विनोबा भावे के शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :-

विनोबा जी ने शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम अन्तः शिक्षा और द्वितीय बाह्य शिक्षा। अन्तः शिक्षा से उनका तात्पर्य उस शिक्षा से है जो मनुष्य के अन्तःकरण को स्वस्थ एवं चुस्त बनाये। उसमें वे सभी कार्यक्रम सम्मिलित है जो मनुष्य की संवेदनाओं एवं शक्तियों को विकसित करें। बाह्य शिक्षा से उनका तात्पर्य उस सामान्य शिक्षा से है जो प्रकृति से या विद्यालय से मिलती है। विनोबा जी के शिक्षा सम्बंधी विचार मुख्यतः सर्वोदय सिद्धांतों पर आधारित है। उनके अनुसार छात्रों को जिज्ञासु बुद्धि, आत्म विश्वासी, कर्तव्य परायण एवं विनम्र होना चाहिए।

विनोबा भावे शिक्षा के सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक पहलू को अधिक महत्व देते हैं। सामाजिक पहलू से विनोबा जी का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो मनुष्य को समाज की जाति पाँति, छूआ छूत, भेदभाव आदि सम्बंधी कुरीतियों से ऊपर उठाकर उनमें सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण की प्रवृत्तियां विकसित करें। विनोबा जी के अनुसार आर्थिक पहलू हमारे सामाजिक ढांचे का एक महत्वपूर्ण अंग है। आज के समाज में श्रम का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा रहा है। शारीरिक श्रम को मानसिक श्रम के समान आदर प्राप्त नहीं है। विनोबा जी के अनुसार शारीरिक श्रम को भी मानसिक श्रम के समान आदर मिलना चाहिए और शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे सामाजिक असमानता दूर हो सके।

विनोबा जी ने बेसिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आज की शिक्षा संस्थाओं की संकुचित भावनाओं को दूर करके एक ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना है जिसमें बालक बालिकाओं का सर्वांगीण विकास हो सके। विनोबा जी ने बेसिक शिक्षा विचार धारा के अनुसार शिक्षा के आधार के लिए किसी ऐसी आधारभूत हस्तकला का चुनाव करना प्रस्तावित किया जिसके विभिन्न अंग बच्चों के उपयुक्त शिक्षा के साधन योग्य हो। इनकी केवल साधन में ही नही वरन शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में उपयुक्तता होनी चाहिए। उपयुक्त शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो बालक बालिकाओं के सर्वांगीण विकास में सहायक हो। उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ साथ भावी जीवन में उनके जीविकोपार्जन का साधन बन सके। विनोबा जी के अनुसार शिक्षा की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जो बालकों में ऐसी भावना उत्पन्न करे कि वह अपने दायित्वों का निर्वाह अच्छी तरह कर सके। शिक्षा का व्यक्ति एवं समाज दोनो के प्रति दायित्व है व्यक्ति के प्रति

शिक्षा विचार - विनोबा

दायित्व में इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना तथा समाज के प्रति दायित्व में समाज ही नही वरन देश व विश्व को निर्भय एवं सुरक्षित बनाना है। एक अहिंसात्मक समाज में शिक्षा सुरक्षा का साधन होती है अतः हमारा प्रमुख दायियत्व एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की खोज करना है जो समाज में प्रेम भाव व शांति स्थापित करने में सहायक हो। नई शिक्षा व्यवस्था उनके शारीरिक, मानसिक व नैतिक विकास के साथ साथ उनके भावी जीवन यापन की समस्या का भी समाधान प्रस्तुत करे। इस प्रकार विनोबा भावे की शिक्षा का शैक्षिक स्वरूप लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

शिक्षा का काम समाज के हाथ में रहना चाहिए, यह अत्यंत प्राथमिक आवश्यकता है शिक्षा का स्वरूप बदलना होगा। आज रंगहीन शिक्षा चलती है जहाँ रंग नहीं दिखता वहाँ हृदय का विकास संभव नहीं। इसलिए शिक्षण जीवन के रंग से रंगा हुआ होना चाहिए और वह भी जनता के हाथ में रहे। सरकार के हाथ में नहीं होना चाहिए।

नई शिक्षा नीति के संदर्भ में शैक्षिक स्वरूप की समीक्षा :-

नई शिक्षा नीति में शैक्षिक स्वरूप से तात्पर्य ऐसी शिक्षा व्यवस्था से है जो सभी छात्रों को बिना किसी जाति, धर्म, स्थान अथवा लिंग भेद के एक निश्चित स्तर तक तुलनीय कोटि की शिक्षा प्रदान करना है। नई शिक्षा नीति में शैक्षिक स्वरूप में ये सभी विशेषतायें होना अत्यंत आवश्यक है।

1. शिक्षा का ढाँचा :-

नई शिक्षा व्यवस्था में सारे देश के लिए एक समान शैक्षिक ढांचे की व्यवस्था की गई है। इसे 10+2+3 का शैक्षिक ढांचा कहते हैं। इसमें पहले 10 वर्ष तक की शिक्षा सभी के लिए समान रूप से है। इसे विभिन्न स्तरों में इस प्रकार विभाजित किया गया है 5 वर्ष का प्राथमिक स्तर, 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर तथा 2 वर्ष का माध्यमिक स्तर। इसके पश्चात +2 के उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यावसायीकरण की योजना बनाई गई है। इसके बाद 3 वर्ष की महाविद्यालयीन शिक्षा की व्यवस्था है।

2. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम :-

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था सम्पूर्ण देश के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के ढाँचे पर आधारित होगी। इसमें एक समान पाठ्यक्रम होगा किन्तु आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन

किये जा सकेंगे। इसके अंतर्गत भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संविधान के प्रति कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व तथा राष्ट्रीय पहचान से सम्बंधित महत्वपूर्ण वातों का समावेश किया गया है। उदाहरण के लिए हमारी भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, पर्यावरण का महत्व, सीमित परिवार की आवश्यकता तथा वैज्ञानिक मनाकृति के विकास आदि के द्वारा छात्रों में न केवल अपने देश की संस्कृति के प्रति चेतना जागृत होगी वरन् उसमें राष्ट्रीय एकता का भी विकास होगा।

3. शिक्षा में समानता :-

शिक्षा में समानता से तात्पर्य है सभी को विना किसी जाति, धर्म, वर्ग अथवा लिंग भेद के समान रूप से शिक्षा के अवसर प्रदान करना। नई शिक्षा नीति इस बात पर जोर देती है कि शिक्षा से व्याप्त असमानताओं को दूर किया जाये। तथा एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा सर्वसुलभ कराई जाये यही कारण है कि महिलायें, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्ग के लोगों तथा विकलांगों की शिक्षा के लिए इसमें विशेष व्यवस्था की गई है।

4. शिक्षा का लोकव्यापीकरण :-

संविधान में लिए गए निर्णय के बावजूद आज सैंतीस वर्ष बीत जाने के बाद भी हम देश की शिक्षा का लोकव्यापीकरण नहीं कर पाते हैं। नई शिक्षा नीति में इसे गंभीरता से लिया गया है। तथा इस बात का संकल्प लिया गया है कि सन् 1990 तक 6 से 11 वर्ष तथा 1995 तक 11 से 14 वर्ष तक की आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कर दी जायेगी। यही नहीं नई शिक्षा नीति उन बच्चों के लिए, जो बीच में ही पढ़ाई छोड़कर शाला से चले जाते है, शाला में ठहराव को प्राथमिकता देती है तथा 14 वर्ष तक की शिक्षा का सफलतापूर्वक पूर्ण कराने के लिए प्रयास करती है।

5. औपचारिकेत्तर शिक्षा :-

9 से 14 वर्ष के ऐसे बच्चे, जिन्होने बीच में शाला छोड़ दी या जो काम काज में लग जाने के कारण शाला में नही जा पाये अथवा जो इसलिए शाला नही गए कि जहाँ वे रहते थे, वहाँ शाला ही नहीं थी। नई शिक्षा नीति में औपचारिकेत्तर शिक्षा केन्द्रों के माध

नई शिक्षा नीति पर एक विहंगम दृष्टि - शम्सुद्दीन, 7/150 बैजनाथ पारा रायपुर (म.प्र.) पेज नं 13

यम से शिक्षित किये जायेंगे। इन्हें आधुनिक तकनीकी सामग्री की सहायता से स्थानीय योग्यता एवं निष्ठावान युवा पुरूष अथवा महिलाओं के द्वारा शिक्षा दी जायेगी। नई राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में उदारतापूर्वक अनुदान देकर इन केन्द्रों को विकसित करने की योजना है।

6. महिला शिक्षा :-

जहाँ एक बालक की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा होती है वहाँ एक बालिका की शिक्षा एक परिवार की शिक्षा होती है। इस कथन की महत्ता का अनुभव करते हुए तथा महिलाओं के स्तर को ऊपर उठाने के उद्देश्य से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिला शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन दिया गया है। विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में भी महिलाओं की भागीदारी पर जोर दिया जायेगा ताकि पुरूषों और महिलाओं के बीच किसी प्रकार के भेदभाव की स्थिति न रह जाये। नई शिक्षा नीति में उसे समाप्त किया जायेगा।

7. प्रोढ़ शिक्षा :-

15 से 35 वर्ष के आयु वर्ग के प्रौढ़ों के लिए साक्षरता कार्यक्रम के साथ साथ सतत् शिक्षा का एक व्यापक, कार्यक्रम नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों की शिक्षा, पुस्तकों तथा वाचनालयों का विस्तार, रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्मों के माध्यम से शिक्षा, दूर शिक्षण कार्यक्रम तथा आवश्यकता और रूचि पर आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जायेगा।

8. पिछड़े वर्गों की शिक्षा :-

भारत में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो अशिक्षा, गरीबी, तथा अंधविश्वास से ग्रस्त बहुत पिछड़े हुये हैं। इन्हें अन्य लोगों की बराबरी पर लाकर इनके लिए भी प्रगति के समस्त द्वार खोलने है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत इनके लिए कई योजनाओं के द्वारा हर तरह की शैक्षिक सुविधायें प्रदान किए जाने की व्यवस्था है। इनके लिए छात्रावास तथा आश्रमों की योजना के साथ साथ निशुल्क गणवेश, कॉपी, किताबें, मध्यान्ह भोजन तथा छात्रवृत्तियों की सुविधायें प्रदान की गई हैं।

9. रोजगारपरक शिक्षा :-

नई शिक्षा नीति में +2 स्तर पर कक्षा 11वीं और 12वीं में शिक्षा के व्यावसायीकरण की व्यवस्था है दूसरे शब्दो में यहां शिक्षा को रोजगार एवं काम से जोड़ने की

व्यवस्था है। चूंकि इसमें मानव एवं संसाधन दोनो की आवश्यकता होगी अतः इसमें वर्तमान में बड़े और महत्वाकांक्षी कार्यक्रम की योजना नहीं है अभी तो यह संकल्प लिया गया है कि उच्चतर माध यमिक स्तर पर सन् 1990 तक 10 प्रतिश तथा 1995 तक 20 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध कराई जाये।

10. नवोदय विद्यालय :-

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत नवोदय विद्यालयों की स्थापना एक अभिनव कदम है। इन्हें पेस सेटिंग स्कूल अथवा गति निर्धारक विद्यालय भी कहते हैं। कई बार ऐसा होता है कि कुछ छात्र आरम्भ से ही बडे मेधावी और प्रतिभाशाली होते है किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अध्ययनरत रहने तथा आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उच्च कोटि की शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। इन बच्चों की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था के रूप में नवोदय विद्यालय की स्थापना की गई है। ये आवासीय विद्यालय रहेंगे तथा क्रमशः आरम्भ किए जायेंगे। प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय खोलने की शासन की योजना है।

नई शिक्षा नीति के तहत देश की शिक्षा प्रणाली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं सुधार करने की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। इससे राष्ट्रीय एकता का विकास होता है। चिंतन में स्वतंत्रता आती है जनशक्ति का विकास होता है और राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता का आधार तैयार होता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का एक बहुमूल्य साधन है।

11. आपरेशन ब्लेक बोर्ड :-

नई शिक्षा नीति में प्राथमिक विद्यालयों को दी जाने वाली सुविधाओं के अंतर्गत आपरेशन ब्लेक बोर्ड एक नये टर्म का प्रयोग किया गया है। सीधे साधे अर्थ में इससे तात्पर्य है - "न्यूनतम शैक्षिक साधनों तथा उपकरणों का प्रावधान।" इसके अंतर्गत प्राथमिक शालाओं में कम से कम दो सामान्यतः बड़े आकर के कमरे, टाटपट्टी, नक्शे चार्ट, श्यामपट तथा अन्य शैक्षिक सामग्री की व्यवस्था आवश्यक होगी तथा बाद में हर एक नई कक्षा के साथ एक और शिक्षक बढ़ाया जायेगा। इसके लिए बड़ी संख्या में शिक्षकों की नियुक्ति करनी होगी। साथ ही उनके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करनी होगी। प्राथमिकता के आधार पर जिन शालाओं के भवन नहीं है उनके लिए पहले भवन निर्माण का कार्य किया जायेगा।

नई शिक्षा नीति की यह सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जो आज के संदर्भ में हमारे छात्रों के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। आज हमारी औपचारिक शिक्षा तथा हमारे देश की महान एवं गौरवशाली सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच खाई का निर्माण हो गया है। इसे पाटना जरूरी है विशेषकर आज जब हमारी नई पीढ़ी विज्ञान एवं तकनीकी को प्रमुखता से अपनाने जा रही है और उसे अपने देश के इतिहास एवं संस्कृति से जोड़े रखना अत्यंत आवश्यक है इसके लिए हमारी शिक्षा को कला, पुरातत्व एवं प्राच्य अध्ययन से जोड़ना होगा। साथ ही ललित कलाओं, संग्रहालय विज्ञान तथा लोक कला एवं साहित्य पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। नई शिक्षा नीति इसकी व्यवस्था करती है।

इस प्रकार देश की नई शिक्षा नीति 1986 आज हमारे सामने है। इसका क्रियान्वयन आरम्भ हो गया है यह निश्चित है कि इसके लिए अधिक धन की आवश्यकता होगी, अधिकाधिक संसाधनों की आवश्यकता होगी किन्तु सर्वाधिक आवश्यकता इसमें मानवीय संकल्प की दृढ़ता, कर्तव्यनिष्ठा एवं लगनशीलता की होगी। नई शिक्षा नीति मात्र शिक्षा की योजना नहीं है वरन हमें नया दृष्टिकोण प्रदान करने वाली नई दिशा दिखाने वाली तथा नये आयामों का द्वार खोलने वाली है।

शिक्षा व्यक्ति और समाज के लिए अति आवश्यक कारक है। शिक्षा का स्वरूप स्थिर नहीं होना चाहिए। बदलते हुए परिवेश के साथ इसका बदलना नितांत आवश्यक है। अन्यथा यह एक निर्जीव साधन मात्र रह जायेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा बदली हुई सामाजिक आकांक्षाओं एवं परिवेश के अनुरूप बालक को ढालने में समर्थ हो जिससे वह विकास के क्रम में अपना योगदान दे सकें। ताकि शिक्षा द्वारा बीसवीं सदी के अंत तक तथा इक्कीसवी सदी के प्रारंभ तक भारत में एक ऐसे समाज की स्थापना की जा सके जिसमें अभिजातवर्ग के स्थान पर जनता की प्रधानता हो।

नई शिक्षा नीति में असमानता को दूर करने का प्रयत्न, जिन लोगों को अभी तक शैक्षिक अवसरों की समानता नहीं मिली है उनकी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए उसी के अनुरूप शिक्षा देने पर विशेष जोर दिया गया है।

अध्याय : पंचम

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा – पाठ्यक्रम :

(अ) प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम के विषय :

मातृ भाषा की शिक्षा, गणित की शिक्षा, सामाजिक विषय, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान शिक्षा, संगीत शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्वावलम्बन सम्बन्धी शिक्षा, नागरिक जीवन के कार्य कलाप, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्य कलाप

(ब) उच्च शिक्षा

(स) अध्यापक शिक्षा

(द) स्त्री शिक्षा

(ई) प्रौढ़ शिक्षा

(ख) विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा – पाठ्यक्रम :

विनोबा के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत, पाठ्यक्रम के विषय, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा, हस्तकला की शिक्षा, मातृ भाषा की शिक्षा, संस्कृत की शिक्षा, इतिहास की शिक्षा, संगीत की शिक्षा, आहार विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, स्वावलम्बन की शिक्षा, व्यायाम की शिक्षा, नई तालीम का पाठ्यक्रम

(ग) गाँधी जी एवं विनोबा जी के माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

गाँधीजी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार, विनोबा जी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार, नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में पाठ्यक्रम की समीक्षा

पाठ्यक्रम

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा–पाठ्यक्रम :–

गाँधी जी के विचार से पाठ्यक्रम ऐसा नही होना चाहिए कि उससे केवल बौद्धिक विकास हो। बौद्धिक विकास तो केवल साहित्यिक विषयों से हो सकता है किन्तु उनसे शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव नहीं है प्रचलित शिक्षा में शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा की गयी है केवल मस्तिष्क को शिक्षित करने का प्रयत्न किया है।

गाँधी जी का विचार था कि पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो केवल बौद्धिक विकास ही न करे वरन् बालकों का भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से अनुकूलीकरण भी करें। जिससे कि वे समाज के उपयोगी अंग बन सकें और आत्मनिर्भर बन सकें। इस दृष्टि से महात्मा गाँधी ने किसी हस्त कार्य या दस्तकारी के द्वारा शिक्षा देने का सुझाव रखा और क्रिया प्रध ाान पाठ्यक्रम की योजना बनायी।

इस नवीन पाठ्यक्रम में क्राफ्ट को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। क्राफ्ट कोई भी हो सकता है। भारतीय समाज की दृष्टि से कृषि, कताई, बुनाई, गत्ते का कार्य, लकड़ी का काम, धातु का काम आदि में से एक क्राफ्ट को चुना जा सकता है। कताई बुनाई की ओर विशेष रूचि प्रदर्शित की गयी।

इस पाठ्यक्रम में मातृभाषा को प्रमुख स्थान दिया गया। शिक्षा के माध्यम के मुख्य रूप में भी मातृभाषा को ही स्वीकार किया गया। गणित, सामजिक अध्ययन, ड्राइंग तथा संगीत आदि विषय भी पाठ्यक्रम में अवश्य होने चाहिए। सामान्य विज्ञान को भी रखा गया है। सामान्य विज्ञान में जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, प्राकृतिक अध्ययन, भौतिक सांस्कृतिक तथा ज्ञान के सामान्य तथ्य निहित है।

गाँधी जी का यह पाठ्यक्रम प्राथमिक एवं लघु माध्यमिक स्तर तक ही सीमित है। उन्होने सर्वाधिक विचार इसी स्तर के लिए किया। उनकी नवीन शिक्षा योजना, नयी तालीम, बुनियादी तालीम, बेसिक शिक्षा आदि के नाम से सामने आयी। पांचवी कक्षा तक के बालकों एवं बालिकाओं के लिए एक समान पाठ्यक्रम होना चाहिए और इसके बाद बालकों को क्राफ्ट की

बुनियादी शिक्षा एक अध्ययन – गुरूशरण भाई

बुनियादी शिक्षा के समवाय – द्वारिक सिंह

तथा बालिकाओं को ग्रह विज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए।

महात्मा गाँधी के अनुसार बेसिक शिक्षा :-

महात्मा गाँधी ने शिक्षा का सर्वक्षेत्रीय महत्व स्वीकार किया है। शिक्षा दर्शन सम्बंधी उनके जो विचार है वह उन्हें एक विशिष्ट शिक्षा शास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं द्वितीय विश्व युद्ध के कुछ पूर्व ही उन्होने देश में कांग्रेसी मंत्रीमंडल की स्थापना होते ही राष्ट्रीय पुनर्निमाण के लिए शिक्षा व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन आवश्यक बताये। बेसिक शिक्षा की योजना, को युग जीवन के अनुकूल बताते हुए उन्होने एक स्थान पर स्पष्ट रूप से लिखा है कि -

" राष्ट्र के रूप में शिक्षा में इतने पिछड़े हुए है कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्यक्रम धन पर आधारित किया तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्वों को इस पीढ़ी में थोड़े समय में निर्वाह करने की आशा नहीं कर सकते हैं। अतः मैंने अपनी रचनात्मक ख्याति को संकट में डालकर यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा आत्मनिर्भर होनी चाहिए। शिक्षा से मेरा अर्थ है बच्चों और मनुष्यों का सर्वतोन्मुखी विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न आदि। यह तो अनेक साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा पुरूष एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है अतः मैं बच्चों की शिक्षा एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखाकर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्राप्त करता है, उसी समय से उसे उत्थान करने योग्य बनाकर प्रारंभ रखना चाहता हूं। इस प्रकार यदि राज्य विद्यालयों में निर्मित वस्तुओं को ले लेने का उत्तरदायित्व ले ले तो प्रत्येक विद्यालय को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।''

गाँधी जी ने सन् 1937 ई0 में वर्धा योजना का सूत्रपात किया तथा तभी से इसका प्रचलन देश में हो गया है और पूरे राष्ट्र के लिए इसे स्वीकार किया गया है। यद्यपि इसमें थोड़ा परिवर्तन किया गया है इस समय देश में प्रचलित शिक्षा को गाँधी जी ने पुस्तकीय अव्यावहारिक क्लर्क बनाने वाली, एकांगी, जीवन से दूर, कुछ थोड़े से लोगों से प्राप्त, विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली एवं भारतीय परम्परा और संस्कृति से असम्वंधित बताया था। इसे उन्होने बेसिक शिक्षा के द्वारा प्रतिस्थापित किया इसे बेसिक शिक्षा क्यों कहा ? क्योंकि यह शिक्षा राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा संगठन के आधार के रूप में प्रस्तुत की गयी है। यह शिक्षा सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करने के लिए निर्मित की गयी है कि जो उनको अपने वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने एवं प्रयोग करने में सहायक हो। इसमें शिक्षा का केन्द्र विन्दु

शिक्षा के दा. एवं सामाजिक सिद्धांत - रमनविहारी लाल

शिक्षा के रा0 एवं सामाजिक पृष्ठभूमि - रामशकल पाण्डेय

कोई हस्त कार्य होगा। इसलिए इसे बेसिक शिक्षा कहा है।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य है अच्छा नागरिक बनाना, व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाना, व्यक्ति का चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास करना, राष्ट्रीयता एवं सर्वोदय समाज की स्थापना करना। इस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक परिपार्श्व में सम्यक् विकास करना तथा साथ साथ समाज की उन्नति करना ही इस शिक्षा का ध्येय है।

बेसिक शिक्षा जिसे बहुतों ने उसकी विशेषता भी कहा है निम्न है -

1. राष्ट्र के प्रत्येक बालक बालिका को 7 वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा :-

यह निश्चय है कि गाँधी जी अपने समय की प्रचलित शिक्षा प्रणाली को एकांगी, संकीर्ण, दूषित एवं बालकों को आत्मनिर्भर एवं धनोपार्जन न बनाने वाली बताया था। अतएव उसका पाठ्यक्रम न तो व्यक्ति की न तो समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला बताया है इन कमियों को दूर करने के लिए उन्होने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से पाठ्यक्रम के विषयों को निश्चित किया है। दूसरी ओर गाँधी जी ने भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पाठ्यक्रम की रचना की है। इस सम्बंध में उन्होने उपयोगिता का सिद्धांत अपनाया है। परन्तु वे दार्शनिक आधार के सिद्धांत को भी नहीं भूले हैं।

अपनी पुस्तक धर्मनीति में गाँधी जी ने लिखा है कि -

" सच्चा विद्याभ्यास वह है जिसके द्वारा हम आत्मा को अपने आपको, ईश्वर को सत्य को पहचानें। इस पहचान के लिए किसी को साहित्य ज्ञान की आवश्यकता हो सकती है, किसी को भौतिक शास्त्र की, किसी को कला की। "[1]

हम अनेक उद्योग चला रहे है ये सारे उद्योग मेरे अर्थ में शुद्ध विद्याभ्यास है वे आजीविका के या दूसरे साधन भी हो सकते है। विद्याभ्यास के पीछे समझदारी, कर्तव्यपरायणता, सेवा भाव विद्यमान होता है। इसके कारण पाठ्यक्रम में विभिन्न प्रकार के विषय उन्होने रखे है जो निम्न है।

1. हस्त कौशल एवं उद्योग (कताई, बुनाई, बागवानी, कृषि, काष्ठकला, चर्मकार्य, पुस्तक कला, मिट्टी का काम, मछली पालन, ग्रह विज्ञान आदि।)

ALL ROUND DEULOPMENT SPIRITUAL FREEDOM - MOTHER TONGUE

1. एम. के. गाँधी - धर्मनीति

2. मातृभाषा

3. हिन्दुस्तानी (आजकल राष्ट्रभाषा हिन्दी उनके लिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।)

4. व्यावहारिक गणित (अंक गणित, बीज गणित, रेखागणित, नापतोल आदि)

5. सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र एवं समाज का अध्ययन)

6. सामान्य विज्ञान (बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान और ग्रह विज्ञान)

7. संगीत

8. चित्रकला

9. स्वास्थ्य विज्ञान (सफाई, व्यायाम एवं खेलकूद आदि)

10. आचरण शिक्षा (नैतिक शिक्षा, समाजसेवा एवं अन्य सामाजिक कार्य)

गाँधी जी ने पाठ्यक्रम को तीन कालों में बताया है जो इस प्रकार है :-

प्रथम काल :-

1. बालक और बालिकाओं को साथ साथ शिक्षा देनी चाहिए। बाल्यावस्था आठ वर्ष तक समझनी चाहिए।

2. उनका समय ज्यादातर शारीरिक काम में लगवाना चाहिए और वह काम भी शिक्षक की देखरेख में होना चाहिए। शारीरिक काम शिक्षा का एक विभाग समझा जाना चाहिए।

3. प्रत्येक बालक और बालिका का झुकाव परखकर उसे कार्य देना चाहिए।

4. प्रत्येक काम लेते समय उसका कारण उन्हें बता देना चाहिए।

5. बच्चा समझने लगे तभी से उसे साधारण ज्ञान दिया जाना चाहिए। यह ज्ञान अक्षर ज्ञान के पहले शुरू होना चाहिए।

6. अक्षर ज्ञान को लेखन (चित्र) कला का विभाग मानकर पहले बच्चे को रेखा गणित की आकृतियां बनाना सिखाना चाहिए और जब अंगुलियों पर उसका काबू जम जायें तब उसे अक्षर का उच्चारण सिखाना चाहिए।

7. लिखने के पहले पढ़ना सिखाना चाहिए। यानि वह अक्षरों को चित्र समझकर

उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र बनाये।

8. इस प्रकार शिक्षक से जवानी ज्ञान पाने वाले बच्चे को आठ वर्ष के अंदर अपनी शक्ति के हिसाब से बहुत अधिक ज्ञान मिल जाना चाहिए।

9. बच्चे को जबरदस्ती कुछ भी न सिखाया जाए।

10. जो कुछ वह सीखे उसमें उसे रस आना जरूरी है।

11. बच्चे को शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिए। खेल भी शिक्षा का आवश्यक अंग है।

12. बच्चों को पूरी शिक्षा मातृभाषा द्वारा होनी चाहिए।

13. बच्चों को हिंदी, उर्दू, का ज्ञान राष्ट्रभाषा के रूप में दिया जाना चाहिए। उसका आरंभ अक्षर ज्ञान के पहले होना चाहिए।

14. धार्मिक शिक्षा आवश्यक समझी जानी चाहिए वह बच्चे को शिक्षक द्वारा नहीं बल्कि शिक्षक के आचरण और उसके मुख से मिलनी चाहिए।

दूसरा काल :-

1. नौ से सोलह वर्ष तक का दूसरा काल है।

2. दूसरे काल में भी अंत तक बालक बालिकाओं की शिक्षा साथ साथ हो तो अच्छा है।

3. दूसरे काल में हिन्दू लड़को को संस्कृत की शिक्षा मिलनी चाहिए, मुसलमान को अरबी की।

4. इस काल में भी शारीरिक काम तो चलना ही चाहिए। अक्षर ज्ञान का समय आवश्यकतानुसार बढ़ा देना चाहिए।

5. इस काल में बालक के मां बाप का धंधा यदि निश्चित हो चुका जान पड़े तो उसे उस धंधे का ज्ञान मिलना चाहिए और उसे इस तरह तैयार करना चाहिए जिससे वह पैतृक धंधे द्वारा अपनी रोजी रोटी कमाना पसंद करे। यह नियम लड़की पर लागू नहीं होता।

6. सोलह वर्ष की उम्र तक बालक बालिका को दुनिया के इतिहास, भूगोल और वनस्पति शास्त्र, खगोल गणित, भूमिति और बीजगणित का सामान्य ज्ञान हो जाना चाहिए।

7. सोलह वर्ष के बालक बालिका को सिलाई, रसोई, आदि सीखना चाहिए।

तीसरा काल :-

1. सोलह से पच्चीस तक का समय मैं तीसरा काल मानता हूं। इस काल में प्रत्येक युवक या युवती को उसकी इच्छा और परिस्थिति के अनुसार शिक्षा मिलनी चाहिए।

2. नौ बर्ष के बाद शुरू होने वाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए अर्थात् विद्यार्थी शिक्षा पाते हुए ऐसे धंधों में लगा हुआ हो जिसकी आमदनी से पाठशाला का खर्च निकल आये।

3. पाठशाला में आमदनी तो शुरू से ही होनी चाहिए, पर पहले वर्ष में वह पूरा खर्च निकलने भर न होगी।

4. शिक्षकों की तनख्वाह मोटी नहीं हो सकती, पर उन्हें पेट भरने भर पैसा मिलना चाहिए। उनमें सेवावृत्ति होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के लिए चाहे जैसे शिक्षक से काम चला लेने का रिवाज निंद्य है शिक्षक मात्र को चरित्रवान होना चाहिए।

5. शिक्षक के लिए बड़े और खर्चीले मकानों की जरूरत नहीं है।

6. अंग्रेजी की पढ़ाई एक भाषा के रूप में होनी चाहिए और उसे शिक्षणक्रम में स्थान मिलना चाहिए। हिंदी जैसी राष्ट्रभाषा है वैसे अंग्रेजी का उपयोग परराष्ट्रों के साथ व्यवहार तथा व्यापार करने के लिए है।

(अ) प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम के विषय :-

मातृभाषा की शिक्षा :-

महात्मा गाँधी जी के अनुसार बच्चों की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। इसलिए मातृभाषा को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए। इसका कारण यह है कि अन्य भाषा से शिक्षण देने से बालकों के विचारों में अस्पष्टता आयेगी और अपनी जातीय संस्कृति, सभ्यता तथा अन्य विशेषताओं से अपरिचित रह जायेंगे। डॉ0 जाकिर हुसैन समिति का कथन है -

" मातृभाषा का उचित शिक्षण, समस्त शिक्षा का आधार है। प्रभावी ढंग से बोलने, परिशुद्ध एवं स्पष्ट रूप से पढ़ने व लिखने की क्षमता के बिना कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकता।.....सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि मातृभाषा बच्चों को उनकी सम्पन्न वंशानुगत संस्कृति तथा पूर्वजों के विचारों, भावनाओं एवं आकांक्षाओं से परिचित कराती है इस प्रकार यह सामाजिक शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है।"[1]

गणित की शिक्षा :-

गणित जो विद्यार्थी को अपने धंधे, घरेलु जिन्दगी के हिसाब किताब नाप तौल आदि समस्याओं को हल करने में सहायता देता है गणित विद्यार्थी के लिए आवश्यक विषय है जिसकी शिक्षा अवश्य देनी चाहिए इसलिये गणित विषय को आवश्यक रूप से पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

सामाजिक विषय :-

सामाजिक शिक्षा जिसमें भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र और देश विदेश की वर्तमान दशा का ज्ञान शामिल होता है। देश विदेश का इतिहास और भूगोल होना चाहिए, इसमें व्यावहारिक काम ये हो जैसे नक्शा बनाना, नक्शा देखना, चार्ट बनाना आदि। सामाजिक शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी पूरी दुनिया के कार्य कलापों से अवगत होता रहता है।

स्वास्थ्य विज्ञान :-

गाँधी जी बालकों को स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा पर जोर देते थे।

1. एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ - 127

शरीर में अस्वस्थता मालूम होने पर रोग को रोकने व इलाजों पर अमल करना चाहिए क्योंकि इन इलाजों पर अगर ठीक से अमल हो तो रोग ज्यादा मात्रा में स्वाभाविक रूप से ही अच्छे हो जाते है। आहर विहार की भूलों को दूर किए बिना सिर्फ हवा पानी के सुधार से रोग दूर करने की इच्छा करना शरीर को साफ पानी से धोकर मैले गमछे से पौंछने जैसा है। दवा के अलावा दूसरे वैज्ञानिक इलाज है जिनका प्रत्येक को ज्ञान होना चाहिए ये आसानी से और बिना खर्च के किये जा सकते हैं।

बच्चों को स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में जरूर ज्ञान देना चाहिए जिससे उनमें अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता आवें।

सामान्य विज्ञान शिक्षा :-

सामान्य विज्ञान में जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, प्रारंभिक अध्ययन, भौतिक संस्कृति तथा नक्षत्र शास्त्र के सामान्य तत्व निहित है। सामान्य विज्ञान के द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास होता है।

संगीत शिक्षा :-

संगीत की शिक्षा पर हिन्दुस्तान में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है संगीत चित्त के भावों को जागृत करने का बहुत बड़ा साधन है। और इस प्रकार सात्विक संगीत का आध्यात्मिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। बालक की इस महत्वपूर्ण प्राकृतिक शक्ति का सात्विक रीति से विकास करना चाहिए।

संगीत, कथा वार्ता, चित्रकला, नृत्य, नाटक, सिनेमा आदि कलायें यदि उचित सीमा में रहे तों वे जनसमाज के निर्दोष मनोरंजन ज्ञान प्राप्ति तथा भावी विकास के साधन हो सकती है। मर्यादा से बाहर चली जायें तो शराब, अफीम जैसे हानिकारक व्यसन बन जाती हैं।

आमतौर पर ऐसी कलाओं को जीविका का धंधा न बनाना चाहिए, बल्कि हर एक आदमी को इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपनी जीविका के धंधे के अतिरिक्त ऐसी निजी कला में भी दिलचस्पी ले सकें।

धार्मिक शिक्षा :-

इतना तो निश्चय है कि महात्मा गाँधी एक हिन्दू थे। इससे यह

ध्वनि निकलती है कि वह धर्म को मानते थे। अपनी आत्मकथा में गाँधी जी ने अपने को एक सनातनी हिन्दू कहा है। और वेद, उपनिषद,गीता, महाभारत आदि से उन्होने वहुत कुछ शिक्षा ली है। लेकिन वह अपने को केवल हिन्दू धर्म से ही जोड़े न रहे, उन्होने ईसाई और इस्लाम धर्म में भी शिक्षा ली है और जीवन में उन्होने उसे प्रयोग भी किया है। उन्होने सभी धर्मो का एक अपना अर्थ लिया है और उसके कारण हिन्दू, ईसाई, मुसलमान को एकर्थी समझा है। उन्होने लिखा है कि

"अगर मैं वाइविल या कुरान का जो अर्थ करता हूं उसके अनुसार मैं खिस्ती या मुसलमान कहा जाऊँ तो मुझे ऐसा समझे जाने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि तब हिन्दू, खिस्ती और मुसलमान एकार्थक शब्द होंगे। "

उनकी दैनिक प्रार्थना ही बताती है कि वह एक धार्मिक व्यक्ति थे, तो अवश्य ही वह धर्म शिक्षा के पक्ष में थे। गाँधी जी ने कहा है कि-

" धर्म के बिना जीवन बिना सिद्धांत का होता है और बिना सिद्धांत का जीवन बिना पतवार की नौका के समान है और जैसे बिना पतवार के नौका इधर उधर हिलती डुलती है और कभी निर्दिष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुंचती, उसी तरह मनुष्य भी बिना धर्म की सहायता के संसार के इस तूफानी समुद्र में हिलता डुलता रहेगा और अपने इच्छित लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकेगा। "

धर्म का रूप गाँधी जी ने अपने ढंग से रखा है उन्होने गीता का आधार भौतिक एवं सांसारिक अच्छाईयों को स्वीकार किया है। इसलिए धर्म को निष्काम कर्म एवं कर्तव्य के रूप में गाँधी जी ने माना है। समाज की मान्यताओं के पालन में धर्म होता है जिससे सत्य, प्रेम, न्याय, शांति और अनुशासन जैसे गुणों को अपेक्षा और ग्राह्ता होती है। गाँधी जी रूढ़िता, अंधविश्वास एवं कट्टरता को धर्म नहीं मानते । ईश्वर सत्य है, प्रेम है, अतः इनमें विश्वास और प्राप्ति के लिए प्रयत्न धार्मिक होता है। इससे स्पष्ट है कि सत्य वोध, प्रेमानुभाव सच्चा धर्म है। हिन्दूओं की परीक्षा तिलक, छापा, मंत्रोच्चार, तीर्थयात्रा और रूढ़ियों के पालन से नहीं होगी। धर्म के लिए त्याग करना कर्तव्य है लेकिन उस धर्म भावना का कोई मूल्य नहीं जो त्याग के योग्य न हो।

" हिन्दू धर्म केवल कुछ चीजों के खाने में नहीं है इसकी आत्मा तो है शुद्ध आचरण और सत्य अहिंसा का पालन।"[2]

---

1. "हिन्दू धर्म " - महात्मा गाँधी
2. यंग इंडिया - गाँधी जी

गाँधी जी ने नैतिकता को धर्म का सार बताया है इन्हें प्रदान करना धर्म शिक्षा है। उन्होने धर्म शिक्षा के महत्व पर लिखा है कि–

" यदि भारत को अपना आध्यात्मिक दिवालियापन घोषित नहीं करना है तो नवयुवकों के लिए धर्म शिक्षा सासांरिक (भौतिक) शिक्षा के समान ही जरूरी है।"[1]

धर्म शिक्षा गाँधी जी के विचार में केवल धर्म पुस्तकों का ज्ञान देने में नहीं होती बल्कि लोगों को यह बताने में है कि सबसे अच्छी वस्तु क्या है ? यह आत्म बोध एवं अपने आप में सद्गुणों के विकास से पूरी होती है। इस प्रकार की धर्म भावना का विकास कर्तव्यपरायणता एवं समाज और मानव सेवा से उत्पन्न होता है। इसका लक्ष्य जीवित सत्यों की अनूभूति है। इसके द्वारा उचित को करने अच्छाई को प्राप्त करने, साहस एवं चेतना धारण करने तथा दैवत्व की अनुभूति करने में सहायता मिलती है। इसलिए गाँधी जी का विचार है कि धर्म शिक्षा के अंतर्गत सभी धर्मो की सार्वभौमिक बातों को बताई जावें, सत्य अहिंसा का पालन कराया जावे। इस प्रकार की शिक्षा को वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं बिना किसी दबाव के देने के लिए कहते हैं, सम्भवतः इस विचार के कारण उन्होने अपनी शिक्षा योजना में प्रयत्क्ष रूप से इस शिक्षा को नहीं रखा है। धर्म शिक्षा के लिए चरित्रवान, शिक्षक होने चाहिए। ऐसे व्यक्ति बालकों के हृदय से सम्पर्क स्थापित करें, तभी संकीर्णता एवं कट्टरता दूर होगी। धर्म शिक्षा के साधनों में उन्होने नैतिक आचरण, मनन, जिज्ञासा, साधना एवं सहयोगी क्रियाओं को आवश्यक बताया है।

नैतिक शिक्षा :–

नैतिकता से तात्पर्य सामाजिक जीवन सम्वंधी नियमों का पालन करना ही नैतिकता है। गाँधी जी वालकों को नैतिक ज्ञान देना उचित समझते थे जिससे वह आने वाले जीवन में ऐसा व्यवहार करें जो नैतिकता से परिपूर्ण हो एक उत्तम चरित्र में वे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, निर्भयता, आदि गुणों का ज्ञान नैतिक शिक्षा के माध्यम से हो सकता है। इसलिए नैतिक शिक्षा को बालकों के लिए जरूरी मानते थे।

यंग इंडिया में महात्मा गाँधी ने लिखा है कि व्यक्ति अपने प्रारम्भिक शिक्षा के तथा पर्यावरण के प्रभाव रोक तो सकता है किन्तु समूल नष्ट नहीं कर सकता है –

---

1. But if India is not to declare spiritual bankruptcy] religious instruction of its Youth must be held to be ecessary as secular instruction. - " Gandhiji "

" वैरागी बनने के लिए महान प्रयत्न करके भी कोई व्यक्ति अपने पर्यावरण अथवा प्रारम्भिक शिक्षा के प्रभाव को नष्ट नहीं कर सकता है।"[1]

अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि व्यक्ति अपने पर्यावरण द्वारा नियंत्रित होता है। एम0 के0 बोस के शब्दों में -

" गाँधी जी स्व निर्देशन द्वारा जीवित रहना पसंद करते हैं न कि मात्र आदत से।"[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि महात्मा गाँधी जी मानव को नैतिक स्तर पर कार्य करते हुए जीवित रहने के लिए विशेष जोर देते हैं। वे पूर्ण स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करते हैं। विशेषकर उस स्वतंत्रता में भी विश्वास नहीं करते है जो मानव को स्वयं से अथवा परिवर्तित सुष्ट स्वभाव से पृथक करने के योग्य बनाती है, क्योंकि ऐसी स्वतंत्रता का अर्थ मात्र विप्लव हे। मनुष्य को अपने अधिकार क्षेत्र में ही स्वतंत्रता से त्रुटियों को सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी नैतिक स्तर ऊँचा होगा। गाँधी जी ने नैतिक शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनिवार्य माना है।

स्वावलम्बन सम्बंधी शिक्षा :-

महात्मा गाँधी ने लिखा है कि -

" आपको इस निष्ठा से काम करना होगा कि भारत वर्ष के गाँव की आवश्यकतायें क्या है ? तथा उनके अनुकूल इस शिक्षा को अनिवार्यतः स्वावलम्वी बनना ही होगा।"[3]

गाँधी जी का विचार था कि बेसिक स्कूल को अपना खर्च अपने आप निकालना चाहिए। गाँधी जी ने जिस समय यह बात कही थी उस समय की परिस्थिति के अनुसार उन्हें यही बात कहनी भी चाहिए थी। देश में निरक्षरता व्याप्त थी। निर्धनता के पाश में सम्पूर्ण देश जकड़ा हुआ था। गाँधी जी ने देखा कि देश को साक्षर बनाना तव तक कठिन हैजब तक कि स्कूल आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं बनते। इसीलिए उन्होने बेसिक शिक्षा में स्वावलम्वन को मुख्य स्थान दिया। किन्तु प्रारंभ से ही बेसिक शिक्षा के इस सिद्धांत का विरोध हुआ है। विरोध के कुछ स्पष्ट आधार है इनको देख लिया जाये -

1. यंग इंडिया - 30.1.30

2. बोस, एम. के. - स्टडीज इन गाँधीज्स, इण्डियन एसोसिएेलेड पब्लिसिंग कम्पनी कलकत्ता 1947 पृष्ठ 203

3. हरिजन - 18-9-37

1. शिक्षा में कमाने की प्रवृति का आना दुर्भाग्य की बात है। स्वावलम्बन सिद्धांतःहानिकारक है।

2. कोई उद्योग ऐसा नहीं है जिससे विद्यालय का सारा खर्च आ सके।

3. स्वावलम्बन सिद्धांत को अपनाने से उद्योग माध्यम न रहकर साध्य हो जायेगा।

4. बालकों की बनाई वस्तुओं में टूट फूट होना स्वाभाविक है। उद्योग के माध्यम से शिक्षा देने में कुछ और खर्च करने के लिए तैयार रहना है, खर्च निकालना तो बहुत दूर है।

5. बालकों की बनाई वस्तुएं अच्छी नहीं होगी। उनकी विक्री के लिए वाजार मिलना कठिन होगा।

6. कुछ अभिभावकों ने आपत्ति की कि ग्रामीण उद्योग धंधे सिखाकर बालकों के ज्ञान प्राप्त करने में वाधा डाली जा रही है।

7. स्वावलम्बन से बालकों का शोषण होगा।

इन आपत्तियों के कारण स्वावलम्वन के सिद्धांत में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। बेसिक शिक्षा के समर्थक भी अब यह मानने लगे हैं कि स्वावलम्बन का अर्थ पाठशाला का पूरा खर्च निकालना न होना चाहिए। किन्तु स्वावलम्बन के गुण का विकास करने के लिए कुछ न कुछ आय के लिए पाठशाला को प्रयत्न करना ही चाहिए।

स्वावलम्वन के इस परिवर्तित अर्थ को भारत सरकार ने भी "दी कन्सेप्ट आफ बेसिक एजूकेशन" में स्वीकार किया है। पूर्ण स्वावलम्बन अब आंशिक बन गया है। कुछ लोग इस आंशिक स्वावलम्बन का भी विरोध करते हैं किन्तु यदि बेसिक शिक्षा में आर्थिक तत्व को पूर्णरूपेण उपेक्षित कर दिया जायेगा तो बेसिक शिक्षा का बालक के जीवन के सम्वंध नहीं रहेगा, बालक हाथ के काम की ओर ध्यान नहीं देंगे, स्कूल के सामान के लिए अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता पड़ेगी और बालकों में स्वावलम्बन की भावना जाग्रत न हो सकेंगी। आजकल बेसिक शिक्षा में स्वावलम्बन का सिद्धांत आंशिक एवं मर्यादित रूप में ही माना जाता है।

नागरिक जीवन के कार्यकलाप :-

गाँधी जी का विचार था कि बालकों को नागरिक जीवन के कार्यो से जरूर अवगत कराना चाहिए। जिससे उनमें जीवन में ऐसे कार्य करने की जिज्ञासा उत्पन हो कि जिससे सभी का भला हों। सर्वोदय की भावना होनी आवश्यक है।

मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यकलाप :-

गाँधी जी बालकों में मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यो की शिक्षा पर बल देते थे। उनके अनुसार संस्कृति का सम्बंध आत्मा से होता है और वह मनुष्य के व्यवहार मे उत्पन्न होती है। वे मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने और उसकी आत्मा के विकास के लिए उसे मनोरंजन एवं सांस्कृतिक कार्यो की शिक्षा देना अनिवार्य समझते थे।

(ब) उच्च शिक्षा :-

भारतवर्ष के अधिकांश विद्यार्थी उच्च शिक्षा के पीछे इस तरह परेशान है जिसका कुछ कहना ही नहीं। इस प्रकार वे अपने स्वासथ्य को भी हाथ से खो वैठते है डिग्री प्राप्त कर लेने पर बेकारी की समस्या गहन बन जाती है।

महात्मा गाँधी के विचार ऐसे विद्यार्थियों को अवश्य ही प्रकाश देंगे -

"उच्च शिक्षा के बारे में कुछ समय पूर्व मैंने डरते डरते संक्षेप में जो विचार प्रकट किए थे उनकी माननीय श्री निवास जी ने समालोचना की थी, जिनका कि उन्हें पूर्ण अधिकार है। देशभक्त और विद्धान के रूप में मेरे हृदय में उनके लिए बहुत ऊँचा आदर है। इसलिए जब मैं अपने को उनसे असहमत पाता हूं। तो मेरे लिए हमेशा ही वड़े दुख की बात होती है। इतने पर भी कर्तव्य मुझे इस बात के लिए वाध्य कर रहा है कि उच्च शिक्षा के सम्बंध में मेरे जो विचार है उन्हें मैं पहले से भी अधिक पूर्णता के साथ फिर से व्यक्त कर दूं। जिससे कि पाठक स्वयं ही मेरे विचारों के भेद को समझ लें। "

अपनी मर्यादाओं को मैं स्वीकार करता हूं मैनें विश्वविद्यालय की कोई नाम लेने योग्य शिक्षा नहीं पाई है। मेरा स्कूली जीवन भी औसत दर्जे से अधिक अच्छा कभी नहीं रहा। मैं तो यही समझता था कि परीक्षा में किसी तरह उत्तीर्ण हो जाऊँ। स्कूल में विशेष योग्यता पाना तो ऐसी बात थी कि जिसकी मैंने कभी आकांक्षा भी नहीं की मगर फिर भी शिक्षा के विषय में जिसमें कि वह शिक्षा भी शामिल है जिसे उच्च शिक्षा कहा जाता है।

आमतौर पर मैं बहुत दृढ़ विचार रखता हूं और देश के प्रति मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि अपने विचार स्पष्ट रूप से सभी को मालूम हो जावें और उनकी वास्तविकता से सर्वसाधारण का परिचय हो जाये। इसके लिए मुझे अपनी भीरूता पर संकोच भावना को छोड़ना ही पड़ेगा जो लगभग आत्मदमन तक पहुंच गयी है। अब मैं अपने उन निष्कर्षो को बता दूं। जिन पर मैं कई बर्षों में पहुँचा हुआ हूँ और जब भी कोई अवसर मिला है उनको कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया है।

1. दुनिया में प्राप्त होने वाली ऊँची से ऊँची शिक्षा का मैं विरोधी नहीं हूँ।

2. राज्य को जहाँ भी निश्चित रूप से उसकी जरूरत हो, इसका खर्च उठाना चाहिए।

3. साधारण आमदनी द्वारा सम्पूर्ण उच्च शिक्षा का व्यय चलाने के मैं विरूद्ध हूँ।

4. मेरा यह निश्चय और दृढ़ विश्वास है कि हमारे कॉलेजों में साहित्य की जो इतनी भारी तथाकथित शिक्षा दी जाती है वह सब बिल्कुल व्यर्थ है और उसका परिणाम शिक्षित वर्गो की बेकारी के रूप में हमारे सामने आया है यही नहीं बल्कि जिन लड़के लड़कियों को हमारे कॉलेजों की चक्की में पिसने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी इसने चौपट कर दिया है।

5. विदेशी भाषा के माध्यम से, जिसके द्वारा भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है। हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुंचाया है अभी हम अपने इस जमाने के इतने सन्निकट है कि इस हानि का ठीक से निर्णय नहीं कर सकते और ऐसी शिक्षा पाने वाले को ही इसका शिकार और न्यायाधीश दोनो बनना है जो लगभग असम्भव सा काम है।

(स) अध्यापक शिक्षा :-

आज प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा योजना की श्रेष्ठता पुरानी शिक्षा व्यवस्था की अपेक्षा अधिक मानता है परन्तु परिणाम आशा के विपरीत उपलब्ध हुआ है। इसका मूल कारण अर्न्तदृष्टि एवं आवश्यक योग्यता युक्त अध्यापकों का अभाव ही माना जा सकता है। वेसिक शिक्षा योजना में शिक्षा रूचिकर एवं आसान बनाने का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु योग्य अध्यापकों के अभाव में ऐसा करना सम्भव नहीं हो पा रहा है। महात्मा गाँधी जी का क्थन है कि -

" नई तालीम के शिक्षक को गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित एक वुद्धिमान व्यक्ति की समस्त अच्छाईयों तथा योग्यताओं को अवश्य धारण करना चाहिए।"[1]

उन्होने पुनः कहा है कि -

" यदि वे सत्य और अहिंसा में विश्वास रखते हैं तो अपने कार्य को सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से सम्पादित और चुम्बक की भांति कठोरतम हृदय वाले व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। "[2]

वे पुनः कहते है कि अध्यापक के असीम धेय और -

---

1. पेरैमाइकेन पालैयम रिपोर्ट, पृष्ठ -36

2. तदैव

" प्रेम को भी छात्रों के प्रति धारण करना चाहिए केवल प्रेम ही नहीं बल्कि उन्हें वच्चों का आदर भी करना चाहिए।"[1]

महात्मा गाँधी जी की धारणा है कि अध्यापकों को -

" चरित्रवान और वालकों की आवश्यकताओं के प्रति उन्हें प्रेम एवं विश्वास के साथ विचार करना चाहिए। उन्हें ईमानदारी, वौद्धिकता और साहस के साथ तथा एक महान विश्वास से अपना कार्य पूरा करना चाहिए। "[2]

उसी क्रम में उनका यह भी कथन है कि -

" उन्हें अपने विद्यार्थियों का मातापिता भी वनना होगा और यह जानना होगा कि उनकी क्या आवश्यकतायें है, वे क्या चाहते हैं ? उसे उन्हें पूरा करना तथा प्रदान करना होगा।"[3]

महात्मा गाँधी ने यंग इंडिया में अध्यापक के उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य की ओर संकेत करते हुए कहा कि -

" उन्हें प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत इतिहास तथा उनके माता पिता के विषय में भी जानकारी रखनी होगी।"[4]

" उन्हें स्वयं स्वराज्य की भावना को धारण करना चाहिए और अपने क्षेत्र में उसका विकास करना चाहिए तथा अपने अपने कार्य को स्वार्थ रहित सेवाभाव से सम्पादित करना चाहिए। "[5]

जाकिर हुसैन के अनुसार एक आदर्श अध्यापक को हस्तकला का ज्ञान होना जरूरी है क्योंकि इस ज्ञान के अभाव में वह अपना कार्य उचित ढंग से नही कर सकता है। नयी तालीम के शैक्षिणिक प्रयोग में अध्यापक को नेता पथप्रदर्शक व सलाहकार होना चाहिए।

बर्धा योजना ने अखिल भारतीय शिक्षा परिषद और प्रांतीय शिक्षा

---

1. पेरैमाइकेन पालैयम रिपोर्ट, पृष्ठ -146
2. हरिजन 1-12-33
3. हरिजन 1-12-33
4. यंग इंडिया 7-8724
5. तदैव

परिषदों को अनिवार्य बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा की नूतन योजना को निर्मित करने के लिए बनाया था जिनके कार्यो का मुख्य सम्बंध –

" वैज्ञानिक अन्वेषण .... प्रगतिशील शिक्षण विधियों की खोज... ...अध्यापकों के नूतन स्तर तथा मानक उपलब्धि के प्रयोग.... से परिचित कराने के लिए निर्देशन करने से था। "[1]

ये समस्त कार्य शिक्षा की परिवर्तित अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं। जाकिर हुसैन कमेटी ने शैक्षिक निरीक्षण के कार्य को "उत्तम विशिष्ट कार्य" के रूप में मानते हुए निरीक्षकों में प्रशिक्षण की संस्तुति की थी। अतः अध्यापक को प्रशिक्षित भी होना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि महात्मा गाँधी प्रदत्त बुनियादी शिक्षा पद्धति की समस्त सफलता इस कार्य में संलग्न अध्यापकों पर ही पूर्णतः आधारित है। इस पद्धति में शिक्षक के अनुकरण एवं सम्पर्क द्वारा बच्चे के व्यक्तित्व के विकास की कल्पना की गई है। प्रातःकाल की प्रार्थना सभा से लेकर रात्रि तक शिक्षार्थी के समस्त कार्य शिक्षक की देखरेख में ही सम्पादित होते हैं। सामूहिक सफाई योजना, समवाय करना, प्रकृति व समाज से परिचित होना, इन सभी क्रियाओं का संचालन शिक्षक की देखरेख में सम्पन्न होते हैं। इसलिए क्रियाओं के संचालन की योग्यता शिक्षक में अवश्य होनी चाहिए। शिक्षण के साधन अपने आप में चाहे कितने ही शैक्षिणक एवं मनोवैज्ञानिक गुणों से युक्त क्यों न हो परन्तु सफल संचालन एवं उपयुक्त निर्देशन की क्षमता वाले शिक्षकों के अभाव में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

कुछ आलोचक यह मानते हैं कि बुनियादी शिक्षा पद्धति की शिक्षा भारत में सफल नहीं हो सकती क्योंकि इसके अनुरूप योग्य शिक्षकों का अभाव है इसलिए इस शिक्षा की सफलता के लिए निम्नलिखित गुण बुनियादी शिक्षा के शिक्षकों में होनी चाहिए –

1. व्यक्तित्व :–

एक शिक्षक का सर्वप्रथम गुण उसका सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व है। शिक्षा मनोविज्ञान का मन्तव्य है कि बालक में अनुकरण से सीखने की तथा अन्वेषण की प्रवृत्ति पाई जाती है। बालक का भविष्य सीखने तथा अन्वेषण की प्रवृत्ति पूर्व के अनुकरणों पर आधारित है। अनुकरण करके सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। परिवार का जिस प्रकार प्रभाव बालक के चरित्र व मन पर पड़ता है उसी प्रकार शिक्षक भी विद्यार्थियों के चरित्र व मस्तिष्क

1. बेसिक नेशनल एजूकेशन – पृष्ठ 43

को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। अतः शिक्षक को स्वस्थ, उच्च नैतिक चरित्र, विकसित मन और मस्तिष्क तथा श्रेष्ठ सामाजिक गुणों से युक्त होना चाहिए। चरित्र की सामाजिक लपेट व्यक्तित्व की अपेक्षा कहीं अधिक है। आर0 एम0 ओगडन के अनुसार :-

" व्यक्तित्व मनुष्य की आंतरिक जीवन की अभिव्यक्ति है तथा चरित्र उसकी क्रियाओं या सफलताओं की अभिव्यक्ति है।"[1]

विद्यार्थी पर शिक्षक के शुद्ध आचरण, सच्चरित्रता विश्वास, विचार, दैनिक व्यवहार, समय की पाबन्दी आदि का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। वेसिक शिक्षा के तीन प्रमुख कार्य है -

1. शिक्षण 2. निर्देशन 3. शासन।

इन कार्यो के लिए चरित्र की प्रधानता की आवश्यकता होती है। शिक्षक को ज्ञान ग्रहण करने की तीव्र भावना से इस वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील युग में सदैव जिज्ञासु बना रहना चाहिए। बिना इसके वह अपने सामयिक कार्य में सफल नहीं हो सकता है। अध्यापक को श्रव्य, दृश्य साधनों के प्रयोग करने की विधि, स्वाध्यायी तथा आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के अध ययन में रत होना चाहिए। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के शब्दो में -

" एक शिक्षक कभी सच्चाई के साथ नहीं पढ़ा सकता जवकि वह स्वयं नहीं सीखता हो।"[2]

शिक्षक को स्वयं प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के साथ अनुसंधान कार्य में लगे रहना चाहिए। विचारवान बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले अध्यापक ही श्रेष्ठ शिक्षक की कोटि में आते है। अतः धैर्य, निष्पक्षता एवं न्याय, सहयोगात्मक भाव, प्रेम और सहानुभूति, प्रसन्नता, मिलनसारिता, विनोद प्रियता मितभाषिता, श्रम व कर्म के प्रति निष्ठा, उच्च विचार, सरल जीवन के प्रति आस्था, उदारता, सनिद्धता, नेतृत्वशील आदि सामाजिक गुणों का होना वुनियादी शिक्षक में आवश्यक है।

2. मातृभाषा पर अधिकार :-

किसी विषय को बोधगम्य वही व्यक्ति वना सकता है जिसे मातृभाषा पर अधिकार होगा। पाठक एवं भाषा के मध्य अध्यापक एक कड़ी है। वालक सीखने के लिए सदा उत्सुक रहता है, भाषा का सम्पर्क ही उसकी इस प्यास की तृप्ति करता है। हिन्दी भाषा का ज्ञान

1. आर0 एम. ओगडन - साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ 350
2. रवीन्द्र नाथ ठाकुर

तथा उस पर अधिकार गाँधीवादी शिक्षा दर्शन में संलग्न एक सफल शिक्षक की महत्वपूर्ण विशेषता है। विषय को सरल भाषा में बोधगम्य बनाने की शिक्षक में योग्यता होनी चाहिए।

3. बेसिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों का ज्ञान :-

विद्यालय में पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों का बेसिक शिक्षक को पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे पाठ्येत्तर तथा पाठ्यवस्तु एवं हस्तकला का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। हिन्दी भाषा की विभिन्न विधाओं का इतिहास व भूगोल नागरिक शास्त्र तथा समाज विज्ञान का इतना ज्ञान हो कि वह हस्तकला द्वारा इनकी शिक्षा प्रदान कर सके।

4. कलात्मकता का ज्ञान तथा सृजन शक्ति का होना :-

शिक्षा पद्धति में लगे हुए एक शिक्षक को कलात्मकता का ज्ञान होना आवश्यक है। विषयों में निहित कला का पक्ष की वह पहचान कर सके। महात्मा गाँधी चाहते थे कि बालकों में सृजन शक्ति उत्पन्न हो। उन्हें ज्ञान व कर्म का स्पष्ट सम्बंध ज्ञात हो सके। इसलिए विद्यार्थियों में सृजनात्मक शक्ति का विकास करना चाहिए। वह तभी सम्भव होगा जब शिक्षक स्वयं सृजन शक्ति सम्पन्न हो।

5. आधुनिक शिक्षण पद्धतियों तथा श्रव्य दृश्य साधनों के प्रयोग का ज्ञान :-

आधुनिक मनोविज्ञान ने शिक्षण में अनेक विधियों की खोज की है। किस विधि को किस आयु के छात्रों के शिक्षण में प्रयोग किया जाये, इसका भी निर्धारण किया गया है। इसलिए बेसिक शिक्षा के शिक्षक को इनका ज्ञान होना अति आवश्यक है। हस्तकला को किस प्रकार सफल बनाया जाये किस प्रोजेक्ट का चुनाव किया जाये इन सबका सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान होना शिक्षक के लिए अति आवश्यक है। श्रव्य दृश्य साधनों को प्रयोग करने की विधि तथा उपयुक्त अवसर की जानकारी रखना भी आवश्यक है।

(द) स्त्री शिक्षा :-

भारत में स्त्रियों की शिक्षा एक बड़ी समस्या आज भी है। इसका कारण है कि उनकी सामाजिक स्थिति। समाज में पुरूष ने उन्हें केवल घर में रहने वाली, बच्चों को देखरेख करने वाली, एवं विषय वासना की पूर्ति करने वाली ही समझा है। इस दृष्टिकोण के रखने से स्त्री का विकास नहीं हो सका। अतएव सामाजिक बन्धनों ने उसे ऐसा ग्रसित किया है कि वह शिक्षा पाने में असमर्थ हो रही है। गाँधी जी ने स्त्री को पत्नि, माता, मानव निर्माता एवं

समाज का नेता माना है तथा ईश्वर की श्रेष्ठतम सृष्टि या रचना कहा है। इसलिए गाँधी जी उसकी दशा सुधारने में लगे और सफल भी हुए। गाँधी ने स्त्री पुरूष को समान माना है।

"दोनो के कार्यक्षेत्र के अलग अलग वँट जाने पर भी दोनों को लगभग एक ही समान के गुणों और संस्कृति की आवश्यकता होती है।" (गाँधी जी)

वह शिक्षा के द्वारा स्त्रियों को प्राचीन भारतीय नारियों (सीता, दमयन्ती, द्रोपदी, गार्गी, मैत्रेयी) के समान पुनः आदर्श स्वरूप बनाना चाहते थे। यही कारण था कि वह उन्हें आधुनिक शिक्षा, साहित्य, संगीत, एवं कला, चित्र, वेषभूषा श्रृंगार आदि से दूर चाहते थे क्योंकि इनके प्रयोग से वासना की उत्तेजना मिलती है और नैतिकता का ह्रास होता है। घर से स्त्री का सम्बंध अधिक है इसलिए स्त्री शिक्षा में घरेलू ज्ञान, बालकों की शिक्षा, उनकी सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिए। घर से बाहर भी स्त्री का कार्यक्षेत्र है। अतएव समाज में वह सेविका का कार्य करें। इसके लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जावे और वे समाज शिक्षा, ज्ञान, स्वास्थ्य, सफाई आदि का प्रचार करें। समाज सेवा के जीवन में बालिकाओं को आजीवन अविवाहित रहने का सुझाव भी गाँधी जी ने दिया है। इस प्रकार गाँधी जी स्त्री शिक्षा को उसी ढंग से चलाना चाहते थे जैसा कि लड़को की शिक्षा को, अंतर यह था कि उन्हें घरेलू शास्त्र भी बताया जावे। इस प्रकार शिक्षित स्त्री निश्चय ही परिवार, समाज और देश का सुधार कर सकती है। और देश को आगे बड़ा सकती है। इससे न केवल देश की प्रगति होगी प्रत्युत सम्पूर्ण मानवता का विकास होगा। उचित शिक्षा देकर गाँधी जी स्त्रियों को पति की गुड़िया तथा शादी करके बौनों को पालने का काम नहीं देना चाहते थे वह उन्हें लड़ने वाली वीरांगनायें, समाज की अग्रदूतियां, तथा संसार को हिला देने वाली देवियां बनाना चाहते थे।

(ई) प्रौढ़ शिक्षा :-

यह तो पूरी तरह निश्चित है कि भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या आज भी (75 प्रतिशत) अशिक्षित है, अतएव गाँधी जी ने शुरू में ही स्वीकार किया कि-

" मैं प्रौढ़ शिक्षा को उस साधारण अर्थ में जैसा हम लोग समझते है, नहीं लूंगा, बल्कि वह तो अभिभावकों की शिक्षा होगी जिससे वे अभिभावक अपने बच्चों के निर्माण में पर्याप्त उत्तरदायित्व निभा सकें।"[1]

तभी तो अभिभावकगण अच्छे परिवार बना सकते हैं। आगे चलकर

1. Vide " The Teacher's world " 4/2/1948 Quoted by M.S. Patel

गाँधी जी ने इसे एक राष्ट्रीय समस्या बना दी और प्रौढ़ शिक्षा को उन्होने व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से सम्बंधित किया जैसा कि बाद में स्वतंत्र भारत में पंचमुखी प्रोग्राम के जरिए ज्ञान, स्वास्थ्य, अर्थ, संस्कृति एवं सामाजिकता के विकास का प्रयत्न किया गया। इसलिए गाँधी जी जहाँ-जहाँ गये और रहे वहाँ-वहाँ उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के प्रकाश को विकीर्ण किया तथा स्त्री पुरूष के मस्तिष्क से अंधकार दूर किया, उनमें जागृति पैदा की उनमें चारित्रकता लाई और उन्हें अपनी सुप्त शक्तियों को अनुभव कराया ताकि वह अपना और देश का कल्याण कर सकें। गाँधी जी ने प्रौढ़ शिक्षा के पाठ्यक्रम में उद्योग व्यवसाय, सफाई और स्वास्थ्य रक्षा, समाज कल्याण, साक्षरता, बौद्धिक विकास, सामाजिक और नैतिक आदर्श, कार्य के प्रति उचित दृष्टिकोण भावात्मक एकीकरण, पारिवारिक वार्तों तथा संस्कृत से सम्बंध रखने वाली क्रियाओं को रखा। अस्तु उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा को अत्यंत व्यापक और औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनो ढंग का बनाया। वह तो प्रौढ़ शिक्षा के जरिए एक उच्चतर और दुखी जीवन की प्राप्ति कराना चाहते थे। उनका कहना था कि-

"मेरे विचार में सुखी होने का तथा शर्म करने का जो कारण है वह निरक्षरता उतना नहीं है जितना की अज्ञान। अतएव प्रौढ़ शिक्षा के लिए मुझे एक सावधानी से चुने गए पाठ्यक्रम द्वारा अज्ञान दूर करने के लिए दूसरा प्रोग्राम रखना चाहिए जिससे गाँव के प्रौढ़ व्यक्तियों के मन को शिक्षित किया जावे।"[1]

गाँधी जी का विचार है कि जनसाधारण की निरक्षरता भारत के लिए पाप औरलज्जा है और उससे देश का उद्धार करना चाहिए। यह कार्य प्रौढ़ शिक्षा का ही एक अंश है। इस शिक्षा में स्त्री पुरूष दोनो को शिक्षित करना चाहिए।

---

1. Vide " Gandhiji's Experiments in Education " Page 77- T. S. Avmashlingam

(ख) विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा – पाठ्यक्रम :-

विनोबा के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत :-

विनोबा भावे पाठ्यक्रम निर्धारण के विरूद्ध है। उनके विचार से पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा कार्यक्रमं पाठ्यक्रम बद्ध हो जाते है। उसमें समयानुकूल परिवर्तित सामाजिक मान्यताओं के अनुसार परिवर्तन की सुविधा नहीं होती। बेसिक शिक्षा द्वारा इस प्रकार की बहुत सी समस्यायें सुलझाई जा सकती है। इसका प्रमुख उद्देश्य ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना है जो सभी के लिए बोधगम्य और सुलभ हो। विशेषकर निर्धन व पिछड़े वर्ग के लोग अधिक से अधि -क लाभान्वित हो सके।

उपनिषदों में एक प्रश्न किया गया है कि छात्रों को क्या पढ़ाया जाये? उसी में इसका उत्तर भी दिया गया है कि इन्हें वेदों के वेद पढ़ाये जायें। विनोबा जी के अनुसार वेदों के पढ़ाने के बाद भी बाइविल अनपढ़ी रह जायेगी। यदि बाइविल भी पढ़ा दी जाये तो कुरान और धम्मपद आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ अनपढ़े रह जायेंगे। इस प्रकार एक दो या चार विषय पढ़ा देने के पश्चात भी बहुत से विषय रह जायेंगे। अतः छात्रों में स्वतः अध्ययन की प्रवृति विकसित की जावे उन्हें स्वयं का शिक्षक वनने योग्य बनाया जायें। शिक्षा संस्थाओं में कई भाषायें सिखाई जायें। परन्तु एक भाषा इस पूर्णता से सिखाई जाये कि छात्र इसका प्रयोग दूसरी भाषाओं को सीखने का माध्यम बना सकें। छात्रों को ज्ञान प्राप्ति का ऐसा गुरूमंत्र सिखाया जाये कि वे प्रत्येक भाषा, प्रत्येक विषय के स्वतः अध्ययन में समर्थ हो सके। नयी तालीम में शारीरिक परिश्रम की वात कही गयी है। वह केवल लर्निंग थ्रू डुइंग नहीं है यह तो एक विल्कुल ही मामूली शिक्षा पद्धति का विषय है नयी तालीम का विचार तो यह है कि अपने शरीर की आजीविका शरीर परिश्रम से प्राप्त करना धर्म है और नयी तालीम ब्रेड लेवर के सिद्धांत पर आधारित है।

ब्रेड लेबर का सिद्धांत :-

शरीर का पोषण शारीरिक श्रम से करना चाहिए इसी को ब्रेड लेवर का सिद्धांत कहते हैं। प्रत्येक शरीर को पोषण की आवश्यकता होती है ब्रेड लेवर के अनुसार शरीर श्रम द्वारा ही इस आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। यह नयी तालीम का आधारभूत सिद्धांत है।

विनोबा जी ने पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतों का आधार मुख्यतः

सर्वोदय की भावना से अविभूत होकर सत्याग्रह, अहिंसा, निर्भयता तथा चारित्रिक एवं नैतिक विकास का निर्माण है। विनोबा जी ने सत्याग्रह को स्पष्ट किया है इनके अनुसार सत्याग्रह : सत्य + आग्रह दो शब्दों से संयुक्त करके बना है। इसका अर्थ है सत्य का अवलम्बन। आज भारतवर्ष में सत्याग्रह प्रवृत्ति बहुत सामान्य हो गयी है। और किसी कार्य के होने पर इसका एक साधन के रूप में प्रयोग हो रहा है। परन्तु सत्याग्रह का वास्तविक उद्देश्य सत्य को आत्मसात करना, सत्य को ही जीवन व मरण का ध्येय बनाना है। सत्याग्रह के मार्ग पर चलने के लिए साहस व धैर्य की आवश्यकता होती है, यह एक ऐसी शक्ति है जिसे कोई व्यक्ति सुख दुख अनुभव के जीवन से अलग होकर ही प्राप्त कर सकता है। पाठ्यक्रम निर्माण में सत्याग्रह को लोककल्याण की भावना से रखना चाहिए। जिससे छात्रों में सत्याग्रह की प्रवृत्ति विकास करना नई शिक्षा नीति का प्रत्यक्ष व परोक्ष उद्देश्य होना चाहिए।

विनोबा भावे ने पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख आधार चारित्रिक एवं नैतिक विकास को भी माना है। किसी बालक का चरित्र ही उसके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग होता है। यद्यपि चरित्र के सर्वप्रमुख अंग का निर्धारण करना बहुत कठिन है फिर भी गीता के अनुसार निर्भयता मनुष्य के चरित्र का आवश्यक अंग माना गया है। यही निर्भयता का विकास शिक्षा व्यवस्था का ही नहीं वरन् राजनैतिक जीवन का अंग होना चाहिए। विनोबा भावे के विचार से छात्रों में निर्भयता लाने के लिए पाठ्यक्रम में शारीरिक श्रम को भी सम्मिलित करना आवश्यक है।

इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण का मुख्य आधार शिक्षा द्वारा छात्रों में ऐसी प्रवृत्ति विकसित करना जो अच्छे और बुरे का ज्ञान कराने में समर्थ हो। उस समय अध्यापक सत्य का अनुगमन अपने कर्तव्य के रूप में करते थे उन्होंने छात्रों को पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी कि वे उनके विचारों एवं कार्यो के वारे में स्पष्ट राय व्यक्त कर सकें। इस प्रकार छात्रों को विचार स्वतंत्रता देकर प्राचीन काल के अध्यापक छात्रों में निर्भयता का बीजारोपण करते थे। आज के अध्यापकों में भी कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति विकसित होनी चाहिए। जिससे वे छात्रों में निर्भयता लाने में सफल हो सके। विनोबा जी ने निर्भयता के अर्थ को और भी स्पष्ट किया है। निर्भयता से उनका तात्पर्य ऐसी परिस्थिति से है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति न स्वयं भयभीत हो और न दूसरों को भयभीत करें। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत का आधार अहिंसा, चारित्रिक विकास एवं निर्भयता आदि होने चाहिए।

पाठ्यक्रम के विषय :-

विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों की पाँचो ज्ञानेन्द्रियों का विकास होना चाहिए। सर्वप्रथम बच्चों को प्रकृति से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए। तत्पश्चात् ऐसी शक्ति विकसित करनी चाहिए जिससे वे भविष्य के बारे में भी अनुमान लगा सकें। पाठ्यक्रम के सम्बंध में विनोबा भावे शारीरिक एवं मानसिक विकास को अधिक महत्व देते हैं। इसके लिए विनोबा जी ने पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित करने की संस्तुति की है जो उनके नैतिक विकास के साथ साथ उनमें अनुशासन, आत्मसंयम, तथा व्यवहार कुशलता की प्रवृत्तियां विकसित करें। बालक बालिकाओं के शारीरिक विकास के लिए खेलकूद व्यायाम तथा अन्य बालकोचित कार्यक्रम होने चाहिए। विनोबा जी ने परिश्रम पर अधिक जोर दिया है। अवश्य ही आज श्रम की प्रतिष्ठा नहीं हैं यह बात बिना मूल्य सी मानी जाती है। श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए सप्ताह में एक घण्टा श्रम की शिक्षा का होना चाहिए।

दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर चार घण्टे अध्ययन, और चार घण्टे काम करने वाली नयी तालीम शुरू हो। गाँवों में एक घण्टा सुबह और एक घण्टा शाम शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। शेष समय वे खेत पर काम करेंगे। इस तरह उनकी अखण्ड शिक्षा की योजना की जाये।

शाम के वर्ग में प्रौढ़ आयेंगे। इनको कभी छुट्टी नहीं होगी इसमें निम्न विषय होंगे जो इस प्रकार है :-

1. मातृभाषा उत्तम रूप में सिखायी जायें।
2. गणित सिखाया जाये यानि उच्चतर (हायर) गणित नहीं गुणा भाग जोड़, बाँकी जो कुछ व्यवहार में लगता है वह शिक्षक द्वारा गणित सिखाया जाये।
3. सन्तों के भजन।

यदि हम इस तरह का कार्यक्रम चलायें तो वास्तव में शिक्षा बढ़ेगी। प्रौढ़वर्ग में लिखने के बजाय श्रवण को ज्यादा महत्व दिया जाये। ज्ञान का मुख्य साधन श्रवण है नेत्र तो गौण है। प्रातःकाल बच्चों को पढ़ना लिखना सिखाया जाये।

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा :-

विनोबा भावे के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आजं की

शिक्षा संस्थाओं की संकुचित भावनाओं को दूर करके एक ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना है जिसमें बालक बालिकाओं का सर्वांगीण विकास हो सके। नई शिक्षा व्यवस्था उनके शारीरिक, मानसिक व नैतिक विकास के साथ साथ उनके भावी जीवन यापन की समस्या का भी हल प्रस्तुत करें। इस प्रकार विनोबा भावे की शिक्षा विचारधारा लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत है।

हस्तकला की शिक्षा :-

विनोबा भावे की बेसिक शिक्षा विचारधारा के अनुसार शिक्षा के आधार के लिए किसी ऐसी आधारभूत हस्तकला का चुनाव करना चाहिए जिसके विभिन्न अंग बच्चों के उपयुक्त शिक्षा के साधन बनने योग्य हों। इनकी केवल साधन रूप में ही नहीं वरन् शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में उपयुक्तता होनी चाहिए। उपयुक्त शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो बालक बालिकाओं के सर्वांगीण विकास में सहायक हो, उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक हो। उनके शारीरिक एवं मानसिक सिद्धांत के साथ साथ भावी जीवन में उनकी जीविकोपार्जन का साधन बन सकें।

विनोबा भावे ने बेसिक शिक्षा पद्धति में हस्तकला के चुनाव को अधि-क महत्व दिया है उनके अनुसार सूत कताई एक ऐसी हस्तकला है जो इस स्तर के छात्रों के वय के अनुकूल हो सकती है इस हस्तकला में बालक बालिकाओं को शिक्षा के साथ साथ अर्थ की भी प्राप्ति होती है। अतः उनमें अधिकाधिक कार्य एवं अधिकतम उपस्थिति की प्रवृत्ति बनती है। इस पद्धति में विद्यालय एक ऐसी कार्यशाला के रूप में होता है जहां बालक बालिकायें अभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त करते हैं। अतः उनके आपसी व्यवहार तथा उनके कार्यो और विचारों में एकता पाई जाती है। तथा उससे तैयार की गयी वस्तुओं के सौन्दर्य एवं उसकी उपयोगिता समझने के गुण आ जाते हैं। जिससे उनकी सौन्दर्य परखने की शक्ति तथा विभिन्न वस्तुओं की उपयोगिता खोजने की प्रवृत्ति का विकास होता है। इस प्रकार बालकों में शिक्षा के साथ साथ सामाजिक एकता तथा राष्ट्रीयता के गुण विकसित होते हैं और बेसिक शिक्षा आज की एक प्रमुख समस्या का सफल निदान है।

विनोबा जी भारतीय समाज व समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे इसलिए वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी उद्योग में दक्षता प्राप्त करें किन्तु हस्तकला के चुनाव में उसकी उपयोगिता को अवश्य ध्यान में रखा जायें। वे व्यक्ति को कारीगर मात्र नहीं बनाना चाहते थे बल्कि उसे शिक्षा सम्पन्न उपजाऊ सदस्य बनाना चाहते थे।

यही कारण है कि विनोबा जी हस्तकला के चुनाव में उसकी शैक्षिक सम्भावनाओं की बात करते हैं।

डॉ0 जाकिर हुसैन समिति ने हस्तकला के रूप में कृषि, कताई, बुनाई, दफ्ती का काम, लकड़ी का काम और धातु के काम को शामिल करने की संस्तुति की है। वैसे प्रथमतः कताई बुनाई के लिए ही विस्तृत पाठ्यचर्या का समावेश किया गया था किन्तु बाद में कृषि, बागवानी, लकड़ी का काम व धातु के काम को भी शामिल किया गया।

इस प्रकार हम देखते है कि नयी तालीम का विद्यालय कार्य का प्रयोग व खोज करने का मंदिर है। वह क्रियाशीलता का केन्द्र है, न कि निष्क्रिय परम्परा रीति से पढ़ाये जाने वाले विषयों के अध्यापन का। हस्तकला पाठ्यक्रम का अतिरिक्त विषय नहीं है हस्तकला को शिक्षा का केन्द्र मानना गाँधी दर्शन का क्रान्तिकारी पहलू है। इसी आधार पर निम्न प्रयास हुये है।

आसाम में तिताबर स्थान पर रेशम के कीड़े पालने तथा मधुमक्खी पालने का व्यवसाय सफलता पूर्वक संचालित किया गया है।

" एक विद्यालय मशीन के यंत्रों के विकास के लिए खोला गया है।"

केरल में वेसिक हस्तकला के रूप में नारियल की जटाओं की वस्तुओं के निर्माण हेतु पाठ्यचर्या के विकास के सम्बंध में अध्ययन किया गया था। इस प्रकार हस्तकला के द्वाराभाषा, गणित, विज्ञान, कला, संगीत सभी विषयों को सम्बंधित करके पढ़ाने पर विनोवा भावे बल देते है।

नयी तालीम बालक की सृजनात्मक, रचनात्मक, भावनात्मक एवं रचनात्मक वृत्तियों के विकास का अवसर प्रदान करती है।

इस प्रकार हस्तकला के द्वारा बालक को स्वावलम्बी बनाने पर बल दिया गया जिससे बालक अपना जीविकोपार्जन कर सकें।

मातृभाषा की शिक्षा :-

मातृभाषा से तात्पर्य है कि मनुष्य के हृदय को ग्रहण होनेवाली जो भाषा होती है वही मातृभाषा है। मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा देनी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी भाषा जानता है जैसे एक गधे के वच्चे से अगर पूछा जाये " तुझे गधे की भाषा में ज्ञान देना चाहिए या सिंह की भाषा में ? तो वह कहेगा कि सिंह की भाषा चाहे जितनी

भी अच्छी हो मुझे तो गधे की भाषा ही समझ में आयेगी, सिंह की नहीं। " तो जाहिर है कि मनुष्य को समझ में आने वाली मातृभाषा है उसी के द्वारा शिक्षा होनी चाहिए। अब सवाल उठता है कि कितना समय इसके लिए लिया जाये। 4 साल, 5 साल ? कमीशन की रिपोर्ट है कि 10 साल से ज्यादा न हो। उन्होने जो निर्णय दिया है वह काफी अच्छा है मेरी राय है कि अगर पूरा प्रयत्न किया जाये तो पाँच साल में ही दी जा सकती है। मातृभाषा के द्वारा ही पहली से आखिरी तक पूर्ण तालीम दी जानी चाहिए।

संस्कृत की शिक्षा :-

विनोबा जी के अनुसार विद्यार्थियों को संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि संस्कृत के द्वारा ही वेदान्त, गीता, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं वास्तव में संस्कृत सीखने की प्रेरणा आध्यात्मिक दृष्टि से ही ज्यादा है। इसलिए विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा जरूर देनी चाहिए जिससे बालकों में आध्यात्मिकता की और भावना जाग्रत हो सके। संस्कृत भाषा हमारी बहुत बड़ी कमाई थी जो आज हम खो बैठे है विनोबा जी को विश्वास है कि अब संस्कृत को फिर से पुनर्जीवन प्राप्त होगा। इसके लिए स्कूलों में अनिवार्य भाषा के तौर पर संस्कृत को स्वीकार करने की जरूरत नही है। संस्कृत लाजिमी न हो लेकिन संस्कृत की शिक्षा लाजिमी तौर पर सीखें। राष्ट्रीय एकता के लिए संस्कृत का बहुत महत्व है। इतना ही नहीं भारत की आध्यात्मिक रचनाओं को पढ़ने के लिए भी संस्कृत पढ़नी होगी आज विदेशो में संस्कृत का जितना अध्ययन चलता है उतना और किसी का नहीं। संस्कृत का अध्ययन ऐच्छिक विषय के तौर पर बहुत ही गहराई से चलता है उससे हमें भी प्रकाश मिलता है।

स्वामी विवेकानंद जी कहते थे कि अगर आप चाहते है कि दुनिया में आत्मज्ञान फैले तो संस्कृत सिखाओ संस्कत पर उनकी बहुत श्रद्धा थी। विनोबा जी भी अपने अनुभव से कहते है कि संस्कृत में जो जादू है आत्मा को बल देने की जो ताकत है वह शायद ही दुनिया की दूसरी किसी भाषा में हो। संस्कृत में वेद, उपनिषद है। ब्रह्म सूत्र, सांख्यसूत्र, योगसूत्र है, रामायण महाभारत, भागवत पुराण अनेक भाष्य आदि असंख्य ग्रंथ पड़े है। उनमें आत्मा का विचार किया गया है उनमें मनुष्य को निर्भय बनाने की शक्ति है विचार स्वातन्त्रय की तो हद ही है। इसलिए संस्कृत बालकों को अवश्य ही पढ़ाना चाहिए जिससे उनमें आत्मबल बढ़े तथा आध यात्मिकता की तरफ रूझान हो।

इतिहास की शिक्षा :-

इतिहास की शिक्षा गलत दृष्टि बिन्दु से दी जाती है अतः इतिहास के रूप में पढ़ायी जाने वाली घटनायें भले ही सच हों, पर जन समाज की भूतकाल की स्थिति के बारे में गलत धारणायें उत्पन्न कराती है। राजवंशों की उथल पुथल और युद्धों का वर्णन राष्ट्र का इतिहास नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र का तो हो ही नहीं सकता। यह तो राष्ट्र शरीर पर उठ आने वाले फफोलों का इतिहास माना जायेगा। राष्ट्र जीवन में युद्ध नित्य जीवन नहीं बल्कि उल्कापात है। उसके नित्य जीवन में समझौता, भाईचारा, एक दूसरे के लिए कष्ट सहन और सहयोग होता है। उसके द्वारा होने वाला इतिहास बहुत गौण रूप में करते हैं हम जो पिछला इतिहास सिखाते है उसमें राजाओं के रागद्वेष पर आधारित लड़ाईयों की बात हमें छोड़नी होगी। यह समझना एक भूल है कि इतिहास राजा महाराजाओं के जीवन की सन् संवतवार घटनायें मात्र हैं। जिन राजाओं ने पंजाब पर राज्य किया, आज कोई पंजाबी उन्हें नहीं जानता, लेकिन गुरूनानक को सब जानते हैं। बंगाल के सेन और पाल राजाओं को कोई नहीं जानता चैतन्य महाप्रभु को सब जानते हैं। इसलिए इतिहास में इन महापुरूषों को महत्व का स्थान दीजिए आज का इतिहास यानि माँ बच्चो पर प्यार करेगी तो उसका कोई इतिहास नहीं लिखा जायेगा तो माँ का प्रेम, जो महत्व की बात है उसका कोई उल्लेख इतिहास में नही होता। मानव अपनी मानवता का इतिहास लिखता ही नहीं उसकी मानवता पर जितना प्रहार होता है उतना ही इतिहास में लिख देता है। इसलिए बच्चों को इतिहास की शिक्षा तो देनी चाहिए लेकिन मानव स्वभाव विरोध इतिहास की नहीं बल्कि मानवता के इतिहास की शिक्षा देनी चाहिए।

हमारा सारा का सारा प्राचीन इतिहास गौरवास्पद है इसलिए जिन्होंने हमारे जीवन पर प्रभाव डाला उन्हीं की जानकारी दी जानी चाहिए।

उदाहरणार्थ : ध्रुव तारे को लीजिए । ध्रुव नामक बालक के तपस्या की उस तपश्चर्या ने उस छोटे बच्चे को वहाँ आरूढ़ किया। इससे अधिक इतिहास का दर्शन इसमें से क्या मिलेगा ? फिर भी ध्रुव की जानकारी देना आवश्यक है।

विश्वामित्र के क्रुद्ध होने पर भी वशिष्ट क्रुद्ध नहीं होते थे। एक वार विश्वामित्र ने वशिष्ट का वध कर डालने की सोची और उन्हें मारने चल दिए। पूर्णिमा की रात थी। वशिष्ट की धर्मपत्नि अरून्धती चाँदनी में बैठकर पतिदेव से बातें कर रही थी विश्वामित्र छिपकर दोनों की बातें सुनने लगे। अरून्धती ने वशिष्ट से कहा " चाँदनी कितनी सुहावनी है। वशिष्ट बोले - ठीक विश्वामित्र की तपस्या जैसी अत्यंत मनोहर। वार्तालाप सुनते ही विश्वामित्र का क्रोध शांत हो

गया और एकदम सामने उपस्थित होकर उनहोने वशिष्ट को साष्टांग प्रणाम किया।

सारांश, हमें वशिष्ट का पूरा इतिहास नहीं चाहिए इतना ही इतिहास पर्याप्त है। इससे अनेक सदगुण हममें आयेंगे। जीवन पर उपकार करने वाले ऐसे लोगों की जानकारी होनी चाहिए। अनादि भूत और अनंत भविष्य के बीच वर्तमान कहां छिपा रहता है। उसका पता भी नहीं लगता। देखते देखते वह भूतकाल में समाविष्ट हो जाता है। इसलिए उसकी ओर देखने के बजाय कर्मयोग में उसका उपयोग कर लेना ही उसके प्रति मनुष्य का कर्तव्य है जो मनुष्य यह करता है वहीं सच्चा इतिहास है। काल पुरूष की चपलता, मनुष्य के शारीरिक जीवन की क्षणिकता और आत्मा की अमरता इनकी प्रतीति करा देना ही इतिहास का कार्य है। यह कार्य जिसके जीवन में ओतप्रोत है, जिसने वर्तमान का उपयोग किया उसी ने वास्तव में इतिहास को समझा।

संगीत की शिक्षा :-

विद्यार्थियों में आध्यात्मिक भावना पैदा करने के लिए और चित्त के विकास के लिए संगीत से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। संगीत की शिक्षा पर हिन्दुस्तान में बहुत कम ध्यान दिया गया है। संगीत चित्त के भावों को जागृत करने का बहुत बड़ा साधन है। सात्विक संगीत का आध्यात्मिक विकास में बहुत महत्व है। बालक की इस महत्वपूर्ण प्राकृतिक शक्ति का सात्विक रीति से विकास करना चाहिए। तुलसी, सूरदास आदि के उत्तम से उत्तम गीत, भजन, बच्चों को सिखाने चाहिए, न कि तरह तरह के गाने जिनमें अच्छे विचार नहीं होते अगर संगीत अच्छा नहीं है तो चित्त को विकृत कर सकता है, भ्रष्ट कर सकता है, यदि संगीत उत्तम है तो चित्त को उन्नत कर सकता है। इसीलिए विद्यार्थियों में संगीत की शिक्षा के माध्यम से भी अच्छे संस्कार डाले जा सकते हैं।

आहार विज्ञान :-

आहार विज्ञान से अभिप्राय कि मनुष्य अपने स्वस्थ शरीर के हिसाब से ही आहार ग्रहण करें। आहार में अधिक संयम की आवश्यकता होती है। इसमें उपवास और अल्पाहार को अधिक स्थान मिलना चाहिए। हमारा रसोई घर प्रयोगशाला होनी चाहिए। रसोई में कार्य करने वाले को यह ज्ञान होना चाहिए कि किस खाद्य पदार्थ में कितना उष्णांक है, कितनी चिकनाई है आदि उसमें यह सब समझने की शक्ति होनी चाहिए, कि किस उम्र के मनुष्य को किस काम के लिए कैसे आहार की जरूरत होगी।

स्वास्थ्य विज्ञान :-

शरीर में अस्वस्थता होने पर रोग को रोकने वाले उपचारों पर अमल करना चाहिए। इन उपचारों पर ठीक अमल हो तो रोग बहुत करके स्वाभाविक रूप से अच्छे हो जाते है दवा के अलावा दूसरे वैज्ञानिक उपचार है जिनका प्रत्येक को ज्ञान होना चाहिए। ये आसानी से और बिना खर्च के किए जा सकते हैं। स्वास्थ्य के लिए सबसे अच्छा उपचार है उपवास और उसके साथ केल्शियम तथा सूर्यस्नान आदि। यह देखा जाता है कि स्वच्छ और संयमी जीवन बिताने वाले को छूत के रोगियों के बीच में रहते हुए भी रोग नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि मनुष्य के रक्त में बाहरी जहरों को हटाने की बहुत ताकत होती है असंयम के कारण इस बल के घट जाने पर अस्वस्थ होते है। रोग के कारणों को रोकना स्वास्थ्य की पहली आवश्यकता है। इन इलाजों में भी पहला इन्द्रियों और मन के संयम के साथ स्वच्छ तथा उचित आहार विहार तथा यथेष्ट परिश्रम और नींद है। और दूसरा है साफ हवा, साफ पानी, साफ कपड़े, घर आंगन आदि की सफाई के द्वारा ही स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है।

स्वावलम्बन की शिक्षा :-

स्वावलम्बन की शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो विद्यार्थियों में स्वयं कुछ करने की क्षमता उत्पन्न कर सके। उनके चारो ओर ऐसा वातावरण होना चाहिए कि वे दूसरों पर आधारित न होकर खुद ही धीरे धीरे स्वावलम्बी बन जायें। शिक्षा की योजना ऐसी हो कि बालक 16 वर्ष का होने तक ज्ञान में स्वावलम्बी बन जाये। शिक्षाशास्त्र के ग्रंथ आदि सभी को अपनी भाषा में निजी प्रयासों से दूसरों की मदद के बिना स्वयं सीखे। अपने प्रयोग एवं सृष्टि से ज्ञान हासिल करे। जैसे भूमि में पानी होता है और खोदने पर बाहर आता है वैसे ही समाज और सृष्टि से खोद खोदकर ज्ञान तत्व निकाला जा सके। विद्या जीवन का आधार है विद्या तो जीवन की मुक्ति के लिए है। इसी मुक्ति को आजकल हम स्वावलम्बन कहते हैं। ज्ञान के विषय में विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाना है तो वे स्वयमेव प्रयोग करें। दूसरों के अनुभवों से और अपने अनुभव से ज्ञान प्राप्त कर सकें ऐसी शक्ति विद्यार्थी को देना ही शिक्षा का कार्य होना चाहिए। जिससे विद्यार्थियों में स्वावलम्बन की भावना का विकास हों।

धार्मिक शिक्षा :-

धार्मिक शिक्षा से अभिप्राय है ऐसी शिक्षा जिससे विद्यार्थियों के अन्दर धर्म के लिए आस्था उत्पन्न हो वह नास्तिक न बनकर आस्तिक बने। विनोबा जी की दृष्टि से सच्चा

धर्म शिक्षा साहित्य का विषय ही नही है चरित्र निष्ठा, ईश्वर विषयक श्रद्धा और देह से प्रथम आत्मा का मान, यही धर्म का सार है और वह सत्पुरूषों की संगति से ही मिलता है। इसलिए शिक्षकों को धार्मिक शिक्षण की योजना बनानी चाहिए। चित्त शुद्धि की तनिक भी परवाह न कर कुछ तांत्रिक आधारों और क्रियाकलापों से सीधे पुण्य हथियाने की कल्पनायें जो सभी धर्मो में रूढ़ है नष्ट होनी चाहिए। प्रत्येक बात अनुभव की कसौटी पर कस लेने की आदत बच्चों में डालनी चाहिए। अगर यह सब हो सके तो मैं समझूंगा (विनोबा जी) कि सम्पूर्ण धर्म शिक्षण मिल गया। इसीलिए बालकों में धार्मिक शिक्षण के द्वारा चित्त शुद्धि, चारित्रिक विकास, साधना आदि की भावना भी उत्पन्न हो सकती है। शिक्षा में धर्मो का प्रवेश हो, इस दृष्टि से केन्द्र सरकार ने एक समिति गठित की थी उसने सिफारिश की, कि शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थियों को सभी धर्मो का सार सिखया जाये। सेक्यूलरिज्म का अर्थ निरपेक्षता नहीं वास्तव में सर्व धर्मो के लिए समान भाव ऐसा उसका भावात्मक अर्थ होना चाहिए। धर्म के माध्यम से ही बालकों में संस्कारी भावना का विकास होना चाहिए।

व्यायाम की शिक्षा :-

विद्यार्थियों को व्यायाम की शिक्षा देना अनिवार्य होना चाहिए जिससे उनका शरीर हष्ट पुष्ट रहे एवं उन्हें पूरे समय ताजगी का अहसास हो। विनोबा जी ने व्यायाम शिक्षा को उद्योग के माध्यम से देना भी उचित समझा है। समवाय पद्धति उद्योग द्वारा ज्ञान देना चाहती है इसलिए जहां तक सम्भव होगा उसी में व्यायाम भी निकलेगा। तेजी के साथ 5-7 मिनट तक लगातार किए जाने वाले व्यायामों की अपेक्षा उद्योग में जो धीरे धीरे व्यायाम होता है उसका महत्व शरीर शास्त्र की दृष्टि से अधिक है । विनोबा जी ने उद्योग को ज्ञान से सम्बंधित कर शिक्षा देने की बात कही है। उद्योग में दोनो हाथों से अदल बदल कर काम करना चाहिए। कुछ समय खुली हवा में कसरत, वागबानी, निकट देखने का काम, दूर देखने का काम, कुछ देर मौन आदि उद्योग की सहायता से व्यायाम की शिक्षा देनी चाहिए। जिससे विद्यार्थियों में व्यायाम करने की भावना का विकास हों। विद्यार्थियों को सुबह शाम आधा घण्टा व्यायाम करना चाहिए। जल्दी सोकर जल्दी उठना यही जीवन का सूत्र बनाना चाहिए। रात में घण्टों तक अभ्यास करने के वदले व्रह्ममूर्त में चन्द घण्टे अभ्यास करना ज्यादा अच्छा है।

नई तालीम का पाठ्यक्रम :-

गाँधी विचार दोहन - किशोर लाल मशरूवाला

शिक्षा विचार - विनोबा

नई तालीम का पाठ्यक्रम से अभिप्राय उन विषयों से है तो नई तालीम के अन्तर्गत आते है। पाठ्यक्रम में गणित, भूगोल आदि विषय है तो ऐसे विषय तो विनोबा जी का कहना है कि दो चार हजार प्रस्तुत कर सकते हैं। लेकिन बाह्य विषयों की तालीम नहीं देनी चाहिए कुछ तालीम इन्द्रिय की कुछ देह की, कुछ वाणी की, कुछ चित्त की तालीम होनी चाहिए। ये ही तालीम के विषय हो सकते है। चित्त में जो विविध शक्तियां है उनके विकास की तालीम होनी चाहिए। गणित, भूगोल कितने घण्टे सिखाया जाये यही विचार होता है क्या गणित भूगोल अंग्रेजी सीखने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है इसके साथ हमारा क्या ताल्लुक है ? जितना लाभदायक है उतना हम सीखेंगे नाहक सारा गणित सीखना वेकार है एक उदाहरण के द्वारा समझाने की कोशिश की गई है।

एक मल्लाह था और एक गणितज्ञ था। दोनों एक नाव में जा रहे थे गणितज्ञ ने मल्लाह से पूछा गणित शास्त्र जानते हो ? मल्लाह ने कहा गणित क्या चीज है मैं नही जानता। प्रोफेसर ने कहा तेरी चार आने जिन्दगी बरवाद हो गयी फिर पूछा भूगोल शास्त्र मालूम है ? बोला भूगोल क्या बला है यह भी मैं नही जानता। उन्होने कहा तुम्हारी चार आने और जिन्दगी खत्म हो गयी। इतने में जोर से आँधी आयी, बहुत बड़ा तूफान आया। किश्ती डूबने की नौबत आयी तो मल्लाह प्रोफेसर साहब से पूछता है कि आपको तैरना आता है ? प्रोफेसर ने कहा ना यह तो मैं नही जानता। मल्लाह ने कहा कि मेरी तो चार और चार आठ आना जिन्दगी खत्म हुई, आपकी तो सौलह आने खत्म होने वाली है।

इस लेख से सीख लेनी चाहिए कि बालकों को सिर्फ किताबी कीड़ा न बनाकर उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के विषय का ज्ञान देना जरूरी है। इस प्रकार पाठ्यक्रम में ऐसे विषय सम्मिलित किये जायें जो बालकों को जीवन में आने वाली प्रत्येक जरूरी बातों का व्यवहारिक ज्ञान दे सकें। पाठ्यक्रम में ऐसे ही विषयों को स्थान मिलना चाहिए।
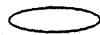
(ग) गाँधीजी एवं विनोबाजी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम संबंधी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

गाँधीजी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार :-

गाँधी जी के विचार से पाठ्यक्रम ऐसा नहीं होना चाहिए कि उससे केवल बौद्धिक विकास हो। बौद्धिक विकास तो केवल साहित्यिक विषयों से हो सकता है, किन्तु उनसे शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा की गयी है केवल मस्तिष्क को शिक्षित करने का प्रयत्न मात्र किया गया है।

गाँधी जी के अनुसार यदि पाठ्यक्रम में किसी क्राफ्ट को केन्द्रीय स्थान दिया जाये तो प्रचलित शिक्षा के दोष दूर हो सकते हैं। अतः उन्होने क्रियाप्रधान पाठ्यक्रम की योजना बनायी है।

इस नवीन पाठ्यक्रम में क्राफ्ट को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। क्राफ्ट कोई भी हो सकता है। भारतीय समाज की दृष्टि से कृषि, कताई, बुनाई, गत्ते का कार्य, लकड़ी का कार्य, धातु का काम आदि में से एक क्राफ्ट को चुना जा सकता है। कताई बुनाई की ओर विशेष रूचि प्रदर्शित की गयी है। इस पाठ्यक्रम में मातृभाषा को प्रमुख स्थान दिया गया। शिक्षा के माध्यम के रूप में भी मातृभाषा को ही स्वीकार किया गया। गणित, सामाजिक अध्ययन, ड्राइंग तथा संगीत भी पाठ्यक्रम में अवश्य समाहित होनी चाहिए। सामान्य विज्ञान को भी रखा गया। सामान्य विज्ञान में जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, प्राकृतिक अध्ययन, भौतिक संस्कृति तथा नक्षत्र ज्ञान के सामान्य तत्व निहित है।

गाँधीजी का यह पाठ्यक्रम प्राथमिक एवं लघु माध्यमिक स्तर तक ही सीमित है। उन्होने सर्वाधिक विचार इसी स्तर के लिए दिए हैं। गाँधीजी के अनुसार बेसिक शिक्षा पाठ्यक्रम :-

1. पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों का दर्पण है :-

हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम ही वह साधन है जो शैक्षिक प्रक्रिया के लिए आधार का निर्माण करता है। पाठ्यक्रम की प्रकृति एवं विषय सूची शिक्षा के उद्देश्यों पर आध -ारित है, क्योंकि यदि शिक्षा को सीखने सिखाने की प्रकृिया माना जाय तो शिक्षा में इसके लिए एक साधन की आवश्यकता पड़ती ही है। वह होता है पाठ्यक्रम। किसी भी शिक्षा योजना में उद्देश्यों

एवं पाठ्यक्रम में निकट का सम्बंध खोजना प्रायः कठिन नहीं है।

2. उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यक्रम में भी विविधता होती है :-

सन् 1944 के शिक्षा अधिनियम में यह प्रावधान किया गया था कि शिक्षा द्वारा -

" समाज के आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास को प्राप्त किया जाना चाहिए।"[1]

इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोत्तम विकास हेतु -

" उम्र, योग्यता और अभिरूचि को ध्यान में रखकर निर्देशन व प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम में विविधता का प्रावधान किया गया।"[2]

3. वर्तमान युग में पाठ्यक्रम को व्यवसाय परक बनाने पर बल :-

वर्तमान युग औद्योगिकी एवं तकनीकी का युग है। वैज्ञानिक उपलब्धि-यों ने लोगों के दृष्टिकोण को अर्थ परक बना दिया है इसलिए कार्य को जीवन में प्राथमिकता दी जाने लगी है। शिक्षा के अर्थ का सम्बंध वर्तमान जीवन के संदर्भ से लगाया जाने लगा है। हम देखते हैं कि इंग्लैंड का शिक्षा मंत्रालय भी इस बात पर बल प्रदान करता है :-

" सभी माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा कुछसीमा तक अवश्य प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि एक अच्छी शिक्षा सम्पूर्ण जीवन के लिए तैयार करती है न कि किसी विशेष जीवन पक्ष के लिए।..... माध्यमिक स्तर पर शिक्षा को पुरूष व स्त्री को समुदाय में कार्य करने के योग्य बनाना चाहिए ताकि वे जीविकोपार्जन के योग्य हो सकें।"[3]

इस प्रकार शिक्षा का कार्य हो जाता है कि वह व्यक्ति को अपनी रोटी रोजी कमाने की क्षमता पैदा करने के योग्य बनावें। मैकी साक्षरता की योग्यता को न तो शिक्षा मानते हैं और न तो इसके द्वारा मानव का सम्पूर्ण विकास होना।

महात्मा गाँधी भी मात्र साक्षरता को महत्व नहीं देते है। मैकी ने लिखा है कि :-

---

1. एजकेशन एक्ट, 1944 एव. एम. एस. ओ. सेक्शन -7
2. एजकेशन एक्ट, 1944 एव. एम. एस. ओ. सेक्शन -7
3. द न्यू सेकेण्ड्री एजूकेशन, एव. एम. एस. ओ. 1947 पृष्ठ 47

" केवल साक्षरता के साधनों पर आधिपत्य कर लेने से लोगों के रूख, प्रशंसाओं एवं आदर्शो में परिवर्तन न होगा और न तो इसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक तथा स्वास्थ्य की दशाओं में सुधार होगा। साक्षरता ग्रामीण लोगों की नगरी लोगों से न तो मिला पायेगी और न तो इससे भारत को संगठित ही किया जा सकता है।"[1]

हम देखते हैं कि मैकी जी साहित्यिक उदार शिक्षा को भारत के संदर्भ में अनुपयुक्त पाते हैं। सम्पूर्ण भारत की एकता को बनाये रखने में वर्तमान शिक्षा, साहित्यिकउदार शिक्षा, असमर्थ है। परन्तु हम देखते है कि महात्मा गाँधी जी की शिक्षा योजना का उद्देश्य एक भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण करना है।

पाठ्यक्रम क्रियाशील जिम्मेदार व्यक्तियों का निर्माण करने वाला होना चाहिए :-

महात्मा गाँधी जी चाहते थे कि नई सामाजिक व्यवस्था हेतु क्रियाशील जिम्मेदार सत्याग्रही के निर्माण हेतु पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए। इसीलिए इनके पाठ्यक्रम में शुद्ध साहित्यिक विषयों का अभाव पाया जाता है। लाभपद शैक्षिक क्रियाशीलन पर महत्व दिया जाता है। हम देखते हैं कि किसी शैक्षिक योजना के पीछे एक उपयोगी लक्ष्य होता है। बहुत पहले अरस्तु ने पाठ्यक्रम निर्माण के लिए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि -

" इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बच्चों को वे ही लाभप्रद वस्तुयें जो आवश्यक हो पढ़ाई जानी चाहिए। "[2]

हमारी वर्तमान पीढ़ी के शिक्षा परिषद द्वारा ऐसा ही संकेत किया गया है कि -

"..........पाठ्यक्रम को बच्चों में आदत, कुशलता, रूचि और भावनाओं को प्राप्त करने व विकसित करने के लिए प्रभावी होना चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी भलाई तथा जिस समाज में रहते हैं उसकी भलाई के लिए इसकी आवश्यकता होगी।"[3]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक बालक को अपनी भाषा बोलने, पढ़ने और लिखने की योग्यता अर्जित करनी चाहिए और उन्हें कुछ ज्ञान गणित तथा नापतौल करने

---

1. डब्लू . जे. मैकी, न्यू स्कूलस फार यंग इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस 1930 पृष्ठ 362

2. अरस्तू पॉलिटिक्स, 8,2

3. हैण्ड बुक ऑफ सजेशन्स, पृष्ठ 37

का भी होना चाहिए। इस प्रकार उन्हें एक ओर शारीरिक स्वास्थ्य के प्रशिक्षण के महत्व तथा दूसरी ओर व्यावहारिक एवं प्रायोगिक निर्देशन के महत्व से परिचित कराया जाना चाहिए। इसलिए प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से इन तत्वों को कभी नहीं निकलना चाहिए।

पाठ्यक्रम के विषयों का आधार ''उपयोगिता'' होनी चाहिए :-

इस सिद्धांत के आधार पर पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को शामिल किया जाना चाहिए जो उपयोगी हो, इसीलिए आज कल विद्यालयों के पाठ्यक्रम मे ज्ञान व कौशल की बृद्धि करने वाले विषयों को शामिल किया जा रहा है, क्योंकि हम जानते है कि बालकों को बाल्यावस्था में ही नहीं बल्कि बड़े होने पर भी इनकी उन्हें आवश्यकता होती है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर प्रयोजनवादी, उपयोगितावादी सिद्धांत तथा विद्यालयीय अध्ययन की विषय वस्तु को बालक की क्रियाशीलता, रूचि तथा अनुभव पर आधारित करने का पक्ष लेते हैं। किन्तु प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम महात्मा गाँधी जैसे आदर्शवादी को प्रभावित नहीं करता है क्योंकि महात्मा गाँधी की शिक्षा योजना का लक्ष्य प्रयोजनवादियों की भांति केवल भौतिक मूल्यों के लिए बालकों को योग्य बनाना ही नहीं है बल्कि पहले से जो मूल्य उनमें अन्तर्निहित है उनकी अनुभूति कराना है। सभी अन्य आदर्शवादियों की भांति महात्मा गाँधी का लक्ष्य नैतिक व्यक्ति निर्मित करना है जो एक सच्चे अर्थ में सामाजिक जीवन व्यतीत करने के योग्य होता है।

बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में आत्मा का, तथा मानव की उन क्रियाओं का जो इस विश्व में स्थायी महत्व की हैं का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, क्योंकि मानव आत्मा का शानदार प्रदर्शन है। इसलिए विद्यालयीय क्रियाओं में दो प्रकार के कार्यो की योजना होनी चाहिए। प्रथम वर्ग की क्रियाओं को विषय के रूप में नहीं रखा जा सकता है बल्कि उसे तो सम्पूर्ण विद्यालयीय पर्यावरण में व्याप्त होना चाहिए ताकि बालकों का चरित्र व व्यवहार उत्तम बनाया जा सके। दूसरे वर्ग की क्रियाओं में मातृभाषा, कला जैसे संगीत, हस्तकला जिसमें बढ़ई गीरी, बुनाई कताई, आदि रचनात्मक कार्यो को तथा विज्ञान गणित स्थानीय व सामयिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि को शामिल किया जाता है।

मानव भौतिक व सांस्कृतिक दोनो पर्यावरण से सम्बंध रखता है। सांस्कृतिक पर्यावरण उसी का होता है। प्रो० रस्क लिखते हैं कि :-

" सांस्कृतिक पर्यावरण विशेष रूप से उनका ही है।"[1]

1. राबर्ट आर. एस. रस्क, फिलासिफिकल ऑफ एजूकेशन यू. एल. पी. लन्दन 1928 पृष्ठ 96

इसलिए यदि बालक को मानव बनाना है तो उन्हें अपने वंश परम्परा के आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करना ही होगा।

हम जानते है कि मानव की आध्यात्मिक क्रियायें बोद्धिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक हैं। इन क्रियाओं का प्रयोग सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् की प्राप्ति के लिए होना चाहिए। बालक के व्यक्तित्व के समान रूप विकास हेतु हेतु शरीर रक्षा की क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करना पड़ेगा क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक बृद्धि के शिक्षा व व्यक्ति दोनो अपाहिज हो जाते हैं।

पाठ्यक्रम के विषय जीवन से सम्बंधित होने चाहिए :-

हम जानते हैं कि शिक्षा जीवन के लिए होती है। बालक के सम्पूर्ण जीवन का विकास करना शिक्षा का कार्य है। उसके शरीर, मन व आत्मा तीनों प्रकार की क्षमताओं का विकास ही सम्पूर्ण जीवन का विकास माना जाता है। शिक्षा व पाठ्यक्रम दोनों का जीवन से अभिन्न सम्बंध है। महात्मा गाँधी ने बालक की क्षमताओं के विकास हेतु हस्तकला केन्द्रित पाठ्यक्रम पर बल प्रदान किया है। हस्तकला का जीवन से घनिष्ट सम्बंध है। जीवन से सम्बंधित पाठ्यक्रम के मौलिक अर्थ की व्याख्या करते हुए एरिक जेम्स ने लिखा है कि :-

" जिन लोगों ने कभी व्यावहारिक क्रियायें नहीं की हैं..... वे जीवन से सम्बंधित तथ्य के प्रति स्पष्ट विश्लेषण करने में असमर्थ होते हैं परन्तु सत्य तो यह है कि सौन्दर्यात्मक अनुभव, दार्शनिक चिन्तन, नैतिक व राजनैतिक समस्याओं से सम्बंधित वाद विवाद जीवन से किसी भी प्रकार असम्बंधित नहीं है।...... यह सत्य है कि हमारे शिक्षा के पाठ्यक्रम का सम्बंध हमारे जीवन से होना चाहिए परन्तु जीवन से सम्बंधित कथन का गंभीर अर्थ है। इसका उतना महत्व नहीं है जितना कि इसे प्रयोग करने वाले अनुमान लगाते हैं। शिक्षा के आर्थिक व सामाजिक पहलू के अर्थ का चिन्तन करते हुए हमें आत्मा व मन के विकास के लक्ष्य को ध्यान में नही हटाना चाहिए। "[1]

उपर्युक्त कथन महत्वपूर्ण है किन्तु हम देखते हैं कि यह पाठ्यक्रम में "हस्तकला" के महत्व को कम नहीं करता है आज किसी भी पाठ्यक्रम की पुनरर्चना में विषयों का जीवन से सम्बंधित होने के विचार को अधिक महत्ता प्रदान की जा रही है। आज जीवन का अर्थ व्यवहारिक जीवन से अथवा कारीगर के जीवन से लगाया जाने लगा है। और भावनात्मक

---

1. एरिक जेम्स, एन ऐसे ऑफ द कन्टेन्ट ऑफ एजूकेशन, जार्ज हैरथ लन्दन, 1949 पृष्ठ 55

विचारों की अपेक्षा इसे विशेष महत्व दिया जा रहा है।

उत्तम प्रकार के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए :-

1. पाठ्यक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की छाप हो ताकि बालक जिस संसार में रहता है उसे समझ सके।

2. विद्यालयीय पाठ्यक्रम की शिक्षा से बालकों को सामुदायिक जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव हो।

3. पाठ्यक्रम के विषयों द्वारा जीवन के महान कार्यो एवं आदर्शो को उद्घाटित करने की खोज की जाये।

हमने गत पृष्ठों में देखा है कि महात्मा गाँधी का शिक्षा का उद्देश्य हस्त, मस्तिष्क एवं हृदय की संस्कृति के विकास पर बल देने के कारण पाठ्यक्रम में तीन आर (पढ़ना लिखना एवं गणित) की अपेक्षा तीन एच से सम्बंधित विषयों को शामिल किया गया है। सन् 1953 के माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन का कहना है कि :-

" माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य अच्छे नागरिक बनाने के लिए प्रशिक्षित करना है ताकि देश के नवयुवक आर्थिक विकास और समाज की पुनर्रचना करने में अपनी भूमिका को प्रभावी ढंग से अदा कर सकें।"[1]

आगे पुनः कहा गया है कि शिक्षा को चाहिए कि वह विद्यार्थियों में :-

" स्पष्ट चिन्तन एवं नये विचारों को ग्रहण करने की योग्यता का विकास करें।"[2]

मुदालियर प्रतिवेदन के अनुसार सामाजिक जीवन के लिए जिन गुणों को बालकों में विकसित करना चाहिए वे हैं -

" अनुशासन, सहयोग, सामाजिक संवेदनशीलता और धैर्य।"[3]

देशभक्ति की भावना के विकास के साथ साथ सर्वाधिक महत्व की वस्तु है :-

" उत्पादनशीलता, तकनीकी एवं व्यावसायिक दक्षता।"[4]

---

1. मुदालियर रिपोर्ट, पृष्ठ 5

2. मुदालियर रिपोर्ट, पृष्ठ 24

3. वही, पृष्ठ 25

4. वही, पृष्ठ 27

का विकास करना। शिक्षा का कार्य

"विद्यार्थियों में क्रियात्मक शक्तियों को उद्घाटित करना है ताकि वे अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक विरासत की प्रशंसा कर सकें और अवशिष्ट समय में आनंद उठा सके।"[1]

महात्मा गाँधी के विचार मुदालियर आयोग से मेल खाते हैं किन्तु महात्मा गाँधी के विचारों में नवीनता यह है कि इन्होने उपर्युक्त विचारो में सत्य, अहिंसा और प्रेम को और जोड़ दिया है। बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्रियाशीलन को विशेष महत्व दिया गया है। हमने देखा है कि महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बंधी विचार सन् 1937 में "हरिजन" नामक पत्रिका में प्रकाशित हो रहे थे। इनके विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। इनके क्रान्तिकारी विचारों को कार्यरूप में परिवर्तित करने के लिए जाकिर हुसैन समिति ने 2 दिसम्बर 1937 में बुनियादी शिक्षा के निम्नलिखित सिद्धांत स्वीकार किए। वे हैं :-

मूल उद्योग द्वारा सात बर्षीय निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा :-

महात्मा गाँधी की मान्यता थी कि -

" मैं समझता हूँ कि हम लोग उच्च शिक्षा की समस्या व प्रश्न को कुछ दिनों के लिए टाल सकते हैं किन्तु प्राथमिक शिक्षा की समस्या को एक क्षण के लिए भी नहीं टाल सकते हैं।"[2]

उनका विचार था कि शिक्षा को बिना अनिवार्य बनाये आर्थिक, सामाजिक उन्नति नहीं होगी। शिक्षा में रचनात्मक कार्य को इसलिए वे महत्व देते हैं ताकि पढ़े लिखे नवयुवक नौकरी के लिए मुहताज न बनें।

उनका कथन है कि -

" मैं सर्वप्रथम बच्चों को उपयोगी हस्तकला सिखाऊँगा। ताकि जिस समय से वह शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करें, उस समय से उत्पादन करना भी शुरू कर दें।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी जी उपयोगी क्रियाशीलन को महत्व देते हैं। समाज का सम्पूण्र कार्यक्रम तीन भागों में विभाजित है।

---

1. मुदालियर रिपोर्ट, पृष्ठ 28

2. एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन , पृष्ठ 96

3. एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन , पृष्ठ 4

1. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन करना।

2. समाज को व्यवस्थित करना।

3. प्रकृति के साधनों की खोज करना।

इसलिए महात्मा गाँधी जी का पाठ्यक्रम उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित, एवं भौतिक परिवेश केन्द्रित है। इसी लिए वे प्राकृतिक परिवेश को ध्यान में रखकर उद्योग चुनाव के लिए बल देते हैं महात्मा गाँधी जी का :-

" विश्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा से मस्तिष्क एवं आत्मा का सर्वोच्च विकास होगा। हस्तकला यंत्रवत नहीं सिखाई जायेगी बल्कि उसकी शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से दी जायेगी। बालक हस्तला के प्रत्येक प्रक्रिया के कारण को समझता जायेगा।"[1]

विनोबा जी के माध्यमिक स्तर तक पाठ्यक्रम सम्बंधी विचार :-

विनोबा भावे के अनुसार शिक्षा द्वारा बालक बालिकाओं की पाँचो ज्ञानेन्द्रियों का विकास होना चाहिए। तत्पश्चात शक्ति विकसित करनी चाहिए जिससे वे भविष्य के बारे में भी कुछ अनुमान लगा सकें। पाठ्यक्रम के सम्बंध में विनोबा भावे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को अधिक महत्व देते है इसके लिए उन्होने पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित करने की संस्तुति की है जो उनके नैतिक विकास के साथ साथ उनमें अनुशासन आत्मसंयम तथा व्यवहार कुशलता की प्रवृत्तियां विकसित करे। बालक बालिकाओं के शारीरिक विकास के लिए खेलकूद व्यायाम तथा अन्य बालकोचित कार्यक्रम होने चाहिऐ।

विनोबा भावे पाठ्यक्रम निर्धारण के विरूद्ध है। उनके विचार से पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा कार्यक्रम पाठ्यक्रमबद्ध हो जाते हैं। उसमें समयानुकूल परिवर्तित सामाजिक मान्यताओं के अनुसार परिवर्तन की सुविधा नहीं होती। बेसिक शिक्षा द्वारा इस प्रकार की बहुत सी समस्यायें सुलझाई जा सकती है। इसका प्रमुख उद्देश्य ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना है जो सभी के लिए बोधगम्य और सुलभ हो। विशेषकर निर्धन व पिछड़े वर्ग के लोग अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें। एक प्रकार से बेसिक शिक्षा निर्धन एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए विशेष उपयोगी व्यवस्था है।

---

1. हरिजन - 18-9-32

नई शिक्षा नीति के संदर्भ में पाठ्यक्रम की समीक्षा :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के भाग तीन में हमारे संविधान में निहित राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के संकल्प को दुहराया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का एक मूल मंत्र है कि एक निश्चित स्तर पर प्रत्येक शिक्षार्थी को बिना किसी जाति पाँत, धर्म स्थान या लिंग भेद के लगभग एक जैसी शिक्षा उपलब्ध हो। इसके लिए 1968 की नीति में अनुशंसित सामान्य स्कूल प्रणाली सम्पूर्ण देश में 10+2+3 की समान शैक्षिक संरचना तथा लगभग समान पाठ्यक्रम लागू करने की नीति वास्तव में सराहनीय है।

समान पाठ्यक्रम के अंतर्गत एक सामान्य केन्द्रित पाठ्यक्रम होगा जिसमें भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, संवैधानिक उत्तरदायित्व तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बंधित अनिवार्य तत्व शामिल होंगे। इन बिन्दुओं को प्रत्येक विषय में पिरोकर राष्ट्रीय मूल्यों को प्रत्येक व्यक्ति के चिन्तन एवं जीवन का हिस्सा बनाने का प्रयास किया जायेगा। जिसकी आज नितांत आवश्यकता है इन राष्ट्रीय मूल्यों में हमारी समान सांस्कृतिक धरोहर, धर्म निरपेक्षता, लोकतंत्र, स्त्री पुरूषों के बीच समानता, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्व, पर्यावरण संरक्षण तथा वैज्ञानिक विधियों का अधिक से अधिक प्रयोग आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम के एक हिस्से में लचीलापन होगा जिसे स्थानीय परिवेश एवं आवश्यकताओं के अनुसार उसे ढाला जायेगा राष्ट्रीय शैक्षिक व्यवस्था के अन्तर्गत बसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सहअस्तित्व की भावना के विकास पर उसमें बल दिया जायेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक माहौल ओर जन्म के आधार पर उत्पन्न पूर्वाग्रहों और कुठांओं को दूर करना है इसके लिए शिक्षा के समान अवसर प्रदान के साथ साथ ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिल सके। सामान्य केन्द्रित पाठ्यक्रम के माध्यम से समानता की मूलभूत अनुभूति कराई जायेगी। प्रत्येक चरण पर शिक्षा का न्यूनतम स्तर निश्चित होगा। विद्यार्थियों को देश के विभिन्न भागों की संस्कृति, परम्पराओं और सामाजिक व्यवस्थाओं को समझने का समुचित अवसर प्रदान किया जायेगा। उसके लिए भाषा का विकास तथा बहुभाषी शब्दकोषों का प्रकाशन आदि कार्यो पर बल दिया जायेगा।

माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर सभी विषयों की सामान्य जानकारी हेतु

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक मूल्यांकन - डॉ. सियाराम यादव (प्रवक्ता) बी. एड. विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर (चमोली उ. प्र.)

पाठ्यक्रम का पुनर्निधारण एक स्वागत योग्य कदम है। व्यवसायोन्मुख शिक्षा आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है लेकिन इसके लिए आवश्यक है श्रम के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण उत्पन्न करने की। इससे पूर्व माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण का हमें बहुत अच्छा परिणाम नहीं मिल सका है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं, टेक्नीकल स्कूलों एवं पॉलीटेकनिक आदि से निकले हुए छात्र की सामान्य शिक्षा प्राप्त छात्रों के साथ ही रोजगार की पंक्ति में खड़े देखे जाते हैं। गति निर्धारण (नवोदय) विद्यालयों की स्थापना के पीछे विशिष्ट प्रतिभा एवं अभिरूचि वाले बच्चों को अपनी योग्यता के आधार पर बिना भेदभाव के आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करना बताया गया है।

नई शिक्षा नीति द्वारा छात्रों में स्वच्छता, सच्चाई, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा, प्रेम, करूणा, परिश्रम न्याय तथा साहस आदि गुणों के विकास पर बल दिया गया है। स्वच्छता सम्बन्धी अभियान के लिए अध्यापक स्वयं विद्यालय लगने के पूर्व स्वच्छता कार्यक्रम में सम्मिलित हो। इसी प्रकार बच्चों के सम्मुख सत्य, अहिंसा, प्रेम के आदर्श प्रस्तुत किए जायें। छात्रों के साथ किसी प्रकार का पक्षपात पूर्ण व्यवहार न किया जाये। जिससे न्याय और ईमानदारी के प्रति बच्चों का विश्वास बना रहे। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जिसका अर्थ है कि राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक विषयों में सभी नागरिकों को चाहे वे किसी भी जाति, धर्म व लिंग के हों समान अधि-कार प्राप्त होंगे। लेकिन जैसा कि हम जानते है कि धर्म और नैतिकता दोनो का घनिष्ट सम्बंध है धर्म में जो पुण्य है वही नैतिकता है। अतः विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा न देकर आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा को पाठ्यक्रम में रखने की व्यवस्था है जिससे सभी धर्मो का जो निचोड़ है उसकी शिक्षा दी जा सके। अतः छात्रों की दिनचर्या में सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की भावनाओं को महत्व दिया जाये। नई शिक्षा नीति में माध्यमिक सतर तक के पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा पर भी बल दिया गया है क्योंकि पर्यावरण प्रदूषण एक ज्वलंत समस्या है जिसके प्रति सजगता का विकास करना है। विद्यालय में अध्यापक स्वयं भी प्रदूषण नियंत्रण की ओर ध्यान दें। वाद विवाद प्रतियोगिता, गोष्ठी, सभा का आयोजन कर छात्रों को इस समस्या के प्रति सतर्क किया जाये।

प्राकृतिक संसाधनों का शोषण भी आज भी एक भीषण समस्या है नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत हमें छात्रों को यह भी सिखाना है कि प्राकृतिक सम्पदा का कितना महत्व है अतः नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत छात्रों में हमें ऐसे नैतिक मूल्यों का विकास करना है जिससे छात्र हरे भरे वृक्षों और उनको काटने से रोकने में रूचि लें यह सभी नई शिक्षा नीति ने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है।

अध्याय : षष्ट

शिक्षण पद्धति

(क) गाँधीजी के अनुसार शिक्षण पद्धति :

गाँधीजी की शिक्षण पद्धति के आधारभूत सिद्धांत, महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि, उद्योग के साथ समन्वय, प्राकृतिक वातावरण से समन्वय, सामाजिक वातावरण से समन्वय, वाचन विचार एवं कर्म द्वारा सीखना, शिक्षण विधि में स्वभाषा का का माध्यम, भाषा ज्ञान, राष्ट्र भाषा, अंग्रेजी भाषा, कुछ अन्य विषयों की शिक्षा प्रक्रिया, नये बच्चे की शिक्षा प्रक्रिया, विशेष वर्ग के लिये शिक्षा प्रक्रिया।

(ख) विनोबा जी के अनुसार शिक्षण पद्धति :

परिश्रम द्वारा सीखना, केवल पद्धति, परिशेष पद्धति, समवाय पद्धति, समुच्चय पद्धति, संयोजन पद्धति, ग्राम्य पद्धति, सह शिक्षा, उद्योग द्वारा शिक्षा, उद्योग द्वारा शिक्षा, सातत्व योग का अभ्यास, साधर्म्य-वैधर्म्य प्रक्रिया, मल विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, प्रसंग के अनुसार पाठ, प्रत्यक्ष जीवन द्वारा ज्ञान, इतिहास-भूगोल की एकता, छोटे बच्चों के लिये शिक्षण, स्थूल से सूक्ष्म की ओर ज्ञान।

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

महात्मा गाँधी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा, विनोबा जी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा, महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा

शिक्षण पद्धति

(क) गाँधी जी के अनुसार शिक्षण पद्धति :-

गाँधी जी की शिक्षण पद्धति के आधारभूत सिद्धांत :-

गाँधी जी ने गीता दर्शन को ही आज के परिप्रेक्ष्य में आज की भाष में मनुष्य को समझाने और उसे उनके जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है। अतः गीता औ सर्वोदय की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, और आचार मीमांसा में मूलभूत समानता होना स्वाभाविक है जो अन्तर है वह केवल भाषायी है इस भाषायी अंतर के आधार पर हम गीता दर्शन के मूल सिद्धांत को सर्वोदय दर्शन के संदर्भ में निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं।

1. यह ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित है।
2. इन्द्रिय ग्राह्य यह जगत वास्तविक है।
3. आत्मा परमात्मा का अंश है।
4. मनुष्य ईश्वर की. सर्वश्रेष्ठ रचना है।
5. मनुष्य का विकास उसके स्वयं के कर्मो पर निर्भर करता है।
6. मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति है।
7. आत्मानुभूति के लिए भक्ति सर्वश्रेष्ठ साधन है।
8. भक्ति का वास्तविक स्वरूप मानव सेवा (सर्वोदय) है।
9. सर्वोदयी होने के लिए एकादश व्रतों का पालन आवश्यक है।

गाँधी जी का सर्वोदय दर्शन, दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्माण्ड को ईश्वर द्वारा प्रकृति से निर्मित मानती है। और यह मानती है कि यह भौतिक जगत वास्तविक है। यह आत्मा को ईश्वर का अंश और ईश्वर को जगत का निर्माता मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है जो भक्ति एवं एकादश व्रत पालन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

बेसिक शिक्षा का उद्देश्य है अच्छा नागरिक बनाना। व्यक्ति को

स्वावलम्बी बनाना, व्यक्ति का चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास करना।

इस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक परिपार्श्व में सम्यक विकास करना तथा साथ-साथ समाज की उन्नति करना ही उस शिक्षा का ध्येय है। बेसिक शिक्षा के सिद्धांत जिसे बहुतों ने उसकी विशेषता भी कहा है निम्न है -

1. राष्ट्र के प्रत्येक बालक बालिका को 7 वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का सिद्धांत
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने का सिद्धांत।
3. शिक्षा का केन्द्र वातावरण से सम्बंधित उत्पादक हस्तकौशल को बनाने का सिद्धांत।
4. शिक्षा को स्वभावलम्बी बनाने का सिद्धांत।

अक्टूबर सन् 1937 में नवीन शिक्षा पर विचार करने के लिए वध र्‍ा में शिक्षाशास्त्रियों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के सभापति गाँधी जी थे। गाँधी जी ने शिक्षा सम्बंधी अपने विचार इस सम्मेलन में व्यक्त किये। सम्मेलन ने इस विषय पर पर्याप्त विचार विमर्श किया और कुछ प्रस्ताव पारित किए। यही प्रस्ताव बेसिक शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत है बेसिक शिक्षा योजना के आधारभूत सिद्धांत निम्न है -

1. प्रथम सात वर्ष तक देश के सभी बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दी जावे।
2. शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को रखा जाये।
3. बच्चे की सम्पूर्ण शिक्षा का केन्द्र कोई शिल्प हाथ का काम हो।
4. सम्मेलन यह आशा करता है कि शिक्षा की इस प्रणाली से शनैः शनैः शिक्षकों का वेतन भी निकल आयेगा।

महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि :-

गाँधी जी ने जिस नवीन शिक्षा योजना का विचार जनता के समक्ष रखा वह शिक्षण विधि नितांत नवीन है। प्रचलित शिक्षण विधि में अध्यापक एवं छात्र में कोई सम्पर्क नहीं रहता। अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते है इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति के विपरीत गाँधी जी ऐसी शिक्षा प्रक्रिया को लाना चाहते थे जिसमें छात्र और शिक्षक के बीच की खाई कम हो ओर छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में न रहकर सक्रिय अनुसंधानकर्ता निरीक्षणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता के रूप में हो।

शिक्षण विधि में गाँधी जी महत्वपूर्ण परिवर्तन चाहते थे कि शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो। गाँधी जी ने शिक्षा की विधि के सम्बंध में कुछ विचार यत्र तत्र प्रकट किये है उनके अनुसार निम्न विधियों का प्रयोग शिक्षा में होना चाहिए।

गाँधी जी धार्मिक होने के साथ साथ बहुत व्यावहारिक भी थे उन्होने मनोविज्ञान का अध्ययन तो नहीं किया था पर ऐसा लगता है कि वे व्यावहारिक मनोविज्ञान के पण्डित थे। शिक्षण के क्षेत्र में वे सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे। उनके अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव से सीखना ही उत्तम सीखना होता है। गाँधी जी ने क्राफ्ट को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया है और इसकी शिक्षा केवल सैद्धांतिक ज्ञान देने से पूरी नहीं होती प्रयुक्त उन्हें तो करके ही सीखा जा सकता है। इस प्रकार क्रियात्मक विधि से क्राफ्ट की शिक्षा दी जावे जिसमें सैद्धान्तिक एवं निर्माणात्मक ज्ञान मिले। (क्रियात्मक विधि का दूसरा रूप खेल द्वारा शिक्षा विधि है इसको साथ साथ ही प्रयोग किया जाना चाहिए। रचनात्मक कार्य करते हुए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयोग प्रदर्शन एवं निरीक्षण विधियों की सहायता भी लेनी पड़ती है अस्तु इन विधियों का भी शिक्षा में प्रयोग करना चाहिए।

मौखिक विधि के प्रयोग की संस्तुति गाँधी जी द्वारा दी गई है एवं इसके अंतर्गत कई विधियों को सम्मिलित करते है। जैसे प्रश्नोत्तर विधि, तर्क विधि, व्याख्यान विधि, कथा कहानी विधि। क्राफ्ट के साथ अन्य विषयों का ज्ञान देने की बात है जैसे भाषा, इतिहास, भूगोल आदि। अतः यह आवश्यक है कि इन विभिन्न विषयों की पढ़ाई के साथ विभिन्न कक्षाओं के अनुसार उपर्युक्त विधियों को यथा आवश्यकता प्रयोग किया जाये।

अनुकरण विधि के प्रयोग के लिए भी गाँधी जी ने संकेत किया है। गाँधी जी के अनुसार बच्चे अनुकरण से जल्दी सीखते है अतएव माता पिता और अध्यापक ऐसे आदर्श उपस्थित करें जिनको बच्चे सहज में स्वीकार कर लें।

सहयोगी विधि का प्रयोग क्राफ्ट की शिक्षा के लिए तो बहुत जरूरी है क्योंकि क्राफ्ट की शिक्षा में अध्यापक एवं विद्यार्थी तथा विद्यार्थी एवं विद्यार्थी को एक साथ काम करना पड़ता है। अन्यथा शिक्षण कार्य अधूरा होता है इसके लिए आवश्यक है कि परस्पर सहानुभूति हो तथा अधिक से अधिक सहयोग दिया जाये।

सह सम्बंध की विधि के लिए बेसिक शिक्षा में अधिक जोर दिया गया है क्राफ्ट शिक्षा को केन्द्र बनाया जाये और अन्य विषयों को उससे सह सम्बंधित कर दिया जायें

इसका तात्पर्य यह है कि प्रमुखतः क्राफ्ट को ध्यान में रखकर ज्ञान दिया जाये तथा भाषा, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सभी विषय क्राफ्ट के सन्दर्भ में ही पढ़ाया जायें।

अंत में शिक्षा देने के लिए संगीत के प्रयोग के सम्बन्ध में गाँधी जी का विचार है। उन्होने हरिजन पत्र में लिखा था कि शारीरिक ड्रिल हस्तकौशल आदि में संगीत का प्रयोग किया जाये जिससे शिक्षा में रूचि उत्पन्न हो और उसकी गुरूता दूर हो सके। नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा के लिए भजन गवाये जावें इससे अनुशासन भी रखा जा सकता है। श्रवण मनन और निदिध्यासन की प्राचीन विधियों में भी गाँधी जी का विश्वास मिलता है उनके अनुसार विचार के लिए यह अत्यंत आवश्यक है उन्होंने कहा है कि मेरी दृष्टि में विचार करने की कला सच्ची शिक्षा है और विचार के लिए श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की आवश्यकता है।

गाँधी जी ने शिक्षा की जो नवीन योजना भारत के समक्ष रखी उसमें श्रम को अध्यात्मिक एवं नैतिक महत्व प्रदान किया गया है शिल्प के द्वारा बालक को गीता में वर्णित निष्काम कर्म के महत्व से परिचित करना चाहते थे।

महात्मा गाँधी जी की मान्यता थी कि ज्ञान की सम्भावनाओं की कोई सीमा नहीं है इसलिए हस्तकला द्वारा समस्त ज्ञान प्रदान नहीं किया जा सकता है। फिर भी वे समस्त शिक्षा हेतु शिक्षा प्रक्रिया को तकली से आरम्भ करना चाहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में तकली -

" शैक्षिक सम्भावनाओं के दृष्टिकोण से कामधेनु है।"[1]

तकली के द्वारा शिक्षा प्रदान करने के महत्व को प्रतिपादित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा है :-

" तकली मुझे सबसे ज्यादा इसलिए जँचती है कि इसे छोड़कर अन्य धंधे के लिए हमारे पास और कोई सामान मौजूद नहीं है, तकली को न ज्यादा खर्च की गरज है न सर अंजाम की।"[2]

इससे प्रकट है कि "तकली" को उद्योग के रूप में मानकर समस्त शिक्षा प्रदान करने से कई फायदे हैं। एक तो इसमें कम लागत लगती है मानव जाति की प्रथम खोजों में से सूत कातना एक हस्तकला रही है। इस प्रकार "तकली" द्वारा शिक्षा प्रारम्भ करने का तात्पर्य होगा जाति के पूर्व अनुभव से शिक्षा आरम्भ करना। महात्मा गाँधी बालकों को यह बताना

1. हरिजन - 18-2-39

2. वर्धा सम्मेलन में दिये गये महात्मा गाँधी के भाषण में , 22-10-1937

चाहते है कि प्रारम्भिक दिनों में हमारे जीवन में तकली का क्या महत्व था, ऐसा करने से छात्र तकली के इतिहास से भिज्ञ होगों तथा साथ ही हस्तकला के रूप में तकली का किस प्रकार प्रयोग हुआ। इसके आधार पर छात्रों को ईस्टइंडिया कम्पनी की स्थापना अथवा इसके पूर्व के मुस्लिम युग के इतिहास से प्रारम्भ कर भारतीय इतिहास का संक्षिप्त परिचय कराया जा सकता है तथा यह भी ज्ञान दिया जायेगा कि एक व्यवस्थित प्रक्रिया द्वारा धीरे धीरे भारतीयों के इस मूल हस्तकला को किस प्रकार नष्ट किया गया।

महात्मा गाँधी केवल उद्योग या हस्तकला के रूप में ही इसकी शिक्षा देना नहीं चाहते थे बल्कि इसके माध्यम से सम्पूर्ण शिक्षा देना चाहते थे। गाँधी जी का कथन है कि :-

" इस तकली का सबक हमारे विद्यार्थी का प्रथम पाठ होगा, जिसके जरिए वे कपास का, लंकाशायर का और अंग्रेजी राज्य का बहुत कुछ इतिहास जान जायेंगे..... यह तकली कैसे चलती है, इसका क्या उपयोग है और इसके अन्दर क्या क्या ताकत पड़ी हुई है सो सब खेल खेल में ही बालक जान लेता है।"[1]

इस प्रकार महात्मा गाँधी एक मनोवैज्ञानिक की भांति खेल विधि की भी वकालत करते हैं। महात्मा गाँधी जी के अनुसार तकली के माध्यम से :-

" कपास की उपज से लेकर कपड़ा बुनने तक की प्रत्येक प्रक्रिया को कपास की चुनाई, बिनौला निकालना, धुनाई, बुनाई कताई, धागा लपेटना नपाई तकली की तकनीकी के रूप मेंसमझना चाहिए और इतिहास व गणित को इससे सम्बंधित किया जा सकता है। "[2]

महात्मा गाँधी का विचार है कि -

" तकली द्वारा थोड़ा गणित का ज्ञान भी कराया जा सकता है क्योंकि तकली पर जो सूत वह कातता है अगर उस सूत के तार उससे गिनवाये जाये और पूछा जाये कि कितने तार काते हैं तो धीरे धीरे इसके अंदर से उसे गणित का भी ज्ञान कराया जा सकता है।"[3]

महात्मा गाँधी का यह दृढ़ विश्वास था कि वर्णमाला की शिक्षा तथा

1. वर्धा सम्मेलन में दिये गये महात्मा गाँधी के भाषण में , 22-10-1937

2. हरिजन - 11-06-38

3. वर्धा सम्मेलन में दिये गये महात्मा गाँधी के भाषण में , 22-10-1937

पढ़ने लिखने की शिक्षा से बालक का प्रशिक्षण प्रारम्भ करना उनकी बौद्धिक शक्ति के विकास में अवरोध डालना है। इसलिए इतिहास, भूगोल व गणित तथा कताई की कला के प्रारम्भिक ज्ञान के बिना महात्मा गाँधी जी बालकों को वर्णमाला का ज्ञान देना नहीं चाहते हैं। इनकी इस प्रकार की व्यवस्था में " लॉ ऑफ रेडीनेस " तैयारी का नियम लागू होता है। इस प्रकार महात्मा गाँधी मनोवैज्ञानिक क्षण के ज्ञाता प्रतीत होते हैं। हम देखते है कि महात्मा गाँधी किसी भी मनोवैज्ञानिक से कम नहीं है। बालक के सीखने की गति की तीव्रता को देखकर ही उसे कला का ज्ञान देना चाहिए। कला का ज्ञान हस्त लेख पर प्रभाव डालता है इसीलिए वे सुलेख को महत्व देते हैं।

" सुलेख को मैं सुन्दर कला मानता हूं, वर्णमाला की लिखावट को बालकों पर लादकर तथा इसके द्वारा उनकी शिक्षा को प्रारम्भ करके हम सुलेख की हत्या करते हैं।"[1]

इस प्रकार महात्मा गाँधी की शिक्षा योजना की सम्पूर्ण प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक आधार पर टिकी हुई है तथा सारी अधिगम प्रक्रिया एक उद्देश्य पूर्ण क्रियाशीलन के साथ साथ विद्यालयीय शिक्षा आनन्द की वस्तु हो जाती है।

बेसिक शिक्षा में समवाय का बहुत महत्व है क्योंकि यहां ज्ञान व कर्म में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। बेसिक शिक्षा में हाथ के कर्म के साथ साथ मानसिक व बौद्धिक कार्य को ही केवल स्थान नहीं दिया गया है बल्कि जीवन की ठोस परिस्थितियों और क्रियाओं के द्वारा ज्ञान प्रदान करने की व्यवसथा की गई है। शिक्षा विशेषज्ञों ने अनेक प्रविधियों द्वारा विषयों में सह सम्बंध स्थापित करने का प्रयास किया है। हरवर्ट ने पूर्व ज्ञान के सिद्धांत, जिलर ने इतिहास, पार्कर ने प्रकृति विज्ञान, फ्रोबेल ने स्वयं क्रिया तथा जॉन डिवी ने प्रोजेक्ट के माध्यम से विभिन्न विषयों में सह सम्बंध स्थापित करने के सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं।

महात्मा गाँधी ने बेसिक शिक्षा पद्धति के पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण विषयों को किसी एक मूल उद्योग को केन्द्र में रखकर पढ़ाने पर बल दिया है। इसी उद्योग के माध्यम से भाषा, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि विषयों को सह सम्बंधित करके शिक्षा प्रक्रिया चला करती है।

उद्योग के साथ समन्वय :-

बेसिक शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सम्पूर्ण शिक्षा किसी उद्योग के द्वारा होती है। बेसिक शिक्षा में उद्योग की शिक्षा न होकर उद्योग द्वारा शिक्षा होती है। हाथ के काम के माध्यम से शिक्षा दी जाती है अतः हाथ का काम केवल माध्यम है अतः बेसिक

1. हरिजन - 05-6-37

स्कूल को कारखाना नहीं समझना चाहिए।

हाथ के कार्यो में तीन मुख्य है कातना, बुनना, खेती का कार्य और मिट्टी का कार्य। गाँधी जी के अनुसार इन तीन कार्यो से मानव जीवन का परिचय बहुत पुराना है।

प्राकृतिक वातावरण के साथ समन्वय :-

महात्मा गाँधी का विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति प्रकृति से जितना ही दूर रहता है वह उतना ही असंतोष और चिन्ताओं से युक्त रहता है। जीवन मे शांति के लिए प्रकृति से निकट सम्पर्क रखना नितांत आवश्यक है। शांतिमय जीवन का स्तर जीवन यापन के ढंग व प्राकृतिक नियमों के सामजंस्य के स्तर के अनुसार निर्धारित होता है। महात्मा गाँधी ने मनुष्य की तुलना वनस्पतियों से की है जिस प्रकार वनस्पतियां भूमि से अलग होकर स्वस्थ व हरित नहीं रह सकती उसी प्रकार व्यक्ति भी प्राकृतिक वातावरण से अलग होकर संतुष्ट और प्रसन्न नहीं रह सकता है। अतः प्रत्येक् व्यक्ति का उस मिट्टी से उचित सम्पर्क होना आवश्यक है। जिस पर उसने जन्म लिया और बड़ा हुआ है गाँधी जी का मिट्टी से तात्पर्य प्रारम्भिक प्राकृतिक वातावरण विशेषकर खेतों और उद्यानों से है जोकि उत्पादन में योगदान देते हैं। परन्तु समन्वय से वह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्रत्येक बालक या विद्यार्थी कृषि कार्य ही करें। अन्य कार्य करते हुए भी विद्यार्थी कृषि कार्य से समन्वय बनाये रखें यही आदर्श सर्वोदय मितव्ययता का मूल आधार है।

महात्मा गाँधी जी के अनुसार वास्तविक शिक्षा प्रकृति की गोद में किसी ऐसे वातावरण में ही सम्भव है जहां के प्राकृतिक दृश्य, स्वच्छ और शीतल वायु, प्रफुल्लित एवं हरित वनस्पतियां,सूरज और चांद तारे आकाश आंदि सभी मनुष्य को स्वास्थ्य एवं स्फूर्त्ति प्रदान करते हैं। नगरों में जहां अधिकांश शिक्षा व्यवस्थायें केन्द्रीकृत है ऐसे वातावरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती है यह वातावरण आवश्यकता के विपरीत एवं प्रतिकूल है। शिक्षा व्यवस्था साधारण एवं स्वाभाविक जीवन के जितने समीप होगी, उतना ही जन जीवन के लिए उपयोगी होगी। इस प्रकार शिक्षा के लिए प्राकृतिक वातावरण की व्यवस्था और शिक्षा द्वारा जनजीवन का प्रकृति से सम्पर्क के प्रयत्न अवश्य होने चाहिए गाँधी जी केअनुसार शिक्षण पद्धति में प्राकृतिक वातावरण को महत्व देना चाहिए।

सामाजिक वातावरण सें समन्वय :-

महात्मा गाँधी के अनुसार बालक को इस प्रकार की शिक्षा देनी

चाहिए जिससे बालक सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य करना सीख जायें। उनका व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि वह प्रत्येक परिस्थिति में अपने को उपयोगी सिद्ध कर ले। गाँधी जी ने समाजिक वातावरण में सामंजस्य के लिए सत्य, अहिंसा अस्तेय आदि मार्गो को अपना साधन बनाने पर जोर दिया है।

वाचन विचार एवं कर्म द्वारा सीखना :-

गाँधी बालकों को कर्म द्वारा शिक्षा पर जोर देते थे। उनके अनुसार बालक को क्रियाशील होना चाहिए गीता के यज्ञ शब्द को उन्होने परोपकारी एवं लाभदायक कार्य के लिए प्रयोग किया है यही कारण था कि उन्होने चरखी चलाना, सूत कातना, तथा वस्त्र बनाने को यज्ञ कहा है । गाँधी जी ने सभी कार्यो को निष्काम भाव से करने को कहा है कर्म के द्वारा सीखने से आत्मशुद्धि, ईश्वर भक्ति एवं लोकोपकार के भाव बढ़ते हैं। कर्म को उन्होने शारीरिक मानसिक और आत्मिक अर्थ में प्रकट किया है गाँधी जी ने वाचन विचार यानि व्यवहार एवं कर्म द्वारा सीखने को सर्वश्रेष्ठ माना है।

शिक्षण विधि में स्वभाषा का माध्यम :-

उच्च से उच्च शिक्षा के लिए स्वभाषा ही शिक्षा का वाहन या माध्यम होना चाहिए। अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषा को शिक्षा का वाहन बना देने से शिक्षा के लिए किया गया जाने वाला बहुतेरा श्रम व्यर्थ गया और जा रहा है।

अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती, यह स्थिति दयनीय और लज्जाजनक है। शिक्षा घर और गाँवो तक नहीं पहुंच सकी इसका एक कारण यह भी है कि यह स्वभाषा के द्वारा नहीं मिली।

अंग्रेजी को शिक्षा का वाहन बना दिए जाने से देश की भाषाओं की वृद्धि नहीं हुई और शिक्षितों की स्वभाषा सेवा का प्रायः इतना ही फल हुआ है कि अंग्रेजी में किए हुए विचार संस्कृत या फारसी में अनुवाद करके स्वभाषा के प्रत्यय लगाकर काम में लाये जायें। इससे यह साहित्य आम जनता में अधिक नहीं पहुंच सका और न उस पर असर डाल सका है।

परभाषा के वाहन बनने का दुष्परिणाम हुआ है कि बहुतेरे शिक्षित जन विचार भी अंग्रेजी में ही कर सकते है स्वभाषा में कर ही नहीं सकते यह स्थिति खेद जनक है।

गुजरात विद्यापीठ जैसी छोटी सी संस्था में भी गुजराती को शिक्षा का माध्यम बना देने से गुजराती भाषा की कितनी समृद्धि हुई है पिछले कुछ वर्षो का साहित्य का इतिहास इसका निर्देशक है।

लोकमान्य के मराठी भाषा के द्वारा ही अपने प्रांत की सेवा करने से उस भाषा की जो समृद्धि हुई है वह भी इस बात की गवाही देती है।

भाषा ज्ञान :-

व्यवस्थित शिक्षा में भाषा के विषयों में पहला स्थान स्वभाषा को मिलना चाहिए। स्वभाषा में शुद्ध लिखना, पढ़ना और बोलना आये बिना अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषा की शिक्षा आरम्भ होनी ही न चाहिए।

स्वभाषा के बाद दूसरा स्थान राष्ट्रभाषा यानि हिन्दुस्तानी का होना चाहिए। इसके विषय में आगे अधिक कहा जायेगा।

तीसरा स्थान मूलभाषा को मिलना चाहिए। मूल भाषा का अर्थ हिन्दू विद्यार्थियों के लिए संस्कृत, मुलसमान विद्यार्थियों के लिए अरबी या फारसी, पारसियों के लिये पहलवी इत्यादि। स्वभाषा व स्वधर्म की जड़ इन भाषाओं में होने के कारण इनके ज्ञान का बहुत महत्व है और सम्यक शिक्षा प्राप्त मनुष्य को इनका साधारणतः अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

भाषायें सीखने की जिनमें शक्ति और रूचि है उनके लिए हिन्दुस्तान की कुछ प्रांतीय भाषायें सीखना भी आवश्यक है खास करके द्राविड़ी भाषाओं मे से एकाध के सीखने का प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत मूलक भाषाओं में से एकाध आनी ही चाहिए।

शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेजी का नम्वर इसके बाद आता है पर व्यावहारिक दृष्टि में उसका मूल्य अधिक आँका गया है फिर भी उसका स्थान स्वभाषा राष्ट्रभाषा और मूलभाषा के बाद ही होना चाहिए।

राष्ट्र भाषा :-

हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी और उर्दू दोनों की खिचड़ी दिल्ली लखनऊ प्रयाग जैसे शहरों में आम लोगों में बोली जाने वाली भाषा हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है। दक्षिण भारत की जनता के सिवा यह साधारणतः सारे देश में सैकड़ो वर्षो से अपनायी जा रही है।

प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को यह भाषा शुद्ध रूप में बोलना लिखना

और पढ़ना आना चाहिए। यह भाषा नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है दोनों लिपियों का ज्ञान प्रत्येक को होना आवश्यक है।

राष्ट्रभाषा सीखने की सलाह प्रांतीय भाषा को गौण बनाने के लिए नहीं दी जाती है उसकी आवश्यकता तो सार्वदेशिक व्यवहार के लिए है। हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का पद नया नहीं मिला है बल्कि जो बात व्यवहार में है उसी को स्वीकार किया गया है।

अंग्रेजी भाषा :-

अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के बिना शिक्षा अधूरी रहती है इस वहम से निकलने की जरूरत है। अंग्रेजी पढ़े लोगों का कर्तव्य है कि अंग्रेजी भाषा का विशाल साहित्य से सुन्दर रत्न चुन चुनकर अपनी अपनी भाषा में लायें। इन रत्नों का आनंद लेने के लिए लाखों को अंग्रेजी भाषा सीखने के झंझट में पढ़ने को कहना निर्दयता है।

काम काज में अंग्रेजी भाषा की जरूरत पड़ती है यही सही है पर ऐसे काम काज तो मुट्ठी भर आदमियों को ही करने पड़ते हैं फिर उनमें से बहुत से काम तो अकारण अथवा हमारी गुलामी की वजह से ही अंग्रेजी में होते हैं थोड़े से अंग्रेज अधिकारियों को देशी भाषा सीखने की मेहनत से बचाने के लिए सम्पूर्ण जनता पर अंग्रेजी सीखने का बोझ लादना, यह भी देश की ओर से ब्रिटिश राज्य को दिया जानेवाला एक प्रकार का भारी कर ही है।

अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य बनाकर ब्रिटिश राज्य ने अपनी जड़ मजबूत की है और भाषा की गुलामी स्वीकार कराके जनता को शरीर से ही नहीं मन से भी गुलाम बना दिया है। हथियार छीन लेने से जंनता को जो हानि हुई है उतनी ही या उससे रत्ती भर अधि ाक ही हानि उस पर अंग्रेजी को लादने से हुयी है।

अंग्रेज़ी भाषा के ज्ञान के बिना देश के महत्वपूर्ण कामों में भाग नहीं लिया जा सकता। इस तरह उसकी जो अनिवार्यतः वह शिक्षा ....शास्त्र तथा नीति की-दृष्टि से अत्यंत हानिकाकर है।

यूरोप की विद्या सीखने के लिए यूरोप की किसी भाषा का ज्ञान आवश्यक माना जाये तो उतने उपयोग के लिए जितना ज्ञान जरूरी है उसके लिए आज जितना समय और वर्ष देने पड़ते है उतने न देने पड़ेगें। इस भाषा ज्ञान का लक्ष्य तो उस भाषा को समझ लेने पर सीख लेना होगा। आज तो अंग्रेजी भषा के लेखन और उच्चारण पर अधिकार करने के लिए

इतना प्रयास किया जाता है मानो वह अपनी मातृभाषा या उससे भी अधिक महत्व रखने वाली वस्तु हो और अनेक वर्षो तक मेहनत करने के बाबजूद अधिकांश तो टूटी फूटी अंग्रेजी लिखने बोलने लायक ही अधिकार प्राप्त कर पाते हैं।

हम स्वभाषा या पड़ोसी प्रान्त की भाषा को शुद्ध बोल लिख न सकें तो न शर्मायें अथवा वैसी भूल करने वालों का मजाक न उड़ायें, इससे पता चलता है कि उस भाषा ने हम पर कैसा जादू डाल रखा है वास्तव में अंग्रेजी के अत्यंत विजातीय भाषा होने के कारण उसके उच्चारण और लेखन में हमसे गलतियाँ हो तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं है। पर इस जादू के कारण हम विद्याध्यन के आधे या बहुत से बर्ष इस भाषा पर अधिकार पाने के पीछे बर्बाद कर देते है विद्यार्थी के कितने ही श्रम और समय का इस प्रकार अपव्यय होता है।

कुछ अन्य विषयों की शिक्षा प्रक्रिया :-

संगीत की शिक्षा पर हिन्दुस्तान में बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। संगीत चित्त के भावों को जागृत करने का बहुत बड़ा साधन है और इस प्रकार सात्विक संगीत का आध्यात्मिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है बालक की इस महत्वपूर्ण प्राकृतिक शक्ति का सात्विक रीति से विकास करना चाहिए।

कर्मेन्द्रियों के और समूहों के कार्य में कवायद के ज्ञान के अभाव वश अव्यवस्था शक्ति की आवश्यकता से अधिक व्यय गड़बड़ और शोरगुल तथा बहुत अवसरों पर जान माल का नुकसान होता है। कवायद के ढंग से ही उठने बैठने, चलने और काम करने की और चार आदमियों के एकत्र होते ही कवायदी ढंग से व्यवस्थित होकर काम करने की आदत पड़ जानी चाहिए। अतः कवायद की तालीम की ओर पाठ्शलाओं में भली भांति ध्यान दिया जाना चाहिए और बड़ी उम्र के लोगों को भी इसकी तालीम देनी चाहिए।

शस्त्र का त्याग हिन्दुस्तान में जबरन कराया गया है। हिन्दुस्तान की जनता ने उसे अपनी इच्छा से नहीं किया है शस्त्र धारण करने और सैनिक शिक्षा पाने का जनता को अधिकार है इसलिए उसकी तालीम भी शिक्षा का आवश्यक विषय है।

प्रकृति के सौदर्य के सामने मानव निर्मित सब कलाओं का सौन्दर्य तुच्छ है अवकाश और पृथ्वी का सौन्दर्य कला रसिक को आनंद देने के लिए काफी है। उस कला का स्वाद जो नहीं ले सकता वह यदि मनुष्य निर्मित कला का शौकीन समझा जाता है तो वह मोहक दृश्यों को ही कला समझने वाला होगा। सच्ची कला का उसे ज्ञान नहीं है। सच्ची कला अच्छे साहित्य

की भांति विचारों को उपस्थित करने का साधन है और साहित्य की शैली के संबंध में जो विचार प्रकट किए गये है वे यथोचित रूप से कला पर भी घटित होते हैं।

कला का संबंध नीति, हितकारिता और उपयोगिता से नहीं है केवल सौन्दर्य से ही है, यह कहना सौन्दर्य और कला को न समझने जैसा ही है सत्य ही ऊँची से ऊँची कला और श्रेष्ठ सौन्दर्य है और वह नीति, हितकरता तथा उपयोगिता रहित नहीं हो सकती। अतः कला का स्थान मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी साधन सामग्रियों में होना चाहिए और कला के कारण वे पदार्थ सुन्दर लगने के अतिरिक्त अधिक अच्छी तरह काम देने वाले भी होने चाहिए। जिस कला के पीछे प्राणियों पर जुल्म, हिंसा, उत्पीड़न आदि हो उसमें बाह्य सौन्दर्य कितना ही हो तो भी वह शैतान का ही दूसरा नाम है।

जो कला मनुष्य की हीन वृत्तियों को उभारती है और भोगों की इच्छा को बढ़ाती है वह कला गंदे साहित्य की श्रेणी में ही समझी जायेगी। इतिहास विषय की शिक्षा गलत दृष्टिबिन्दु से दी जाती है अतः इतिहास के रूप में पढ़ायी जाने वाली घटनायें भले ही सच हों, पर जनसमाज में भूतराज की स्थिति के बारे में वे गलत धारणा उत्पन्न कराती है। राजवंशों की उथल पुथल और युद्धों के वर्णन राष्ट्र का इतिहास नहीं है हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र का तो हो ही नही सकते। वह तो राष्ट्र शरीर पर कभी कभी उठ आने वाले फफोलों का सा इतिहास माना जायेगा। राष्ट्र जीवन में युद्ध नित्य जीवन में समझौता भाईचारा एक दूसरे के लिए कष्ट सहना और सहयोग होता है उसके द्वारा होने वाली प्रगति का वर्णन इतिहास बहुत गौण रूप में करता है और इस कारण वह भूतकाल के सम्बंध में भ्रमात्मक चित्र प्रस्तुत करता है।

इस रीति से इतिहास की जांच की जाये तो उसके नित्य व्यवहार में हिंसामय कलह की अपेक्षा अहिंसामय सत्याग्रह का प्रयोग अधिक हुआ पर इतिहास के शिक्षण में ही दोष नहीं है आजकल तो इतिहास की शिक्षा जान बूझकर इस तरह दी जाती है जिससे गलत ख्याल पैदा हो, इसलिए अंग्रेजों के आने के पहले के काल का बहुत बुरा चित्र खींचा जाता है और अंग्रेजी राज्य के प्रति जनता मोह मूर्छा में पड़ी रहे इसकी बचपन से ही कोशिश की जाती है इसमें असत्य ही नहीं बेईमानी भी है।

नये बच्चे की शिक्षा प्रक्रिया :-

बोलना, चलना फिरना सीखता है शिक्षक को स्वयं बच्चों की तरह ही शिक्षा देनी चाहिए। मन के विकास हेतु इन बच्चों के लिए एक बाड़ी या बगीचा हो जहां प्रकृति के

खुले आंगन में वह प्रकृति के साथ खेलकर उसकी जानकारी अव्यक्त रूप से ग्रहण करे। इन्हें घर पर भी खेल और ज्ञान सामग्री दी जावे। इसी से उन्हें शिक्षा दी जायें।

विशेष वर्ग के लिए शिक्षा प्रक्रिया :-

इस वर्ग में बच्चों के माता पिता एवं घर के वातावरण से परिचय प्राप्त किया जाये और तद्नुसार पाठ्यक्रम भी हों। विशेष वर्ग के बच्चों की क्रियात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देना, बच्चों में काम करने की अच्छी आदतें डाली जायें। घरेलु वातावरण में पाई जाने वाली चीजों का उसे ज्ञान कराया जाये।
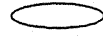
(ख) विनोबा जी के अनुसार शिक्षण पद्धति :-

परिश्रम द्वारा सीखना :-

ज्ञान का माध्यम :-

मीडियम ऑफ इन्स्ट्रक्शन पढ़ाई का माध्यम,क्या हो ? यह सोचा जाता है परन्तु मीडियम आफ नॉलेज क्या है? इस पर विचार करना चाहिए मेरा मानना है मीडियम ऑफ नॉलेज कर्म ही हो सकता है। बच्चे को माँ ज्ञान देती है तो कर्म के माध्यम से ही देती है। क्रिया का रूपान्तर शब्दो में करके ही बताती है। ज्ञान की प्रक्रिया में कर्म होता है, मध्य में कर्म होता है और अंत में उसकी परिणति ज्ञान के रूप में होती है। नयी तालीम की यह प्रक्रिया सम्भव हो सकती है।

परिश्रम अलग चीज है औरपरिश्रम निष्ठा, परिश्रम के प्रति आदर और प्रेम अलग चीज है। संसार में ज्यादातर लोग परिश्रम करने वाले ही है परन्तु वे मजबूर होकर मेहनत करते है बहुत से लोग अगर मेहनत के कामों से यदि बच सकें तो बचना ही चाहेंगे। इन सबका केवल एक ही तरीका है कि विद्यार्थियों में ऐसी भावना पैदा की जाये कि बिना कुछ शारीरिक श्रम किये शरीर को अन्न देना, अपने प्रति और समाज के प्रति अपराध करना है।

हमारी शिक्षण प्रणाली के द्वारा शिक्षण पाये शिक्षितों में इस प्रकार की भावना जोरदार होनी चाहिए। हमारे देश में आजकल तो यह हालत है कि बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजने पर वे गोबर उठाने में तो आना कानी करते है मगर दूध पीकर खुश होते है वास्तविकता में होना यह चाहिए कि हमारी शिक्षण प्रणाली से शिक्षित होकर निकलने वाले बच्चे गाय का गोबर उठाने में हर्ष का अनुभव करें।

इसलिए विद्यार्थियों के साथ साथ शिक्षक को भी यथाशक्ति शारीरिक परिश्रम के कार्यो में भाग लेना चाहिए। पाठशाला के समय किया हुआ उद्योग पाठशाला का ही समझा जायें। परन्तु इसके अलावा विद्यार्थियों के सामने हमेशा यह उदाहरण रखना चाहिए कि शिक्षक और उसके परिवार के सदस्य अवकाश के समय और छुट्टी में अन्य देहाती मजदूरों की तरह ही प्रसन्नता से शारीरिक श्रम करते हैं। गाँव की गन्दगी को दूर करना आदि सावर्जनिक कार्य तो शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को मिलकर यथावसर करना ही है साथ ही पाठशाला को बुहारना, पाठशला का आँगन साफ करना, उसे गोबर से लीपना आदि कार्य भी विद्यार्थियों के साथ शिक्षक

भी करें। ऐसा नियम होना चाहिए कोई भी कार्य केवल विद्यार्थियों को नहीं सौंपना चाहिए बल्कि शिक्षक को उसे स्वयं करना चाहिए और बच्चों से कराना चाहिए। इसी प्रकार विद्यार्थियों में परिश्रम निष्ठा उत्पन्न होगी।

केवल पद्धति :-

प्रचलित शिक्षण पद्धतियों में मानव के विविध अंगों में से केवल एक अंग बुद्धि की ओर ध्यान दिया गया है वह भी उसके विकास के बदले विलास करने वाला है। चूंकि इस पद्धति में केवल बुद्धि विकास की ओर या उसके प्रोत्साहनों की भाषा में केवल शिक्षण की ओर ध्यान दिया गया इसलिए मैं उसे केवल पद्धति कहता हूं। इस पद्धति के अनेक दोष छोड़ दिए जायें तो भी शिक्षण शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण दोष यह है कि उसमें बाह्य आधार के बिना ज्ञान दिया जाता है जिससे उस ज्ञान को ठूँस-ठूँस कर भरना पड़ता है फलस्वरूप वह ठीक से याद नहीं रहता है जीवन के साथ समरस नहीं हो पाता है इसके अलावा ऐसी शिक्षा से बेकारी ही बढ़ती है।

परिशेष पद्धति :-

दूसरी पद्धति है परिशेष पद्धति। जिस तरह किसी ग्रंथ का परिशिष्ट होता है उसी तरह शिक्षण के परिशिष्ट रूप में इसमें उद्योग को स्थान दिया जाता है। इस पद्धति में उद्योग शामिल होने पर भी उसका महत्व पूँछ सरीखा ही माना जाता है इसके अलावा उद्योग में एक मनोरंजन खेल या अलंकार के रूप में अपनाया जाता है। शिक्षा का श्रम मिटाने के लिए या प्रदर्शन भर के ही लिए उसका उपयोग किया जाता है।

समवाय पद्धति :-

समवाय पद्धति में कोई एक जीवनयापी और विविध अंगयुक्त मूलोद्योग को शिक्षण के माध्यम के तौर पर लिया जाता है, वह उद्योग शिक्षण का सिर्फ एक साधान नहीं, बल्कि उसका अविभाज्य अंग होता है उस उद्योग द्वारा इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है।

1. बच्चों में सभी तरह की शक्तियों का विकास करना।
2. बच्चों को जीवनोपयोगी विविध ज्ञान देना।
3. बच्चे की आजीविका का एक समर्थ साधन प्राप्त करा देना।

इस उद्देश्य की पूर्ति का एक छोटा सा लेकिन महत्व का सबूत यह

हैं, कि बच्चों के काम में से पाठ्शलाा के शिक्षण के खर्च का कुछ अंश निकले, ऐसी अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार उद्योग मूलक समवाय पद्धति प्रचलित सारी शिक्षण पद्धतियों से भिन्न और अब तक के अनुभवों का निष्कर्ष रूप अंतिम परिणति है। समवाय पद्धति में ज्ञान और कर्म एक दूसरे में ओतप्रोत रहते हैं।

जहां पर द्वैत और अद्वैत का निर्माण नहीं होता उस सम्बंध को हम समवाय कहते हैं। समवाय पद्धति उद्योग द्वारा ज्ञान देना चाहती है इसलिए जहां तक सम्भव होगा वह उसी में व्यायाम निकालेगी। तेजी के साथ 5-7 मिनट तक लगातार किये जाने वाले व्यायामों की अपेक्षा उद्योग में जो धीर-धीरे व्यायाम होता है उसका महत्व शरीर शास्त्र की दृष्टि से कम नहीं है। उद्योग में दोनो हाथों से अदल बदल कर काम करना चाहिए। कुछ समय खुली हवा में कसरत, बागवानी में दिया जायें कुछ देर निकट देखने का काम कुछ देर दूर देखने का काम कुछसमय संगीत गायन, कुछ देर केवल मौन। सारांश यह है कि उद्योग को बिना कुछ हानि पहुंचाये हम काम में विभिन्नता ला सकते हैं।

समुच्चय पद्धति :-

इस पद्धति में उद्योग और शिक्षण दोनों को समान महत्व देने का प्रयत्न किया जाता है। यानि ज्ञान के लिए जितना समय दिया जाता है उतना ही उद्योग के लिए। मिट्टी पानी का अर्थ घड़ा नहीं है दोनों को मिलाकर कुम्हार जब उसमें अपनी कला उड़ेलता है तब घड़ा तैयार होता है। समुच्चय पद्धति में शिक्षण पाने वाले को संतोष नहीं होता। उसे लगता है कि मेरा शिक्षण का समय व्यर्थ ही उद्योग में व्यतीत हो रहा है। वह कभी लाचार होकर उद्योग करता है कभी स्वार्थवश और कभी शिक्षण कहकर। चूंकि इस पद्धति में उद्योग शिक्षण के अंग के रूप में समाविष्ट नहीं किया जाता है इसलिए उसके प्रति आजीविका के साधन मात्र की दृष्टि रहती है। इस दृष्टि से उसकी प्रतिष्ठा शिक्षण की अपेक्षा कम ही है। इसलिए उद्योग करते हुए भी उसमें उतनी रूचि नहीं मालूम होती। इसके अलावा शिक्षा और उद्योग इन दोनों का परस्पर मेल नहीं बैठता है। शिक्षा में चल रहा होगा शाकुंतल या अफ्रीका का भूगोल और उद्योग में उसे आवश्यकता होगी, बढ़ईगिरी की, लकड़ी के भूगोल की जानकारी, इसी कारण दोनों के विषय एक दूसरे के पूरक नहीं हो पाते हैं।

संयोजन पद्धति :-

उपर्युक्त तीनो पद्धतियों से भिन्न संयोजन नाम की एक पद्धति

शिक्षण शास्त्री जानते है। कर्म द्वारा ज्ञान समवाय पद्धति का यह सूत्र उसमें मान लिया गया है लेकिन इस पद्धति में कर्म को गौण स्थान दिया गया है। कुछ ज्ञान देना है तो उसके अनुकूल एक संयोजन लेकर पढ़ाया जाता है। लेकिन वह कृत्रिम सा होता है।

ग्राम्य पद्धति :-

विनोबा की मानना था कि ग्रामदान की प्रारम्भिक योजना समाज प्रेरणा के अनुकूल है। भले ही ग्रामदान अपेक्षित परिणाम नहीं ला सका हो, फिर भी ग्रामीण भारत के पुनर्निमाण के लिए अनेक महत्वपूर्ण संकेत अंकित किए। ग्रामदान के विचारों में ग्राम सभा पर विशेष बल था। ग्राम निर्माण का एक मुख्य मुद्‌दा यही था कि गाँव अपनी आर्थिक, सामाजिक पुर्नरचना में स्वावलम्बी हो। ग्राम निर्माण का परिणाम ग्राम स्वराज्य होना चाहिए जो कि सर्वोदय का राजनैतिक आदर्श है। ग्राम स्वराज्य का अर्थ ही यह है कि गांव की जनता खुद ग्राम समाज का प्रशासन चलाये। इस दृष्टि से ग्राम्यपद्धति काफी महत्वपूर्ण थी।

सह शिक्षा :-

विनोबा जी ने लड़के और लड़कियों को एक साथ रखकर पढ़ाने के प्रयोग किए थे और उसके आधार पर सह शिक्षा की सम्भावना स्वीकार की थी। उनके अनुसार प्राईमरी और उच्च स्तर पर सह शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है परन्तु किशोरावस्था पर यह उचित नहीं होती। अपने इस मत को व्यक्त करते समय वे प्रत्येक समाज को यह छूट देते है कि वह अपने पर्यावरण की दृष्टि में रखते हुए सहशिक्षा को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। इस प्रकार सहशिक्षा के सम्बंध में विनोबा जी सामाजिक पर्यावरण पर निर्भर करते हैं।

उद्योग द्वारा शिक्षा :-

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य गुण विकास ही होना चाहिए। परन्तु उद्योग के बिना न गुण विकास होता है और न गुणों की परख ही होती है। उद्योग शब्द का अर्थ उत् + योग, यानि ऊँचा योग है।

शिक्षण जीवन से जुड़ी हुई चीज है बच्चों के सम्पूर्ण शिक्षण की रचना, किसी एक मूल उद्योग पर खड़ी की जाये। उद्योग से शिक्षा को गरमाहट मिले और शिक्षण से उद्योग पर प्रकाश डाला जाये। औद्योगिक शिक्षण में सिर्फ उद्योग सिखाया जाता है।

उद्योग शिक्षण पूर्ण तब ही होगा, जब विद्यार्थी में उद्योग की क्रियायें वाणी द्वारा व्यक्त करने की शक्ति आ जाये। वाणी का अर्थ निश्चित और स्पष्ट वाणी। उदाहरणार्थ – पेंसिल को लम्बरूप में खड़ी करने पर बहुत से लोग इसे सीधा कहते है दूसरे रूप में खड़ी करने पर उसे टेढ़ी कहते है वास्तव में पहली खड़ी है दूसरी तिरछी पर दोनों ही दशाओं में पेंसिल सीधी है।

हमारे देश के प्रायः सभी कारीगर अपना काम अच्छी तरह करते है, परन्तु इस क्रिया को वे भाषा द्वारा प्रकट नहीं कर सकते है। हमको यह हालत बदलनी है हाथ और बुद्धि दोनों को मिलाने वाली है वाणी।

सातत्व योग का अभ्यास :–

विद्यार्थियों को सातत्व भी सिखाना चाहिए। सातत्व के बिना कर्म योग सिद्ध नहीं होता। आजकल शिक्षित लोगों में लगातार मेहनत करने की ताकत का प्रायः अभाव दिखाई पड़ता है यह दोष हमें दूर करना चाहिए।

उद्योग में कचरा कम से कम हो और जो भी हो उसका भी उपयोग हो यह सिखाना चाहिए। उद्योग में माल सुन्दर और सुव्यवस्थित निकलना चाहिए जो सुन्दर नहीं उसका शिक्षण में कुछ भी मूल्य नहीं होना चाहिए। छोटे बच्चों के शिक्षण में मिथ्या उपयोगवाद को स्थान नहीं मिलना चाहिए। काम कम हो पर सुन्दर हो। गति की मंदता के कारण काम कम न हो सौन्दर्य के कारण कम हो तो चल सकता है।

साधर्म्य – वैधर्म्य प्रक्रिया :–

उद्योग के द्वारा बच्चो में सामूहिक भावना उत्पन्न करना उद्योग का महत्वपूर्ण कार्य माना जाना चाहिए। दूसरों की असमर्थता में मदद करने की भावना पनपनी चाहिए। उद्योग की विभिन्न क्रियाओं साधनों या बातों के सम्बंध में ज्ञान देते समय हम उद्योग की सीमा में ही रहे, किन्तु उसकी सीमा बन्द न हो जाये। जिस प्रकार पर्वत पर बैठकर हम चारों ओर की दुनिया को देखते है वैसे ही उद्योग में पैर जमाकर हमें चारों ओर के विश्व का निरीक्षण करना चाहिए। इस प्रकार उद्योग द्वारा विश्व निरीक्षण की पद्धति को साधर्म्य- बैधर्म्य प्रक्रिया कहते हैं। इसकी सहायता से मनुष्य उद्योग में रहता है पर उसमें बन्दी नहीं हो जाता है।

मान लीजिए, विद्यार्थियों को यह बात समझानी है कि तकली या

शिक्षा विचार – विनोबा

चरखा सीधी गति से घुमाना चाहिए। अतः सीधी गति किसे कहते है यह बात उन्हें तकली या चरखा प्रत्यक्ष घुमाकर और उसके घूमने की दिशा की ओर ध्यान आकृष्ट करके बतलानी होगी। किन्तु ऐसा करते समय सीधी और उल्टी गतियों के उदाहरण यानि साधर्म्य और बैधर्म्य के उदाहरण विद्यार्थियों के सामने रखना चाहिए।

साधर्म्य के उदाहरण -

1. घड़ी की सुईयाँ कैसे घूमती है।
2. कुँये में बाल्टी डालते समय गिर्री या रेंहट कैसे घूमता है।
3. पेंच को कसते समय वह कैसे घूमता है।
4. ताला खोलते समय चाबी कैसे घूमती है।
5. आरती कैसे उतारते हैं।
6. मंदिर की प्रदक्षिणा कैसे करते हैं ?
7. तेली का कोल्हू कैसे घूमता है ?
8. बल्ब कैसे घूमता है ?

वैधर्म्य के उदाहरण -

1. कुँये से पानी खींचते समय।
2. पेंच खोलते समय।
3. ताला लगाते समय।
4. चक्की से आटा पीसते समय।
5. सप्तर्षि या ध्रुव तारा देखते समय आदि।

यह सभी बातें विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष रूप से बतलानी चाहिए। इसे बताने में कितना ही समय क्यों न लग जायें। साधर्म्य और बैधर्म्य प्रक्रिया का उपयोग करना चाहिए अर्थात् उद्योग पर प्रकाश डालकर ज्ञान को खरा बनाने के लिए और ब्रह्माण्ड की सैर के आनन्द की अनुभूति के लिए होना चाहिए।

मल विज्ञान :-

मल विज्ञान से तात्पर्य गन्दगी से है विद्यार्थियों को मल के सम्बंध में विशेष ज्ञान होना चाहिए। मल का क्या उपयोग होता है सूर्य किरणों से मल पर क्या प्रभाव पड़ता है उससे कौन कौन सी बीमारियां उत्पन्न होती है जमीन को यदि उसकी खाद दी जाये तो उसकी उर्वरकता कितनी बढ़ती है आदि सभी बातों का शास्त्रीय ज्ञान मल विज्ञान की सहायता से हमारे छात्रों को करना चाहिए।

विनोबा ने उस पर एक सूत्र भी बनाया है " प्रयति मल दर्शनम्" मल से हमें आरोग्य का ज्ञान होता है मलगार शरीर से देहाशक्ति कम होती है।

आरोग्य विज्ञान :-

प्राकृतिक चिकित्सा को प्रतिष्ठित करने के लिए अन्नशास्त्र रोगशास्त्र, आरोग्य शास्त्र, शरीर शास्त्र, मानस शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि शास्त्रों का निर्माण हुआ है। मनुष्य को आरोग्य विज्ञान का ज्ञान होना बहत ही आवश्यक है। क्योंकि वह अपने रोगों का स्वयं निवारण कर सकें क्योंकि मनुष्य को रोगों का जब अहसास होता है वहीं से उनका परिहार शुरू हो जाता है। देह को रोग ने पकड़ रखा है यह ध्यान में आते ही मनुष्य रोग निवारण के लिए छटपटाने लगता है। चित्त के दोष के लिए उससे भी अधिक छटपटाहट होती है मनुष्य देह से भिन्न है चित्त। दोनों के बीच उसे काम करना है दोनो को ठीक करना अनिवार्य है आरोग्य योग की पहली भूमिका है जहां आरोग्य बिगड़ा वहीं ब्रह्मविद्या खण्डित हुई, यह समझना चाहिए।

बीमारी क्यों आयी, यह मालूम होना चाहिए। बिना ज्ञान हुए बीमारी आयी और गयी तो समझना चाहिए कि गुरू आया और गया लेकिन ज्ञान नहीं मिला इसलिए आरोग्य विज्ञान का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

प्रसंग के अनुसार पाठ :-

विद्यार्थियों को प्रसंग के अनुसार पाठ पढ़ाना चाहिए। यदि बच्चा आलस्य करें तो उसे उत्साह के श्लोक सिखाना चाहिए यदि वह डरे तो निडरता का श्लोक पढ़ाना चाहिए।

उदाहरणार्थ - एक बच्चा सूत धीरे धीरे कातता है परन्तु सूत टूटता नहीं है दूसरा जल्दी जल्दी कातता है परन्तु टूटता है. तो उस समय वहां कछुआ और खरगोश की

कहानी सुनानी चाहिए ताकि उन्हें अखण्डता का सही ज्ञान प्राप्त हो।

प्रत्यक्ष जीवन द्वारा ज्ञान :-

प्रत्यक्ष जीवन द्वारा ज्ञान से तात्पर्य ऐसे ज्ञान से है जिसका सम्बंध ा जो जीवन में घटित हो रहा है जो लोग पुस्तकों के माध्यम से ज्ञान देते है वह गलत है। जैसे – विद्यार्थियों को गणित सिखाया जा रहा है दो और तीन मिलकर पांच होते है यह बात समझ में नही आती तो हम कहते है दो और तीन होते ही नहीं दो तो दो ही रहते है और तीन तीन ही रहते है किन्तु यह कहा जाये दो आम और तीन आम मिलकर पांच आम होते है तो यह बात समझने में बिल्कुल आसान है। प्रत्यक्ष कार्य के द्वारा ज्ञान देना बहुत सरल है आज जिस पद्धति से ज्ञान दिया जा रहा है वह कितना कठिन है सृष्टि और मनुष्य के बीच परदा करके ज्ञान दिया जाता है अश्व यानि घोड़ा बताया जाता है लेकिन यदि घोड़ा देखा ही नहीं तो क्या समझ में आयेगा। शिक्षक विद्यार्थियों को पदार्थ नहीं सिर्फ पर्याय पद बताते है जो सिर्फ पद ही देखते है उनका ज्ञान भ्रान्त ज्ञान होता है किताबों के द्वारा 15-20 वर्षो में सीखकर आप प्रवीण बनते हैं किन्तु यह आसान तरीका नहीं है नयी तालीम किताबों पर बहिष्कार नहीं करती बल्कि वह उनका ठीक और समुचित उपयोग बताती है जिसके चारो ओर ज्ञान ही ज्ञान भरा पड़ा है। उसके लिए अज्ञान कहाँ रहेगा।

हमारे यहाँ जो उत्तम भाष्य ग्रंथ बने है वे इसी तरह से प्रत्यक्ष अध्यापन कार्य में से निर्मित हुये है।जैसे भगवान शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर एक अप्रितम भाष्य लिखा जो साधकों में बहुत प्रसिद्ध है। इस तरह अध्ययन अध्यापन कार्य और उद्योग कार्य एक सामाजिक सेवा की दृष्टि से चले तो उसमें जो पुस्तकें निर्माण होगी। विनोबा जी की बहुत सारी किताबें इसी तरह सिखाते सिखाते और उद्योग करते करते बनी है।

इस प्रकार जहां पर शिक्षक और विद्यार्थी मिलकर समाज सेवा के उद्देश्य से अध्ययन अध्यापन कार्य और उद्योग करते है वहाँ पर उनका अनुभव वहीं तक सीमित नहीं रहता उसका लाभ सम्पूर्ण दुनिया को मिलता है इस प्रकार जो ग्रंथ निर्माण होते है उनका सम्प्रदाय चलता है और उनके अध्ययन अध्यापन की प्रक्रिया चलती है।

इतिहास–भूगोल की एकता :-

सामाजिक शिक्षा में इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र आदि पढ़ाते हैं।

इतिहास और भूगोल सिखाने का अर्थ है बच्चों को काल और देश का परिचय देना। काल और देश दोनों इतने एक रूप है कि किसी भी भाषा में काल वाचक शब्द का और स्थल वाचक शब्द के लिए भी प्रयोग किया जाता है। जब हम कहते है कि भूगोल इतिहास पढ़ाया जायें तो क्या यही अर्थ है कि प्राचीन काल और दूर देश के लोगों की जानकारी करायी जाये। यह जानकारी अगर निकट के लोगों की हो तो इतिहास बन जाता है और वर्तमान समय में दूर देश के लोगों के बारे में हो तो भूगोल बन जाता है। इतिहास और भूगोल दोनों में बहुत एकता पायी जाती है। इतिहास भूत है तो भूगोल वर्तमान है। इसलिये दोनों एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुये हैं, क्योंकि सभी ऐतिहासिक घटनायें भौगोलिक मंच पर ही होती हैं।

छोटे बच्चों के लिए शिक्षण :-

छोटे बच्चों को एक ही विषय का शिक्षण देने से काम नहीं चलेगा साथ ही उन पर अनेक विषयों का बोझ लादना भी व्यर्थ है उनके लिए एक ही विषय रखना चाहिए ''जीवन विकास'' उसके तीन अंग है वाणी, शरीर और मन।

1. वाणी के लिए :-

अच्छे भजन कविता आदि मधुर कंठ से और स्वच्छ उच्चारण से पढ़ना तथा अर्थ का सामान्य ज्ञान वाचन वाक् प्रकाशन और सत्यप्रिय, संयत वाणी का अभ्यास।

2. शरीर के लिए :-

खुली हवा में उद्योग अदल बदल कर दिनभर कुछ न कुछ काम। खेल हित, मितयुक्त आहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, निसर्गोपचार का ज्ञान और तद्नुसार उचित आचरण।

3. मन के लिए :-

व्यवहार वर्ताब कैसा हो ? सबके लिए उपयोगी कैसे बने ? देहेन्द्रिय पर अंकुश कैसे रखें ? हम शरीर से भिन्न है इसका ज्ञान इस प्रकार थोड़े में ही इसका स्वरूप है। बच्चों और शिक्षकों दोनों का सम्मिलित रूप होना चाहिए।

स्थूल से सूक्ष्म की ओर ज्ञान :-

एक शिक्षक छात्रों को हिन्दुस्तान का भूगोल पढ़ा रहा था। उसने पहले बच्चों को पूरे हिन्दुस्तान का नक्शा दिखाया। फिर उन्हें विभिन्न प्रांत बताये फिर सभी प्रांतों की नदियां दिखलायीं। इसके बाद उसमें सभी प्रांतों के ऐतिहासिक, धार्मिक, व्यावसायिक महत्व के स्थान दिखलाये और इसी तरह सूक्ष्म सूक्ष्म जानकारी कराता गया यह शिक्षक छात्रों के ज्ञान को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जा रहा है।

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

महात्मा गाँधी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

गाँधी जी ने जिस नवीन शिक्षा योजना का विचार जनता के समक्ष रखा वह शिक्षण विधि नितांत नवीन है। प्रचलित शिक्षण विधि में अध्यापक एवं छात्र में कोई सम्पर्क नहीं रहता। अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते है। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति के विपरीत गाँधी जी ऐसी शिक्षण प्रक्रिया को जाना चाहते थे जिसमें छात्र और शिक्षक के बीच की खाई कम हो और छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में न होकर सक्रिय अनुसंधानकर्ता निरीक्षणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता के रूप में हो।

शिक्षण नीति में गाँधी जी महत्वपूर्ण परिवर्तन चाहते थे इस परिवर्तन की दिशा में वे पहली बात यह चाहते थे कि शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात वे यह चाहते थे कि शिक्षण पुस्तकीय न होकर क्राफ्ट केन्द्रित हो। क्राफ्ट को वे केवल मनोरंजन का साधन न मानकर चरित्र निर्माण का भी साधन मानते थे। इस क्राफ्ट केन्द्रित शिक्षा के द्वारा वे बालकों को हाथों की शिक्षा देना चाहते थे।

क्राफ्ट केन्द्रित शिक्षण विधि में क्रिया एवं अनुभव पर बल है इस प्रकार की शिक्षण नीति की आवश्यक प्रविधि है समन्वय विभिन्न विषयों की शिक्षा पृथक विषय के रूप में न होकर समन्वित ज्ञान के रूप में होगी। क्राफ्ट शिक्षण का केन्द्र बिन्दु होगा और सभी विषय क्राफ्ट से समन्वित किये जायेंगे।

गाँधी जी ने शिक्षा की जो नवीन योजना भारत के समक्ष रखी उसमें श्रम को आध्यात्मिक एवं नैतिक महत्व प्रदान किया गया है। वे शिल्प के द्वारा बालक को गीता में वर्णित निष्काम कर्म के महत्व से परिचित कराना चाहते थे। और देश की गरीबी को दूर करने के लिए शिक्षा में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे। उनके इसी प्रकार के चिंतन एवं ट्रान्सवाल से टॉलस्टाय फार्म पर किए गए उनके प्रयोगों के परिणामस्वयप शिल्प केन्द्रित शिक्षा का उदय हुआ।

गाँधी जी धार्मिक होने के साथ साथ बहुत व्यावहारिक भी थे। उन्होने अध्ययन तो नहीं किया पर ऐसा लगता है कि वे व्यावहारिक मनोविज्ञान के पण्डित थे। शिक्षण के

क्षेत्र में वे सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे।

गाँधी जी के अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव से सीखना ही उत्तम सीखना होता है।

वैसे वे कथन व्याख्यान और प्रश्नोत्तर विधि के महत्व को भी स्वीकार करते थे। इस प्रकार शिक्षण करने से बच्चों की शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में समन्वय होता है गाँधी जी श्रम के महत्व को समझते है और व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करते हैं।

विनोबा जी की शिक्षण नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

संत विनोबा जी के मतानुसार शिक्षण सहज होना चाहिए जैसे खेलते समय बच्चों की आसपास की दुनिया मर गई होती है देह की सुध वुध नहीं रह जाती, भूख प्यास, थकान पीड़ा कुछ भी मालूम नहीं पड़ती है। तात्पर्य खेल का अर्थ आनंद या मनोरंजन है वह व्यायाम रूप कर्तव्य नहीं बन पाता है। यही बात शिक्षण पर लागू होनी चाहिए। शिक्षण एक कर्तव्य है ऐसी भावना की अपेक्षा शिक्षण का अर्थ आनंद है ऐसी प्राकृतिक और उत्साह भरी भावना पैदा होनी चाहिए विद्यार्थियों का शिक्षण अनजाने अथवा सहज होना चाहिए। बचपन में बालक मातृभाषा जिस सहज पद्धति से सीखता है उसका आगे का शिक्षण भी उसी सहज पद्धति से होना चाहिए। शिक्षण की पद्धति ही ऐसी होनी चाहिए कि छात्रो में यह भावना न हो कि हम शिक्षण पा रहे हैं।

जिस शिक्षण पद्धति में ज्ञान और उद्योग का समवाय होगा और हम बता नहीं सकेंगे कि इस समय ज्ञान चल रहा है या उद्योग वहीं शिक्षण की सच्ची पद्धति होगी। हमारी शिक्षण प्रणाली द्वारा शिक्षण पाये शिक्षितों में इस प्रकार की भावना खूब जोरदार होनी चाहिए कि बच्चे शिक्षित होकर किसी भी प्रकार के श्रम से दूर न भागें बल्कि होना यह चाहिए कि विद्यार्थियों के साथ साथ शिक्षक को भी यथाशक्ति शारीरिक परिश्रम के कार्यो में भाग लेना चाहिए।

वैदिक काल में हमारे देश में शिक्षण की ऐसी योजना थी जिस पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था। ज्ञानियों के द्वारा शिक्षण कार्य स्वतंत्र रूप से चलता था। राजाओं के बच्चों को भी इन्हीं के हाथ में सौंपा जाता था। सामान्य हरिजन का लड़का और राजपूत दोनों को एक ही गुरू के पास बराबरी की तालीम मिलती थी। सरकार का उस पर कोई नियंत्रण नहीं था। ऐसी व्यवस्था में वहुत ही स्वतंत्र बुद्धि के विद्यार्थी निकलते थे। शिक्षण में परिवर्तन की दिशा में सबसे पहले मेरे मन में यह बात आती है जो मूल पर प्रहार करने वाला है वह यह है कि शिक्षण सरकारी तंत्र से मुक्त होना चाहिए। शिक्षण पर सरकार का कोई बरदहस्त नहीं होना चाहिए। शिक्षकों

को सरकार तनख्वाह जरूर दे वह सरकार का कर्तव्य है परन्तु जैसे न्याय विभाग स्वतंत्र है और सुप्रीम कोर्ट मेंसरकार के खिलाफ भी फैसले दिए जाते हैं और दिए गए हैं वैसे ही शिक्षण विभाग भी सरकार से स्वतंत्र होने चाहिए परन्तु शिक्षण विभाग की स्वायत्तता को सच्चे अर्थ में उपलब्ध एवं कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक सत्ता के पीछे न भागकर स्वयं अपनी शक्ति का विकास करें इसलिए शिक्षकों को पद्य सत्ता की राजनीति से मुक्त होकर जनता से सम्पर्क रखना चाहिए।

हमारी शिक्षण पद्धति एक संयम पद्धति होनी चाहिए। अर्थात् वह संयम प्रधान हो, स्वच्छन्दता प्रधान नहीं। बचपन से हमारे बच्चे अपनी इन्द्रियों को अपने मन और बुद्धि को संयम में रखे यह मुख्य दृष्टि से होनी चाहिए उनकी वाणी में सत्यनिष्ठा उत्पन्न करनी होगी। विनोबा जी ने बेसिक शिक्षा पद्धति में हस्तकला के चुनाव को अधिक महत्व दिया है उनके अनुसार सूत कताई एक ऐसी हस्तकला है जो इस स्तर के छात्रों के वातावरण के अनुकूल हो सकती है।

इस हस्तकला में बालक बालिकाओं को शिक्षा के साथ साथ अर्थ की भी प्राप्ति होती है अतः उनमें अधिकाधिक कार्य एवं अधिकतम् उपस्थिति की प्रवृत्ति बनती है। इस पद्धति में विद्यालय एक ऐसी कर्मशाला के रूप में होती है जहाँ बालक बालिकायें अभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त करते हैं। अतः उनके आपसी व्यवहार तथा उनके कार्यो ओर विचारों में एकता पाई जाती है। उनमें तैयार की गई वस्तुओं के सौन्दर्य एवं उनकी उपयोगिता समझने के गुण आ जाते हैं जिससे उसकी सौन्दर्य परखने की शक्ति तथा विभिन्न वस्तुओं में उपयोगिता खोजने की प्रवृत्ति का विकास होता है।

शारीरिक विकास की दृष्टि से भी बेसिक शिक्षा पद्धति की उपयोगिता है। हस्तकला कार्यक्रमों में बालक बालिकायें अपने शरीर, मन चित्त सभी को एकाग्र करके कार्य करते हैं। कार्यरत होने की आवश्यकतानुसार उन्हें बैठना उठना और विभिन्न अंगों को हिलाना डुलाना पड़ता है। इस प्रकार कार्य में मन की एकाग्रता के साथ साथ शरीर के विभिन्न अंगों का व्यायाम तथा तद्नुसार शारीरिक विकास होता रहता है।

हमारा प्रमुख कर्तव्य एक ऐसी शिक्षण पद्धति की खोज करना है जो समाज में समानता की भावना तथा शांति स्थापित करने में सहयोग करें। आज की प्रशासन व्यवस्था के सम्बंध में विनोबा जी ने यह भावना व्यक्त की है कि उन्नत राष्ट्र के प्रशासन में शिक्षा और

सुरक्षा के लिए दो अलग विभाग न होकर एक ही विभाग होना चाहिए। ऐसी पद्धति की शिक्षा के विकास एवं प्रसार से सुरक्षा व्यय में पर्याप्त मितव्ययता हो सकती है। यह हमारे देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति है कि शिक्षा को प्रशासन के आयविहीन अंग की संज्ञा दी जाती है और यह व्यक्त किया जाता है कि देश की आर्थिक विपन्नता के कारण शिक्षा कार्यक्रमों पर अधिक व्यय करना संभव नहीं है। दूसरी ओर राष्ट्रीय बजट का लगभग आधा भाग सुरक्षा कार्यक्रमों पर व्यय किया जाता है। इस सम्बंध में विनोबा जी की आलोचना स्वाभाविक है शिक्षा विकास कार्यक्रमों को धनाभाव के कारण रोकना उचित नहीं है।

इस प्रकार शिक्षण पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसमें बालकों में शिक्षा द्वारा ऐसी भावना विकसित करनी चाहिए कि वह विषम परिस्थितियों में भी सत्य पर अडिग रहे। तथा उनमें सत्याग्रह की प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए। अभय सत्याग्रह के लिए परम आवश्यक है सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक व्यवस्था में अभय को विशेष स्थान देना चाहिए। शिक्षण नीति ऐसी होनी चाहिए जिसमें जाति और वर्गविहीन समाज की स्थापना हो सके। भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए प्रत्येक को समान सुविधा एवं अवसर उपलब्ध होने चाहिए। बालकों की शिक्षा ऐसी हो जिसके द्वारा समाज में स्वस्थ परम्पराओं की स्थापना हो सकें।

महात्मा गाँधी एवं विनोबा की शिक्षण नीति की नवीन शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

भारत में शिक्षा के स्वरूप तथा इसकी व्यवस्था में समय समय पर आमूलचूल परिवर्तन होते रहे हैं। परन्तु परिवर्तन व्यावहारिक रूप में नाममात्र के तो किए जाते रहे, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के काल में हमारे नेता गाँधी ने श्री जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में नवीन तालीम शिक्षा की संकल्पना की, जिसे स्वतंत्र भारत के संविधान तथा योजनाओं में स्थान तो मिला परन्तु व्यावहारिकता में नहीं आ पाई। पुनः 1966 के कोठारी आयोग द्वारा समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के द्वारा कार्य अनुभव देने की संस्तुति देने के उपरांत भी, आज देश के समक्ष स्पष्ट स्थिति है कि आज का नव शिक्षित युवा श्रम के प्रति निष्ठाहीन है। श्रम के प्रति निष्ठा के अभाव का परिणाम है मन बुद्धि, कौशल तथा शारीरिक अवयवों में सामजंस्य का अभाव। इन्हीं सभी तथ्यों और तत्वों को मिलाकर पूर्ण प्रजातंत्रात्मक नागरिक का निर्माण करना है। इस सन्दर्भ में नवीन शिक्षा नीति 1986 के विचार इस प्रकार है -

शिक्षा के द्वारा जिन सुधारों की संस्तुति यह दस्तावेज कर रहा है

शिक्षा का उद्देश्य है स्वस्थ्य शरीर, स्वच्छ मन एवं सभ्य समाज का निर्माण करना। उसके द्वारा विद्यार्थी में आत्म निर्माण की क्षमता से आत्मविश्वास का विकास हो ताकि वह आत्मनिर्भर हो सके। इन उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन प्रस्तुत करती है यह नीति। ''शाश्वत सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों और आधुनिक प्रोद्योगिकी में समन्वय स्थापित करने वाली शिक्षा पद्धति का विकास किया जाना चाहिए।''

इन उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन ''कॉमन कोर'' है। कॉमन कोर का आशय है सभी राज्यों में एक सा पाठ्यक्रम। पाठ्यक्रम का निर्माण तीस प्रतिशत केन्द्र सरकार तथा सत्तर प्रतिशत राज्य सरकारें करेंगी। यदि कॉमन कोर सम्पूर्ण देश के लिए एक सा बन जाता है तो देश की बहुत सी समस्याओं का निदान स्वतः ही हो सकता है। इससे सभी देशवासी एक पाठ्यक्रम से एक दूसरे के समीप आ सकते हैं। यदि कॉमन कोर के निर्माण में सत्तर प्रतिशत राज्यों के पास अधिकार रहा और तीस प्रतिशत केन्द्र के पास जैसा कि नवीन शिक्षा नीति शिक्षा के माध्यम के लिए मौन है अलग अलग राज्यों द्वारा निर्मित अलग अलग पाठ्यक्रम समस्त देश को एकता के सूत्र में बांधने में समर्थ हो सकता है।

दूसरी यह पद्धति ऐसे नागरिकों का निर्माण करना चाहती है जो भारत की समन्वयकारी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों से जुड़े रहें और दूसरी ओर भारतकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें अर्थात् शाश्वत मूल्यों और आधुनिक प्रोद्योगिकी में समन्वय स्थापित कर सकें। अगर उद्देश्यों की दृष्टि से इसका विश्लेषण किया जायें तो निश्चय ही शिक्षा पद्धति के क्रियान्वित होने पर इक्कीसवीं शताब्दी में हमारा प्रवेश खुशहाल भारत में होगा। परन्तु यह शिक्षा नीति तकनीकी के विकास के साधनों की चर्चा तो करती है किन्तु नैतिक मूल्यों का समावेश तकनीकी के विकास के साथ हम किस प्रकार कर पायेंगे बिना अपनी सांस्कृतिक विरासत का परिचय दिए हुए इसकी स्पष्ट घोषणा नहीं करती।

नवीन शिक्षा नीति में चर्चा की गयी है कि प्राथमिक शिक्षा बालकेन्द्रित गतिविधियों पर आधारित होनी चाहिए तथा शिक्षा की गति बढ़ाने के लिए उपचारात्मक शिक्षा की व्यवस्था भी हो जायेगी प्राथमिक शिक्षा के ये उद्देश्य विशेष रूप से उपचारात्मक शिक्षा निश्चित रूप से वर्तमान शिक्षा में पाये जाने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को घटाने में समर्थ हो

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 – डॉ. एम. ए. शाह (सेन्ट जॉन्स कॉलेज आगरा) एवं

डॉ. कमारी सन्तोष गावा (श्रीमती भगवती देवी जैन महाविद्यालय,आगरा) पेज 17

सकेगी तथा शिक्षा पर होने वाले व्यय का सुनिश्चित फल प्राप्त हो सकेगा। आठवीं पंचवर्षीय योजना से प्रयास किया जायेगा कि शिक्षा मद पर छः प्रतिशत से अधिक धन खर्च किया जा सके। आश्चर्य है कि कोठारी कमीशन के 1964-65 के सुझाव को 1991 में क्रियान्वित किए जाने का प्रयास किया जावेगा। नवीन शिक्षा नीति यह भी चर्चा की गयी है कि पूरे देश में प्राथमिक विद्यालयों की दशा सुधारने के लिए कृमिक अभियान शुरू किया जायेगा जिसका सांकेतिक नाम ऑपरेशन ब्लैक वोर्ड होगा। इस कार्य में शासन, स्थानीय निकाय, स्वयंसेवी संस्थायें और व्यक्तियों की पूरी भागीदारी होगी।

माध्यमिक शिक्षा की पुर्नरचना के द्वारा देश के आर्थिक विकास के लिए मूल्यवान जनशक्ति जुटायी जा सकती है इसके लिए देश के विभिन्न भागों में एक निर्धारित ढाँचे पर गति निर्धारक विद्यालयों की स्थापना की जायेगी। इनमें नवीन पद्धतियों को अपनाने और प्रयोग करने की छूट रहेगी अर्थात् इस प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था की जायेगी। नवीन शिक्षा नीति 1986 में गुणात्मक शिक्षा सबको प्रदान करने का संकल्प किया गया है। इसमें समानता की भावना के सार्वजनीकरण पर जोर दिया गया है। मानवीय संसाधन के विकास के लिए शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ाने अथवा नामांकन में वृद्धि होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु शिक्षा की गुणात्मकता के सुधार की ओर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा की समग्र प्रणाली मेंसुधार लाये विना शिक्षा राष्ट्रीय विकास में सहायक हो सकेगी ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता है।

अतः देश की समग्र शिक्षा प्रणाली में सुधार लाना चाहिए। ताकि उसे हमारी परिस्थितियों के अनुरूप वनाया जा सकें और परिणामस्वरूप ऐसे नवयुवक तैयार हो, जो महज डिग्रीधारी न वनें अपितु वास्तव में ज्ञाता, विचारक और जिज्ञासु हों। हमें शिक्षा प्रणाली में ऐसा परिवर्तन लाना है कि अपेक्षाकृत शिक्षक द्वारा शिक्षार्थी को सब कुछ बताने या शिक्षित करने के स्थान पर शिक्षक वालक के मस्तिष्क में विचारों की चिन्गारी प्रज्जवलित करें विचारोत्तेजक प्रक्रिया विकसित करें तथा वालक में अंतर्निहित श्रेष्ठताओं को प्रकाशित करें।''

इस प्रकार नवीन शिक्षा नीति में इसे क्रियान्वित करने की महान चुनौती है जिससे भारत की शिक्षण नीति में वास्तव में परिवर्तन हो सकें।

अध्याय : सप्तम

गुरू शिष्य सम्बन्ध

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध

(ख) विनोबा जी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबा जी के गुरू शिष्य सम्बन्धी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा

(घ) अध्यापक प्रशिक्षण

गुरू शिष्य सम्बन्ध

(क) महात्मा गाँधी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध :-

प्राचीन काल में हमारे यहां गुरू को आध्यात्मिक पिता तथा शिष्य को आध्यात्मिक पुत्र माना जाता था। अतः गुरू और शिष्य का सम्बंध पिता और पुत्र की तरह होता था। आचार्य या गुरू अपनी विद्या कौशल, प्रेम और सहानुभूति के द्वारा विद्यार्थी के जीवन का निर्माण करता था। प्रत्येक शिष्य को कम प्रवीण किन्तु चरित्रवान शिक्षक की शिष्यता स्वीकार करनी चाहिए, जो गुरू अपना विषय पढ़ाने की जिम्मेदारी समझता हो। पर शिष्य के चरित्र के विषय में अपनी जिम्मेदारी नहीं मानता ऐसे व्यक्ति को हम गुरू नहीं कह सकते हैं। आदर्श गुरू को शिष्य की पढ़ाई में ही नहीं बल्कि उसके सारे जीवन में दिलचस्पी लेना और उसके हृदय में प्रवेश करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा गुरू शिष्य को भयानक या यमराज जैसा नहीं लगेगा, बल्कि पूज्य होते हुए भी माता से अधिक निकट मालूम होगा।

विद्या की सेवा विनय से हो, इतना ही नहीं विनय के बिना विद्या आती भी नहीं। शिष्य को गुरू के प्रति गुरूभाव अर्थात् श्रद्धा, विनय और सेवाभाव से व्यवहार करना चाहिए। गुरू जो कहता है मेरे लिए कहता है यह श्रद्धा उसे रखनी चाहिए। गुरू ऐसी श्रद्धा के योग्य नहीं है यह निश्चय हो जायें तो विनय को न छोड़कर गुरू को ही छोड़ देना चाहिए। शिष्य को गुरू से प्रश्न करके अपनी शंकाये मिटानी चाहिए।

प्राचीन कालीन या वैदिक कालीन शिक्षण पद्धति पर टिप्पणी करने वाले यह आरोप लगाते है कि शिक्षा देने का कार्य करने वालों ने अपना विशिष्ट वर्ग तैयार कर उस व्यवसाय को केवल अपने ही अधिकार में ले लिया था।

यस्यामग : केवल जीविकाये,

वं ज्ञानपयं वणिजं वदन्ति ।''

अर्थात् जो अपनी विद्या का उपयोग केवल पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए करता है वह व्यक्ति ब्राह्मण न होकर ज्ञान की दुकान लगाने वाला बनिया है।

शिक्षा प्रणालियाँ और उनके प्रवर्तक, गुरू और शिष्य – पृष्ठ 48 आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

(ख) विनोबा जी के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्ध :-

गुरू शिष्य संबंध न हो तो भी सह विचार, सुख संवाद, विचारों का आदान प्रदान यह सारा स्वाभाविक ही है। इसमें लेन देन होगा केवल देन नहीं। गुरू से शिष्य को ज्ञान मिलता है ऐसी बात नहीं। गुरू शिष्य का एकमत संवाद होगा तभी कुछ मिलेगा इसलिए मैं कहता हूं कि साधना, सांसारिक व्यापार, संगठन या राजसत्ता को हम भले ही अमान्य कर दें परन्तु सहवास शिक्षण, अयोग्य शिक्षण को तो मानना ही पड़ेगा। जैसे मित्र अनन्य होते है वैसे ही शिक्षक विद्यार्थी भी अनन्य है। इस भूमिका से शिक्षण होना चाहिए। मैं शिष्य को सिखा रहा हूँ यह शिक्षक का भाव गलत है। शिक्षक को मानना चाहिए कि वह एक विद्यार्थी है। "तेजस्विनावधीतमस्तु" हम दोनो का अध्ययन तेजस्वी बने यानि शिक्षक भी अध्ययन करता है। वैसे तो गुरू शिष्य को बहुत कुछ देता है परन्तु साथ-साथ वह भी बहुत कुछ प्राप्त करता है माँ बच्चे को स्तनपान कराती है उसका उसे कुछ अभिमान होता है। यदि वह नहीं करायेगी तो कैसे चलेगा बल्कि माँ और बालक दोनों को स्तनपान में आनंद मिलता है और उसमें दोनों की समान भूमिका है वैसे ही अध्ययन अध्यापन में शिष्य गुरू की समान भूमिका है।

इसी गुरू शिष्य सम्बन्ध में कैनेय बाउल्डींग का एक बहुत सुन्दर वाक्य है

" When we love, we increase love within ours, and in ourselves. or a teacher increases knowledge with in his students and in himself by the simple act of teaching"

जब हम प्रेम करते है, तब प्रेम को बढ़ाते है, औरों में और अपने में, जैसे कि एक शिक्षक ज्ञान को बढ़ाता है। विद्यार्थियों में और अपने में सिखाने की एक सादी सी कृति के द्वारा।

जैसे- राम के चरणों में अयोध्या से लंका तक असंख्य पत्थरों का स्पर्श हुआ होगा, परन्तु उनमें से केवल अहिल्या शिला का ही उद्धार हुआ, परन्तु अहिल्या को भी

शिक्षा विचार - विनोबा

कुछ अर्वाचीन भारतीय शिक्षा शास्त्री - विनोवा

असंख्य लोगों के पैरों ने छुआ होगा, परन्तु राम के पादस्पर्श से ही वह जागी।

शिक्षण शास्त्र को यह "राम अहिल्या न्याय" रट लेना चाहिए। उससे अहंकार नष्ट होकर दृष्टि साफ होगी। गुरू और शिष्य दोनों में परस्पर परायणता होगी तभी ज्ञान का लेनदेन होगा।

शिक्षक विद्यार्थी परायण, विद्यार्थी शिक्षक परायण और दोनों ज्ञान परायण और सेवा परायण यह गुरू और शिष्य में संबंध होने चाहिए। विद्यार्थियों के लिए गुरू देवता और गुरू के लिए शिष्य देवता है। विद्यार्थियों को गुरू से जो ज्ञान मिलेगा, वह सर्वस्व होगा और गुरू सेवा ही उनके लिए सर्वस्व होगी। शिक्षकों के लिये विद्यार्थियों को ज्ञान देना और उनकी चिंता करना यही सर्वस्व होगा।

दोनों लोगों को यह मालूम नहीं होना चाहिए कि इस सेवा से हमारा कोई मतलब सधता है अथवा नहीं। इसका मतलब यह है कि विद्यार्थियों के लिए गुरू सेवा और शिक्षकों के लिए विद्यार्थी सेवा पर्याप्त उद्देश्य, एक मात्र ध्येय और अनन्य होना चाहिए और दोनों मिलकर परमेश्वर की सेवा कर रहे है ऐसी अनुभूति होनी चाहिए।

गुरू की आवश्यकता के बारे में भी कुछ विचार करें तो निःसंदेह कोई भी भौतिक ज्ञान किसी भी बच्चे को बिना गुरू के प्राप्त नहीं होता। माता पिता और गुरू समझते हैं तो बच्चा ज्ञान प्राप्त करता है इस प्रकार का कोई गुरू नहीं मिला और ज्ञान विकसित हो गया, ऐसा कभी संभव नहीं हो पाता है जो कि गुरू के मागदर्शन के बिना पूर्ण हो जायें। उत्तम गुरू उनके शिष्यों से ही पहचाने जाते हैं जिनके शिष्य अपने गुरूओं से आगे बढ़ते हैं वे उत्तम गुरू हैं जिनके शिष्य अपने गुरूओं से कमजोर हुए वे कमजोर गुरू हैं।

हिन्दुस्तान में ऐसे गुरू शिष्यों की जोड़ियां सर्वत्र देखने को मिलती है जैसे असम में शंकर माधवदेव। माधवदेव शंकरदेव के आगे गए। असम में भक्तिमार्ग का जो विस्तार हुआ वह माधवदेव से ही हुआ। उधर बंगाल में रामकृष्ण विवेकानंद की गुरू-शिष्य की आदर्श जोड़ी हुई। अवश्य ही माधवदेव यह कबूल नहीं करेंगे कि वे रामकृष्ण से कुछ आगे बढ़े। वे नहीं मानेंगे न ही कहेंगे। फिर भी मान लीजिए। विवेकानंद न होते तो रामकृष्ण का पता दुनिया को न चलता। माधवदेव न होते तो असम के शंकरदेव का पता भी नहीं चलता।

आत्म ज्ञान और विज्ञान - विनोबा, पृष्ठ 51

शिक्षा विचार - विनोबा, पृष्ठ 23

अब प्रश्न है कि गुरू को कहाँ ढूढ़ा जावे, अनुभव यह है कि शिष्यों को गुरू ढूढ़ना नहीं पड़ता गुरू ही शिष्यों को ढूढ़ा करते है इसलिए प्रत्येक गुरू को शिष्यों के गुणों का विकास करना चाहिए। गुरू तो स्वयंमेव आकर बोध देते जायेंगे- कभी जागृति में कभी स्वप्न में तो कभी संकेतरूपेण। गीता में तो भगवान ने आश्वासन दे दिया था कि भक्त को मैं ही ज्ञान देता हूं। इस तरह गुरू की खोज का अर्थ है योग्य शिष्य बनाना।

शिष्य के लिए गुरू से बढ़कर आदरणीय देवता नही। परन्तु गुरू के लिए भी शिष्य से बड़ा आराध्य देवता नहीं है। दोनों परस्पर गुरू शिष्य है। एक बार उद्धव जी भगवान से मिलने आये। भगवान अपने पूजा घर में थे। पूजा पूरी होते ही वे उद्धव से मिले। उद्धव ने पूछा " भगवान आप किसकी सेवा कर रहे थे।" यह तुम नहीं जानते वह हमारा रहस्य है।" नहीं जानता इसलिए तो पूछता हूं। क्या मुझसे छिपाकर रखोगे ? ठीक है तो बताता हूं, सुनो मैं तेरी ही पूजा कर रहा था।

तो शिक्षक विद्यार्थी परायण, विद्यार्थी शिक्षक परायण, दोनो ज्ञान परायण और ज्ञान सेवा परायण, यही शिक्षण की योजना होनी चाहिए।

(ग) महात्मा गाँधी एवं विनोबाजी के गुरू शिष्य सम्बंधी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

आज के युवा वर्ग में बढ़ती हुई गुरूजनों के प्रति अनादर की भावना तथा अनुशासनहीनता राष्ट्र के लिए चिंता का विषय हो गया है। इसके लिए हमारे पाठ्यक्रम को इस प्रकार संशोधित और पुनर्गठित करने की आवश्यकता है ताकि हमारे सामाजिक और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना में शिक्षा एक सशक्त माध्यम का कार्य कर सके। यह मूल्य शिक्षा न केवल छात्रों को सामाजिक, नागरिक एवं नैतिक दृष्टि से ऊपर उठायेगी वरन् समाज में फैले मतभेद, धर्मान्धता, अंधविश्वास एवं हिंसा का उन्मूलन करने में भी सहायक होगी। इस प्रकार राष्ट्र का चरित्र ऊँचा होगा। नवीन शिक्षा नीति इस दिशा में विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

प्राचीन काल से ही गुरू को महत्व दिया जाता रहा है उसे हमारे धार्मिक ग्रंथों में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के समकक्ष बताया गया है। शिक्षक सदैव से ही अपने चरित्र तथा आदर्श व्यवहार से अनुप्रेरित करता आया है। छात्र उसके व्यवहार और आचरण का अनुकरण करते हैं। समाज हमेशा ही शिक्षक से आदर्श एवं समाज सम्मत व्यवहार करने की अपेक्षा करता है। शिक्षक को मानव अभियंता कहा जाता है। शिक्षक के कार्य की तुलना अन्य कार्यों से नहीं की जा सकती। शिक्षक का कार्य व स्थान बड़ा गौरवशाली है।

विद्यार्थी अपने गुरू का अनुकरण करते हैं। वे उसे अपना नायक मानकर उसकी पूजा आरम्भ कर देते हैं। अतः आवश्यक है कि अध्यापक का चरित्र एवं व्यवहार अनुकरणीय हो। शिक्षक विद्यार्थियों को उचित दिशा प्रदान करता है।

'' शिक्षक का अपना चारित्र भी ऐसा होना चाहिए जो मूक शिक्षण का कार्य करें, जिसे देखकर विद्यार्थी की श्रद्धा जागृत हो जाये।''

हमारे देश में प्राचीन काल से ही शिक्षकों का स्थान अत्यंत सम्मानित रहा है। शिक्षक गुरू माना जाता रहा है तथा वह समाज एवं शासन व्यवस्था का मार्गदर्शक रहा है। धार्मिक नेताओं एवं समाज सुधारकों को लोग अपना गुरू (शिक्षक) मानते थे। राजा भी शिक्षक का आदर करता था तथा उसकी पाठशाला (शिक्षाकेन्द्र) एवं उसका स्वयं का व्यय भार वहन करता था। गुरू के साथ उसके शिष्यों का भी सर्वत्र सम्मान होता था। किन्तु शोधार्थिनी यह अनुभव करती हैं कि वर्तमान में शिक्षक के सम्मान तथा स्तर में गिरावट प्रतिबिम्बित हो रही है, और यह उसकी अकुशलता के कारण हो रहा हैं।

(घ) अध्यापक प्रशिक्षण :-

नवीन शिक्षा नीति में शिक्षक प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया इसमें शिक्षकों में विश्वास व्यक्त किया गया है। यह कहा गया है कि शिक्षकों की चुनाव विधि में सुधार करना है, उनके कार्य करने एवं सेवा शर्तो में सुधार करना है, शिक्षक प्रशिक्षण सम्बंधी प्रभावी मशीनरी का विकास करना है, शिक्षक प्रशिक्षण सम्बंधी प्रभावी मशीनरी बनाना है, शिक्षक संघो को व्यावसायिक दुराचरण पर रोक लगाने एवं व्यवसायिक गरिमा में वृद्धि करने के लिये प्रोत्साहित करना है। शिक्षकों की एक आचार संहिता का विकास करना है तथा शिक्षकों में नवाचार की स्थितियों का विकास करना है। नई शिक्षा नीति में प्राथमिक स्तर पर शिक्षण प्रशिक्षण की पूर्णकालिक एवं अंशकालिक व्यवस्था करने का संकल्प है। अपौचारिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करना है। शिक्षण संस्थाओं के प्रधानों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करनी हैं। संस्थागत नियोजन की भी बात की गई है स्वायत्त संस्थाओं एवं सामुदायिक नेताओं के सहयोग की भी बात की गई है। क्रियात्मक शोध तथा प्रयोग की व्यवस्था तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डी0 आई0 ई0 टी0) के संगठन पर नई शिक्षा में बल

दिया गया है।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व शिक्षा महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों को ही पूर्ववत सौंपा गया है। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एन0 सी. टी. ई.) के सहयोग से विश्वविद्यालय शिक्षा एवं परीक्षा की व्यवस्था करेंगे। कुछ कॉम्प्रीहेन्सिव शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना की बात की गई है। नवाचार को प्रोत्साहन देने की बात कही गयी है। कुछ उच्च स्तरीय शिक्षा महाविद्यालयों को स्वायत्तशासी संस्था बनाने का प्रयास किया जायेगा। सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद को सौंपा गया है।

शिक्षा पद्धति में लगे हुए अध्यापक को प्रशिक्षित होना चाहिए। आज की शिक्षा बाल केन्द्रित व क्रिया प्रधान हो गई है। इसलिए अनेक मनोवैज्ञानिक विधियों का जन्म हुआ है। सक्रियता एवं क्रियाशीलता विद्यार्थियों का स्वभाव है। पाठ्यक्रमेतर विषयों को विषय के रूप में मान्यता दी जा चुकी है। वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अन्वेषण से हमें ज्ञात हो चुका है कि दो व्यक्ति समान न होकर भिन्न भिन्न गुणों से युक्त होते हैं। श्रव्य दृश्य साधनों से पाठ को रूचिकर लाभकारी एवं स्थायी बनाने का उपक्रम हो रहा है। नित्य प्रतिदिन नवीन खोजे हो रही है। विद्यालय को जनतंत्रात्मक प्रणाली पर संगठित करके बालक बालिकाओं का समाजीकरण किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में अध्यापकों को शिक्षण कला में निपुण बनाना नितांत अनिवार्य हो गया है। प्रशिक्षण द्वारा सभी शैक्षणिक सिद्धांतों और साधनों का व्यावहारिक प्रयोग तथा अध्ययन का अनुभव प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य है। लॉक के अनुसार जो पढ़ाने का ढंग जानता है वही शिक्षा के गुप्त रहस्य का ज्ञाता होता है। अतः शोधार्थिनी की भी यही भावना हैं कि शिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित अध्यापकों की ही नियुक्ति होनी चाहिये।

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था को आवश्यक माना गया है। देश में केवल उन स्थानों में जहाँ प्रशिक्षित शिक्षकों का बहुत अधिक अभाव है। वहाँ ही व्यक्ति प्रशिक्षण के अभाव में भी शिक्षकीय कार्य कर सकेगा। अभी देश में लगभग 1200 प्राथमिक तथा 360 माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की प्रशिक्षण संस्थायें है। इन प्रशिक्षण संस्थाओं में भौतिक मानवीय तथा शैक्षिक स्तर के अभाव पाये जाते हैं शिक्षक प्रशिक्षण विधियाँ परम्परागत पुरानी हो गयी है तथा पाठ्यपुस्तकें भी बहुत पुरानी ही

शिक्षक प्रशिक्षण नई शिक्षा नीति की आधारशिला – बालेराम बघेल (प्रोफेसर नेहरू शिक्षा महाविद्यालय) हिन्डौन सिटी – पेज 150

प्रचलित है।

शिक्षा के पुनर्गठन में नई शिक्षा नीति, शिक्षक प्रशिक्षण के वर्तमान स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर आमूलचूल परितर्वन लाना चाहती है। इस दृष्टि से प्रत्येक जिले में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान विकसित करने का सुझाव दिया गया है। इन संस्थानों में पूर्व सेवा तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण व्यवस्थित किया जायेगा। साथ ही साथ सतत् शिक्षा हेतु अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए व्यक्तियों का प्रशिक्षण भी यहां व्यवस्थित होगा।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को कानूनी स्वरूप देकर उसे और अधिक प्रभावी भूमिका अदा करने योग्य विकसित किया जायेगा प्रत्येक राज्य में इस प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं के विकास से शासन तत्काल टास्क फोर्स स्थापित करेगा तथा उस राज्य के लिए अपेक्षित ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता का परीक्षण करेगा। टास्क फोर्स का कार्य वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं का मूल्यांकन करके यह देखना भी होगा कि क्या उन्हें जिला शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थाओं के रूप में विकसित किया जा सकता है।

प्राथमिक स्तर पर शिक्षण प्रशिक्षण :-

वर्तमान प्राथमिक शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्था में निम्न कार्यक्रम व्यवस्थित किये जायेंगे।

1. औपचारिक शाला व्यवस्था के लिए पूर्व शाला सेवा तथा शाला सेवाकालीन शिक्षकों को प्रशिक्षण की व्यवस्था।
2. अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा शिक्षकों और कार्यकर्ताओं, निरीक्षकों आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था।
3. शिक्षा संस्थाओं के प्रमुखों के प्रशिक्षण तथा उन्मुखीकरण की व्यवस्था। संस्थागत नियोजन तथा माइक्रोस्तरीय शिक्षण के प्रशिक्षण की व्यवस्था।
4. शाला शिक्षा को प्रभावित करने वाली स्वायत्ती संस्थाओं, सामुदायिक नेताओं के उन्मुखीकरण की व्यवस्था।
5. जिला शिक्षा वोर्ड तथा शाला संगम कार्यविधि को शक्ति या सबलता प्रदान करना।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्था (डी. आई. ई. टी.) में कम्प्यूटर

आधारित शिक्षण व्ही. सी. आर., टी. वी. आदि उपलब्ध कराये जायेंगे। यहां प्रशिक्षण हेतु आये अध्यापक एवं अन्य अधिकारीगण इन सुविधाओं का उपयोग शिक्षण कार्यक्रम विकसित करने हेतु करेंगे।

प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा की आधारशिला होती है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि इस स्तर पर शिक्षक का कार्यक्रम प्रभावी हो। शिक्षा के लिए आवश्यक है कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रभावी हो, तभी अच्छे शिक्षकों का निर्माण संभव है। देश में वर्तमान में प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए लगभग 1200 शिक्षा विद्यालय है। इन शिक्षा विद्यालयों में अनेक दोष है नवीन शिक्षा नीति में इन दोषों को दूर करने का प्रावधान रखा गया है। प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए विशिष्ट महत्व प्रदान करते हुए विचार किया गया है कि कुछ चयनित संस्थाओं को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डी0आई0ई0टी0) के रूप में विकसित किया जायेगा।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षण प्रशिक्षण :-

नवीन शिक्षा नीति के अनुसार माध्यमिक स्तर की शिक्षक शिक्षा व्यवस्थित करने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्ष महाविद्यालयों का ही रहेगा। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् (एन0सी.टी.ई0) के सहयोग से विश्वविद्यालय शिक्षक शिक्षा परीक्षा, उपाधियाँ प्रदान करने आदि का कार्य करेंगे तथा माध्यमिक शिक्षक शिक्षा के स्तर को उच्च बनाने का प्रयास करेंगे। कुछ बड़े सम्पन्न शिक्षा महाविद्यालय कॉम्प्रीहेन्सिव शिक्षा महाविद्यालयों के रूप में विकसित किये जायेंगे। इन शिक्षा महाविद्यालयों में प्राथमिक शिक्षक शिक्षा तथा चार वर्षीय उच्चतर माध्यमिक शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम विकसित किया जायेगा। इनमें शोध तथा एस0 सी0 ई0 आर0 टी0 से सम्बंधित प्रशिक्षण भी व्यवस्थित किया जायेगा। नवाचार तथा प्रयोग को प्रोत्साहित करने हेतु विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभाग तथा कुछ उच्च कोटि के शिक्षा महाविद्यालयों को स्वायत्तशाली बनाया जायेगा।

प्रशिक्षण के दौरान छात्राध्यापकों को स्पष्ट करना होगा कि शिक्षा की प्रक्रिया को व्यवस्थित करने में शिक्षक व्यवस्थापक का कार्य करता है। इस सन्दर्भ में शिक्षा प्रक्रिया के दो पक्ष है

1. व्यवस्था 2. क्रियान्वयन

ये दोनो मिलकर शिक्षा को व्यवस्था का रूप प्रदान करते हैं। आई0

के0 डेविस ने शिक्षण व्यवस्था के निम्नांकित सोपान बताये हैं –

1. शैक्षिक लक्ष्यों का निर्धारण

2. अधिगम स्त्रोतों का प्रभावी कुशल, तथा मितव्ययी ढंग से शिक्षक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यवस्थापन।

3. शिक्षक क़ौशल का चयन एवं छात्रों को अभिप्रेरित करना।

इन सोपानों का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान होना प्रत्येक अध्यापक के लिए आवश्यक है क्योंकि अध्यापक की सफलता, शैक्षिक दक्षता के साथ साथ सीखने का वातावरण उत्पन्न कर सकने तथा स्थितियों के अनुरूप ही निर्णय लेने के अनुरूप होती है।

अध्याय : अष्टम

विद्यालय व्यवस्था

(क) गाँधी जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था।

(ख) विनोबा जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था, परीक्षा व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था।

(ग) गाँधी जी एवं विनोबा जी की माध्यमिक स्तर तक विद्यालय व्यवस्था की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा।

विद्यालय व्यवस्था

(क) गाँधी जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था :-

विद्यालय व्यवस्था :-

किसी विद्यालय की सफलता उसके प्रबंध और व्यवस्था पर निर्भर है। प्रभावशाली शिक्षा के लिए उत्तम प्रबंध की परम आवश्यकता है। बिना समुचित प्रबंध के विद्यालय का कार्यक्रम कदापि सफल नहीं हो सकता है। छात्रों की संख्या भले ही अधिक हो, परन्तु यदि प्रबंध उत्तम नहीं है तो विंद्यालय अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। पाठ्यक्रम, समयसारिणी, पाठ्न सामग्री, उपकरण, भवन आदि की अपेक्षा प्रबंध और व्यवस्था अधिक महत्वपूर्ण है।

विद्यालय की व्यवस्था एक साधन है उद्देश्य नहीं। विद्यालय व्यवस्था के पीछे जो आदर्श होते हैं वे भुलाये नहीं जा सकते है समाज के आदर्श के अनुरूप ही शिक्षा के आदर्श निश्चित किए जाते हैं।

जॉन डीवी ने कहा है –

" जो सर्वोत्तम और सबसे अधिक बुद्धिमान मनुष्य अपने बच्चे के लिए चाहता है वहीं अपने सब बच्चों के लिए समाज चाहता है। हमारे विद्यालयों का अन्य कोई आदर्श संकीर्ण और अवांछनीय है और यदि उस पर चला जायेगा तो वह हमारे प्रजातंत्र को नष्ट कर देगा।"[1]

प्राचीन समय में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान उपार्जन था परन्तु वर्तमान युग में शिक्षा का उद्देश्य है गणतंत्र राज्य के लिए योग्य नागरिक तैयार करना। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य समाज के उद्देश्य के साथ साथ बदलते रहते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा को ही लीजिए पहले इसका उद्देश्य केवल साक्षरता प्रदान करना था अर्थात् पढ़ना, लिखना और अंकगणित का ज्ञान परन्तु बाद में यह उद्देश्य बदल दिया गया भाषा और अंकगणित के साथ साथ सामाजिक विषय और प्रकृति अध्ययन की आवश्यकता समझी जाने लगी और कला तथा हस्तकौशल का समावेश भी पाठ्यक्रम में आवश्यक समझा जाने लगा।

हमारे देश का संविधान गणतंत्र प्रणाली पर आधारित है। अतएव

---

1. शिक्षा के दा. एवं सा. सिद्धांत – रमन विहारी लाल

हमको अपने विद्यालयों में छात्रों के मन में शुरू से ही गणतंत्र की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। विद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था और कार्यप्रणाली भी गणतंत्रात्मक होनी चाहिए। विद्यालय के समस्त कार्यो में छात्रों का पूर्णतया सहयोग और भाग होना वांछनीय है। फिर अध्यापक को प्रत्येक छात्र में अपने कर्तव्यों के प्रति भावना उत्पन्न करना आवश्यक है। यह वांछनीय है कि छात्र अन्य साथियों और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को न भूले। अधिकारों का ज्ञान तो कर्तव्यों के साथ स्वतः ही हो जाता है। पहले कर्तव्यों का ज्ञान कराने की आवश्यकता है हमारे संविधान की दूसरी विशेषता है राष्ट्रीयता। हमें समूचे देश का एक ऐसे राष्ट्र के रूप में निर्माण करना है। जिसमें जातिवाद और प्रांतीयता के लिए कोई स्थान न हो और प्रत्येक व्यक्ति देश प्रेम से प्रेरित हो। विद्यालय का प्रत्येक कार्य इस प्रकार सम्पादित होना चाहिए। जिससे छात्रों में राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न होते रहे और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी अंकुरित होती रहे। हमारे संविधान की एक और विशेषता धर्म निरपेक्षता है। किसी भी विद्यालय में एक ही धर्म के अनुयायी नहीं पढ़ते है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र दूसरे धर्म के अनुयायियों के प्रति समान भाव से व्यवहार करें और प्रत्येक धर्म को आदर की दृष्टि से देखें। हमारे देश की एक अन्य विशेषता है कि प्रत्येक देशवासी को समान अधिकार प्राप्त है। इस दृष्टि से ऊँच-नीच की भावना को एक दम समाप्त कर देना है। मध्ययुग में इस भावना की बहुत प्रबलता थी। परन्तु वर्तमान काल में नवभारत के निर्माण में ऐसी विचारों के लिए कोई स्थान नहीं है। समाज में इन दूषित भावनाओं को दूर करने के लिए सर्वोत्तम स्थान विद्यालय ही है।

प्रजातंत्र में प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है कि उसे उचित शिक्षा तथा पर्याप्त भोजन प्राप्त हो। अतएव शिक्षा का यही उद्देश्य है कि वह छात्र की व्यवहारिक और व्यावसायिक कुशलता का विकास करें जिससे वह स्वयं अपने और अपने परिवार के भोजन की समस्या को हल कर सके और देश को समृद्धशाली बनाने में अपना योगदान दे सकें। विद्यालय की व्यवस्थित उन्नति के लिए उत्तम व्यवस्था आवश्यक है। उत्तम व्यवस्था के मूल तत्व निम्न है।

1. ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना जिससे शिक्षा का यथाक्रम कार्य चल सके। प्रभावपूर्ण अध्यापन, विद्यालय का स्वच्छ वातावरण हवादार कमरे, छात्रों के बैठने की उचित व्यवस्था, उत्तम समय सारिणी, आवश्यक उपकरण तथा उनका समुचित प्रयोग पुस्तकालय व वाचनालय आदि शिक्षा की उत्तम व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

2. पाठशाला के विभिन्न अंगों में सामंजस्य स्थापित करना तथा कक्षा अध्यापन, व्यक्तिगत अध्यापन,

स्वास्थ्य कार्यक्रम, पाठातिरेक कार्य, अभिरूचियों का विकास, शैक्षिक पर्यटन व यात्रायें आदि सभी आवश्यक कार्यो में सामंजस्य स्थापित करना जरूरी है जिससे वे एक दूसरे के पूरक हो सके।

3. अध्यापक को छात्रों की उन्नति के लिए सुविधाओं का पूरा उपयोग करने का अवसर देना- पुस्तकालय, वाचनालय, पाठेतर कार्य, खेलकूद, शारीरिक विकास, चरित्र निर्माण, नेतृत्व की शिक्षा, अवकाश के समय के सदुपयोग की शिक्षा आदि का प्रबंध ऐसा होना चाहिए जिससे अध्यापकगण छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए इनका समुचित उपयोग कर सकें।

4. नवीन प्रयोगों के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना तथा उनको प्रेरणा देना कि शिक्षा शास्त्र उन्नति शील है एवं उसमें नित नवीन प्रयोगों की गुजांइश है। प्रत्येक विद्यालय में यह सुविधा होनी चाहिए कि पाठ्न विधियों तथा शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के प्रयोग किए जा सके और प्रधानाचार्य को अपने सहपाठियों को इसके लिए सदा प्रोत्साहन देना चाहिए।

विद्यालय व्यवस्था के सम्बंध में गाँधी जी के अनुसार विद्यालय एक ऐसा मंदिर है जहां अध्यापक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और उनमें तथा विद्यार्थियों के संयुक्त प्रयास से उनमें इतना उत्पादन कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से निर्भर हो। वे विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र बनाने पर बल देते थे। उनका कहना था कि शिक्षा के क्षेत्र में समुदायों का सहयोग प्राचीन काल से ही रहा है, आज भी है, और भविष्य में भी बिना इसके सहयोग के शिक्षा की उचित व्यवस्था करना सम्भव नहीं होगा।

समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा में दोहरा कार्य करता है एक तो वह स्वयं ऐसा वातावरण प्रस्तुत करता है कि बच्चे इसमें भाषा, आचरण, मूल्य और मान्यताओं की शिक्षा प्राप्त करते हैं और दूसरे वह अपने अंदर शिक्षा के अनेक औपचारिक और अनौपचारिक अभिकरणों का निर्माण करता है।

समुदाय विद्यालयों का निर्माण करके भी बच्चों के शारीरिक विकास की व्यवस्था करते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे विद्यालयों का सहयोग भी करते हैं। बिना समुदाय के सहयोग के विद्यालय अपने कार्यो को पूरा नहीं कर सकते। जो समुदाय विद्यालय का इस क्षेत्र में सहयोग नहीं करते वे अपने एक बड़े शैक्षिक उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं करते।

समुदाय बच्चों के उचित विकास के लिए विद्यालयों की स्थापना भी करता है। विद्यालय अपने अन्दर भी अनेक प्रकार की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं तथा

खेलकूद आदि का आयोजन करते हैं। इन सभी कार्यो में बच्चों की सक्रिय साझेदारी होती है। समुदाय के सदस्य इन आयोजनों में विद्यालयों की सहायता करते है। वे जन शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था भी करते हैं और इन कार्यो में विद्यालयी बच्चों का सहयोग प्राप्त करते है। इस प्रकार अपने सही अर्थो में वच्चों का सामाजिक विकास समुदाय द्वारा ही होता है।

प्रत्येक समुदाय विभिन्न प्रकार की औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षण संस्थाओं का निर्माण करके उनके द्वारा संस्कृति का संरक्षक एवं उसमें विकास करने का प्रयत्न करते है इस प्रकार विद्यालयों के सहायक के रूप में भी समुदाय की अहम भूमिका होती है।

प्रायः सभी समुदाय विद्यालयों का निर्माण कर उनमें उच्च सामाजिक वातावरण तैयार करने का प्रयत्न करते है वे आशा करते हैं कि विद्यालयों में अध्यापक नैतिकता एवं चरित्र के उदाहरण हो, उनके सम्पर्क में बच्चे नैतिकता की ओर बढ़े और अपने चरित्र का निर्माण करें समुदायों को उद्योग की शिक्षा के लिए विद्यालयों पर निर्भर रहता पड़ता है। इसके लिए समुदाय विद्यालयों और महाविद्यालयों का निर्माण करते हैं। आज तो कृषि और कुटीर उद्योग धंधों की शिक्षा की व्यवस्था भी विद्यालयों में होने लगी है। परन्तु बिना समुदाय के सहयोग के ये भी अपना कार्य नहीं कर सकते हैं। आध्यात्मिक विकास की शिक्षा भी बच्चे समुदाय के बीच रहकर और उनके द्वारा निर्मित विद्यालयों में ही प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में समुदायों का हाथ बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है और आज भी वे बच्चे की शिक्षा में सबसे अधिक सहयोग देते हैं।

चिलियम ईगर के अनुसार -

" मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसने वर्षो के अनुभव से सीख लिया है कि व्यक्तित्व और सामूहिक क्रियाओं का विकास समुदाय द्वारा ही सर्वोत्तम रूप से किया जा सकता है।"[1]

" Science man by watar is a social being he has learnt through the years. That the personality as group activities can be best developed through community."

इस सम्वंध में एम0. एस0 पटेल लिखते हैं कि -

" हम अपने स्कूलों को समुदायों में बदल दें जहां पर विद्यार्थियों की वैयक्तिकता न नष्ट हो वल्कि सामाजिक सम्पर्को और सेवा के अवसरों से विकसित हो।"[2]

---

1. शिक्षा के दा.एवं सा. सिद्धांत - रमन विहारी लाल

2. शिक्षा के दा.एवं सा. सिद्धांत - रमन विहारी लाल

अनुशासन व्यवस्था :–

अब हम महात्मा गाँधी के अनुशासन की अवधारणा के सम्बंध में विचार करेंगे और यह खोजने का प्रयास करेंगे कि वास्तव में अनुशासन हीनता का जो साम्राज्य शिक्षा जगत एवं सामाजिक पर्यावरण में व्याप्त है क्या उसका सम्बंध महात्मा गाँधी जी से है, यदि नहीं तो अनुशासन बनाये रखने के लिए इन्होने क्या विधान प्रतिपादित किया है ?

आज शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन हीनता को हम आसानी से देख सकते हैं। इनकी उच्छंखलताओं से विश्व विद्यालयीय वातावरण पूर्ण रूप से दूषित एवं विषावत हो गया है। इस कारण समाज के रचनात्मक कार्यो की प्रगति अवरूद्ध हो गयी है। यहां तक कि अनुशासन के अभाव में प्रबंध तंत्र एवं प्रशासन ढीले पड़ते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों के विषय में हम सभाओं में, क्लबों में, रेल के डिब्बों में, बसों में, ट्राम गाड़ियों में तथा दैनिक वार्तालाप में साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों में प्रायः आलोचना व प्रत्यालोचना को सुनने के आदी हो गये है, किन्तु इस दिशा में रचनात्मक कदम उठाने की किसी में भी सामर्थ्य दृष्टिगत नहीं हो रही है।

कुछ वर्षो से हम विद्यालय एवं विश्व विद्यालय क्षेत्र में अनुशासन हीनता की घटनाओं को घटित होते देख रहे हैं। सामान्य बातों पर विद्यार्थियों की हड़ताल, तोड़फोड़ कक्षा बहिष्कार, अध्यापक पर्यवेक्षक, अधीक्षक पर आक्रमण आदि सामान्य अनुशासनहीनता की घटनायें मानी जाने लगीं है। छात्र यूनियन का कर्तव्य रचनात्मक कार्य की अपेक्षा विरोध करना हो गया है। प्रायः लोगों की अवधारणा है कि इन घटनाओं के लिए महात्मा गाँधी जी उत्तरदायी है, क्योंकि उन्होने विद्यार्थियों को असहयोग आन्दोलन का ऐसा पाठ पढ़ाया कि विद्यार्थी आज समस्त पर्यावरण से ही असहयोग करने पर सम्बद्ध हो गये हैं। ब्रिटिश कालीन शासन से असहयोग आन्दोलन का परिणाम आज हम शासन के प्रति छात्रों द्वारा प्रकट किए गए विरोध का प्रतिफल समझते हैं। शासन के प्रति प्रकट किए गए विरोध की इस भावना का प्रसार शनैः शनैः विद्यालय, महाविद्यालय, विश्व विद्यालय, परिवार, समाज एवं राष्ट्र में होता जा रहा है। अतः शोधार्थिनी के मन में एक शंका उठती हैं कि इस प्रकार के वातावरण के निर्माण के लिये क्या महात्मा गाँधी उत्तरदायी हैं या उनकी शिक्षा योजना है ?

ब्रिटिश कालीन भारत में राजनीतिक व्यक्तियों ने ''शासन और अधिकार'' के विरोध में विद्यार्थियों की आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति को अवश्य प्रोत्साहित किया था

परन्तु तब और अब की परिस्थितियाँ पूर्णतः परिवर्तित हो गई हैं। किन्तु यदि महात्मा गाँधी के विचारों का तटस्थता से कोई अध्ययन करें तो उसे प्रतीत होगा कि उस समय भी महात्मा गाँधी ने अनुशासनहीनता प्रवृति को कभी प्रोत्साहित नहीं किया था। सत्य, अहिंसा के पुजारी से ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थीं, क्योंकि महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन हेतु प्रत्येक आन्दोलनकर्ता को तीन प्रतिज्ञाओं का पालन अवश्य करना पड़ता था, तभी वह उस आन्दोलन में भाग ले सकता था। जैसा कि महात्मा गाँधी जी ने स्वयं कहा है :-

" असहयोग को मानने वाला व्यक्ति किसी भी विद्यार्थी के हाथो में शांति भंग देखना नहीं चाहता।...... इसकी तीन शर्ते मंजूर होनी चाहिए। उनमें से पहली शर्त है.. शान्ति।... हमें शांति भंग नहीं करना है, न किसी को गाली देना है न गुस्सा करना है न किसी को मारना है और शर्म शर्म की आवाजें लगाना है।.... दूसरी शर्त है स्वयं या अपने पर काबू रखना। तीसरी शर्त है- यज्ञ। जब हम शुद्ध होते हैं, तब यज्ञ या बलिदान करते हैं। बलिदान किए बिना कोई पवित्र नहीं हो सकता।....इसलिए इस महाविद्यालय में प्रवेश लेने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों से मैं कहता हूं कि तुम असहयोग की इन तीन शर्तो का पालन न करना चाहो, तो इसे छोड़ देना।"[1]

यदि ध्यान से देखा जाये तो उपर्युक्त कथन में अनुशासनहीनता की अपेक्षा अनुशासन के पालन की ही शर्ते निहित हैं। तो भला महात्मा गाँधी जी के असहयोग आंदोलन को तथा उनकी विचार परम्पराओं को अनुशासनहीनता के लिए कैसे उत्तरदायी बनाया जा सकता है। वास्तव में महात्मा गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन अनुशासित जीवन का प्रतीक रहा है। अनुशासन हमारा नैतिक गुण है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का, समाज की सामाजिक उन्नति का और राष्ट्र की जीवन शक्ति का मापदण्ड है। इस प्रकार जो व्यक्ति, व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास, समाज की पुनर्रचना की अवधारणा एवं जनतंत्रीय राष्ट्र के निर्माण का विचार रखता हो वह अनुशासनहीनता का पाठ व आदर्श कैसे स्थापित कर सकता है ? वास्तव में महात्मा गाँधी का समग्र विचार अहिंसक है। बेसिक शिक्षा पद्धति के मूल में अनुशासन का भाव निहित है। बेसिक शिक्षा के सम्यक प्रचार व प्रसार से समाज राष्ट्र एवं समाज के प्रत्येक सदस्य को सर्वाधिक लाभ पहुंच सकता है।

महात्मा गाँधी की अनुशासन के प्रति अवधारणा :-

---

1. नवजीवन - 15-11-20

संकुचित अर्थ में आज्ञा पालन को अनुशासन समझा जाता है किन्तु विस्तृत अर्थ में यह चरित्र के प्रशिक्षण के रूप में मान्य है। अधिगम प्रक्रिया हेतु अनुशासन अनिवार्य है किन्तु अनुशासन के रूप कें सम्बंध में विभिन्न मत पाये जाते हैं नार्मन मैकमन ने अपनी पुस्तक – "द चाइल्डस पाथ टूफ्रीडम" में अनुशासन के तीन रूपों को प्रस्तुत किया है।

1. दमनात्मक 2. मुक्त्यात्मक 3. प्रभावात्मक।

पारम्परिक प्रारम्भिक विद्यालयों में "डंडे के बल" पर अनुशासन स्थापित कर दमनात्मक रूप को प्रश्रय दिया जाता था। इस प्रकार के अनुशासन का मूल "भय" था। इस प्रकार के अनुशासन की आलोचना करते हुए पॉल मैनरों ने कहा है :-

" यदि बालक की प्रकृति को अधिक पतित बना दिया जाता है तो भर्त्सना द्वारा सुधारा नहीं जा सकता है, बल्कि वह अधिक कठोर हो जायेगा।"[1]

" मुक्त्यात्मक सिद्धांत" प्रकृतिवादियों को प्रिय है क्योंकि ये आत्म प्रकाशन में विश्वास करते हैं। परन्तु स्वतंत्रता से आत्म प्रकाशन पर सीमा से परे बल देना बालक को स्वच्छंद बनाना है, क्योंकि यदि आत्म प्रकाशन या आत्माभिव्यक्ति पर गम्भीरता से विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति स्वच्छंदता की स्थिति में अपने भीतर के पशु व्यवहार की भी अभिव्यक्ति कर सकता है। इसलिए मुक्त्यात्मक सिद्धांत भी स्वच्छंदता की मात्रा की अधिकता के कारण उचित नहीं माना जाता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास हेतु स्वतंत्रता आवश्यक है किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता कदापि समीचीन नहीं है। जनतंत्रात्मक राष्ट्र के नागरिकों के अनुशासन के प्रति हक्सले का कथन है कि :-

"यदि तुम्हारा लक्ष्य स्वतंत्रता और जनतंत्र प्राप्त करना है तो तुम्हें लोगों को स्वतंत्र रहने तथा स्वयं को शासित करने की कला सीखनी पड़ेगी। यदि तुम इसके बजाय कठोरता से निष्क्रिय आज्ञा मानने की कला सिखाओगे तो तुम स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को प्राप्त नहीं कर पाओगे, जिसे प्राप्त करना तुम्हारा लक्ष्य है।"[2]

हक्सले द्वारा प्रजातंत्र के संदर्भ में अनुशासन की अवधारणा का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी नहीं चाहता कि बालक पशुवत विचारों को प्रकट करें। इन दो अतिवादी सिद्धांतों के पश्चात मध्यवर्ती सिद्धांत के रूप में अनुशासन

---

1. पॉल मैनरो : सोर्स – बुक ऑफ द हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन न्यूयार्क, 1939,पृष्ठ 466

2. आल्डुअस हक्सले : एडम्स एण्ड मीन्स, वाटो एण्ड विन्डस लन्दन, 1938 पृष्ठ 184

के प्रभावात्मक सिद्धांत की उपज हुई है। इसमें अनुशासन का आधार नैतिकता है। विद्यार्थी शिक्षक के व्यक्तिगत प्रभावों से प्रभावित होकर विनय का पालन करता है। एक प्रभावात्मक सिद्धांतवादी समस्त शारीरिक हिंसा को बिल्कुल महत्व नहीं देता है। प्रभाव यह होता है कि शनैः शनैः विद्यार्थी अध्यापक की जीवन शैली, चरित्र व विचारों से प्रभावित होने लगता है और बिना किसी प्रयत्न के अध्यापक के व्यवहार के प्रति अपने को समर्पित कर देता है। इस प्रकार अध्यापक अपने प्रभाव से वालकों में स्वेच्छा से आज्ञा पालन व अनुशासित रहने की प्रवृत्ति को विकसित कर देता है। यही अनुशासन का स्वर्णिम नियम है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह सिद्धांत शारीरिक दण्ड के बचाव का पक्ष लेता है। इस सिद्धांत का आंतरिक भाव तो यह है कि उन दशाओं की उत्पत्ति की जाये जहां पर दण्ड को प्रश्रय देने की आवश्यकता ही न पड़े।

इतिहास साक्षी है कि प्रभावात्मक अनुशासन के पक्षधर के रूप में महात्मा गाँधी से बढ़कर कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं है। उन्होने अपने संरक्षण में रहने बाले बालकों को कभी भी दण्ड नहीं दिया। क्योंकि उनका स्वयं का कथन है कि :-

" मैं कभी विद्यार्थियों को दण्ड नहीं देता था।"[1]

उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि महात्मा गाँधी जी विद्यार्थियों को दण्ड देने के पक्षधर नहीं थे, किन्तु जब छात्र समझाने से नहीं मानता है तो उसे शारीरिक दण्ड देना चाहिए वे कहते हैं कि :-

" समझाने से वह किसी तरह समझता नहीं था। मुझे छलने की भी उसने कोशिश की। मैंने अपने पास पड़ा रूल उठाया और उसकी बांह पर जमा दिया।"[2]

छात्र को शारीरिक दण्ड देते समय गाँधी जी की मानसिक दशा बड़ी ही दयनीय थी। इसके पूर्व उन्होने किसी विद्यार्थी को दण्ड नहीं दिया था। महात्मा गाँधी जी कहते हैं :-

" मारते समय मैं काँप रहा था। यह उसने देखा होगा। ऐसा अनुभव किसी विद्यार्थी को मेरी ओर से पहले कभी न हुआ था। विद्यार्थी रो पड़ा। मुझसे मॉफी माँगी। उसे रूल लगा और तकलीफ हुई। इससे वह नहीं रोया। मैंने उसे मारकर अपनी आत्मा का नहीं बल्कि अपनी पशुता का दर्शन कराया था।"[3]

---

1. आत्म कथा, पृष्ठ 428-429
2. तदैव - पृष्ठ -429
3. तदैव - पृष्ठ -429

यह घटना यह प्रकट करती है कि रूल की चोट ने बालक के हृदय को परिवर्तित नहीं किया था बल्कि उस कष्ट ने जिसे उसके अध्यापक महात्मा गाँधी ने रूल मारते समय अनुभव किया था उसने प्रभावित किया था। इस उदाहरण से दण्ड न प्रदान करने का औचित्य स्वयं सिद्ध हो जाता है।

गाँधी जी कहते हैं कि :-

" बालकों को मारपीट कर सिखाने के खिलाफ में सदा से रहा हूं। ... दूसरों को आत्मज्ञान देने के प्रयत्न में मैं स्वयं आत्मा के गुण को अधिक समझने लगा।"[1]

महात्मा गाँधी का अनुभव था कि बालकों के सच्चे अध्यापक को पिता व अभिभावक के रूप में उनके हृदय को अवश्य स्पर्श करना चाहिए। उनके सुख दुख में बराबर का हिस्सेदार होना चाहिए, जो समस्यायें उनके जीवन में आती है उनके समाधान में सहयोग अवश्य देना चाहिए तथा इन युवको में उत्पन्न होने बाली आशाओं को उचित मार्ग दिखाना चाहिए। इसीलिए महात्मा गाँधी जी कहते हैं कि :-

"........इसका अनुभव दिन व दिन बढ़ता गया। शिक्षक और संरक्षक के रूप में उनके हृदय में प्रवेश करना था, उनके सुख दुख में शामिल होना था, उनकी जीवन गुत्थियों को सुलझाना था उनकी उभरती जवानी की तरंगों को सही रास्ते पर लगाना था।"[2]

महात्मा गाँधी जी टालस्टाय फार्म को एक परिवार समझते थे और अपने को उस परिवार का पिता मानते थे। इस प्रकार महात्मा गाँधी जी "क्वाइनटिलियन" की भांति यह मानते थे कि अध्यापक की कमियों और बुराईयों के कारण ही विद्यार्थियों में अनेक कमियां और गलतियाँ उत्पन्न होती है तथा रोमन अध्यापकों की भाँति वे यह भी मानते हैं कि इन त्रुटियों की जिम्मेदारी अध्यापकों को स्वयं स्वीकार करनी चाहिए। यही कारण है कि दूसरों की असफलताओं के दोष को अनेक अवसरों पर उन्होने अपने ऊपर ले लिया था और उपवास करके उसका प्रायश्चित किया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि जिन बालकों को अंन्य लोग सुधार न पाये उनके हृदय को महात्मा गाँधी ने परिवर्तित कर हमेशा के लिए सुधार दिया।

फिनिक्स बस्ती में रहने वाले दो व्यक्त्यिों के चारित्रिक पतन की सूचनायें सुन महात्मा गाँधी जी बहुत दुखी हुए और यह अनुभव किया कि :-

---

1. आत्म कथा - पृष्ठ 430

2. तदैव - पृष्ठ 430

" सत्याग्रह के महान संग्राम में कहीं विफलता सी दिखाई देने पर मुझे चोट न लगती पर इस घटना ने मुझ पर वज्र सा गिरा दिया। मेरा दिल चोट खा गया।"[1]

अपने मानसिक दुख को कम करने के लिए तथा उन व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन हेतु उन्होने सात दिन का उपवास और साढ़े चार माह तक एक ही समय तक भोजन करने का निश्चय किया। महात्मा गाँधी के इस निश्चय का परिणाम यह हुआ कि :-

" पाप करने की भंयकरता सबको मालूम हो गयी और छात्र तथा छात्राओं व मेरे बीच का सम्बंध दृढ़ और सरल हो गया।"[2]

महात्मा गाँधी की यह धारणा नहीं है कि बालक के प्रत्येक कसूर के लिए अध्यापक को व्रत व उपवास करके उसके दोष की अनुभूति कराकर उसका सुधार किया जाये किन्तु कुछ अवसरों पर ऐसा किया जा सकता है इसके लिए अध्यापक में विवेक तथा उसका अधि ाकारी भी होना चाहिए। इस सम्बंध में गाँधी जी कहते हैं :-

" जहां शिक्षक शिष्य में शुद्ध प्रेम सम्बंध नहीं है, जहां शिक्षक को अपने शिष्य के दोष से सच्ची चोट नहीं लगी है जहां शिष्य में शिक्षक के प्रति आदर नहीं है, वहाँ उपवास निरर्थक है और शायद नुकसान भी करें।"[3]

अतः सामान्य अध्यापक के लिए यह विधि बालक के हृदय परिवर्तित करने की अपेक्षा बुरा असर ही डालेगी। वस्तुतः सत्यता तो यह है कि यदि अध्यापक में शिष्य के प्रति प्रेम है और उनकी समस्याओं के समाधान में अपने को ईमानदारी से लगाता है तो शिष्य भी अपने अध्यापक से निश्चित रूप से प्रेम व आदर करेगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेगा जिससे अध्यापक को दुख पहुंचे। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समस्त विद्यालयीय अनुशासन का रहस्य प्रेम ही है। प्रेम वह शक्ति है तो शिष्य को नेक व ईमानदार बनाती है और जीवन में उसे सफलता प्रदान करती है क्योंकि अनुशासन स्थापित करने में जहां अन्य साधन असफल हो जाते हैं वहां स्वक्रिया स्वानुभव व प्रेम ही विजय प्राप्त करता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अनुशासन हेतु समस्त विद्यालयीय वातावरण में हमें स्वशासन विद्यार्थी संसद, गृह प्रणाली तथा इसी प्रकार की अन्य योजनाओं को

---

1. आत्म कथा - पृष्ठ 432

2. आत्म कथा - पृष्ठ 433

3. तदैव - पृष्ठ 433

स्वीकार करना चाहिए। स्वशासन सहयोग भावना को उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है। स्वशासन और गृहप्रणाली के फलस्वरूप विद्यार्थी और उनके शिक्षकों के बीच आत्मीय व मधुर सम्बंध स्थापित होता है जिसका प्रतिफल आत्म सम्मान, आत्म विश्वास और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। विद्यालय की समस्त गतिविधियों का संचालन अध्यापकों की देखरेख में होना चाहिए। विद्यालय में समस्त कार्यक्रमों का निर्माण बालकों द्वारा अध्यापक के सहयोग से किया जाना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी की अनुशासन की अवधारणा, स्वक्रिया, स्वानुभूति तथा आत्मनियंत्रण पर आधारित है। इस प्रकार शोधार्थिनी गाँधीजी के अनुशासन सम्बन्धी विचारों से सहमत होते हुये अनुभव करती है, कि उनकी सोच एवं शिक्षा योजना में कोई दोष नहीं था, वरन् वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने शिक्षा जगत में अनुशासनहीनता का बीजारोपण किया हैं।

(ख) विनोबा जी के अनुसार विद्यालय व्यवस्था, परीक्षा व्यवस्था एवं अनुशासन व्यवस्था :-

विद्यालय व्यवस्था :- विनोबा जी के अनुसार विद्यालय ऐसी कर्मशालायें होना चाहिए, जहाँ पर अध्यापक सेवा भाव तथा पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करें। विद्यालयों का उद्देश्य वच्चों को कुछ विषयों का ज्ञान मात्र कराना ही नहीं होना चाहिए बल्कि शिक्षा के द्वारा बच्चों का सर्वांगीण विकास करना होना चाहिए। बालकों के किसी भी प्रकार के विकास के लिए उनका शारीरिक विकास होना आवश्यक है। इसलिए विद्यालयों में बच्चों के लिए खेलकूद तथा व्यायाम की पूरी पूरी व्यवस्था करें उन्हें स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान करायें एवं स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक आदतों का निर्माण करें, मानसिक विकास के लिए सबसे पहले वच्चों को भाषा का ज्ञान कराना चाहिए क्योंकि भाषा और विचारों का आपस में साध्य और साधन का सम्बंध है। भाषा के साथ विचारों और विचारों के साथ भाषा का विकास होता है। इसलिए बालकों में सर्वप्रथम मानसिक विकास करना चाहिए क्योंकि मानसिक विकास से ही विवेक शक्ति जागृत होती है। विद्यालय में बालकों के अंदर सामाजिक विकास की भावना भी उत्पन्न करनी चाहिए वैसे तो मनुष्य सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है। पर वह समाज में किस प्रकार रहे इसका ज्ञान उसे सामाजिक वातावरण से ही मिलता है। विद्यालयों के उच्च सामाजिक़ वातावरण में बच्चों का मानसिक स्तर उच्च होता है।

विद्यालय में बालकों में चारित्रिक एवं नैतिक विकास की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। विद्यालयों में बालकों को उच्च सामाजिक वातावरण के प्रति जागरूक करना चाहिए वैसे भी विद्यालयों में भाषा साहित्य और सामाजिक विषयों की शिक्षा के साथ साथ नैतिक शिक्षा दी जाती है। प्रातः कालीन सभा में प्रार्थना व नैतिक उपदेश बच्चों के चारित्रिक एवं नैतिक विकास हेतु ही आयोजित होते हैं। विद्यालयों में बालकों के सम्पूर्ण विकास की ओर जागृत होना चाहिए उन्हें औद्योगिक शिक्षा भी देना चाहिए जिससे वे जीवन में स्वावलम्बी बन सकें। औद्योगिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है, जो बालकों में परिश्रम के प्रति रुचि उत्पन्न करें। विद्यालयों में आधे समय ज्ञान एवं आधे समय परिश्रम द्वारा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ ही वालकों में आध्यात्मिक विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए वैसे हमारा देश विभिन्न धर्मो का देश है। बच्चे अपने धर्म की शिक्षा अपने-अपने परिवार और समुदाय मे प्राप्त करते हैं। धार्मिक संस्थाये और संघ इस क्षेत्र में सबसे अधिक कार्य करते हैं। विद्यालयों में किसी न किसी रूप में धर्म शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। क्योंकि आज देश का नैतिक पतन रोकने के लिए और

बच्चों का चारित्रिक एवं नैतिक विकास करने के लिए धार्मिक शिक्षा और आध्यात्मिक विकास आवश्यक है। विद्यालयों में सभी मुख्य धर्मो के सामान्य सिद्धांतों से बालकों को अवगत कराना चाहिए एवं उन्हें उच्च आदर्शो की शिक्षा दी जानी चाहिए।

विद्यालय में शिक्षा की समान व्यवस्था लागू होनी चाहिए जिससे गरीब और अमीर विद्यार्थी एक साथ एवं समान शिक्षा प्राप्त कर सकें। जैसे कृष्ण और सुदामा ने एक साथ एवं एक ही आश्रम में और एक ही गुरू के साथ शिक्षा प्राप्त की थी ऐसी शिक्षा से बालकों में समानता की भावना उत्पन्न होती है। विनोबा भावे ने इस प्रकार के विद्यालयों की सापेक्षित उपयोगिता भी स्पष्ट की है। उनके अनुसार आज के परम्परागत विद्यालयों में वर्ष के आध ा समय छुट्टिया रहती हैं और गणना करने पर पॉच-छः घण्टों के विद्यालय कार्यक्रमों का औसत दो ढाई घंटे ही आता है। अतः दो ढाई घंटे की औसत शिक्षा में बच्चों का पूरा दिन समाप्त हो जाता है। प्रस्तावित व्यवस्था में कोई अवकाश दिन नहीं होना चाहिए और कम से कम समय में उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा भी दी जा सकेगी। इस प्रकार यह परम्परागत विद्यालयों की अपेक्षाकृत एक विकसित शिक्षा व्यवस्था होगी जिसमें समय का अधिकाधिक सदुपयोग सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त इन विद्यालयों के एक घण्टे के लिए अध्यापक नियुक्त किये जायेंगे। उन्हें परम्परागत विद्यालयों की अपेक्षाकृत कम वेतन देना पड़ेगा और शिक्षा व्यय में मितव्ययता होगी। इसी प्रकार की विद्यालय व्यवस्था आज के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

परीक्षा व्यवस्था :-

विनोबा जी के अनुसार परीक्षा से तात्पर्य विद्यार्थियों के सम्पूर्ण ज्ञान का आँकलन हो, ऐसा न हो कि उन्हें कुछ विशेष पाठ्यसामग्री में से ही प्रश्न पूछकर उनकी योग्यता को भांपा जायें इससे सम्पूर्ण ज्ञान का मापन नहीं हो सकता है। इसलिए परीक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे सालभर के कार्य को पूर्णतया आँका जा सके। सालभर बच्चों ने जो ज्ञान पाया, उसका सतत् आँकलन होना चाहिए। उसी दृष्टि से प्रत्येक माह परीक्षा ली जानी चाहिए। अंतिम परीक्षा में बच्चों को किताबें दी जायें, परन्तु प्रश्न ही ऐसे पूछे जायें, जिनका उत्तर पाँच सात जगह देखे बिना लिखना सम्भव न हो। उसमें किताबों का उपयोग कैसे हो, यह मुख्य चीज है। परीक्षा के समय यदि बच्चे चाहे तो एक दूसरे की सलाह भी ले सकते हैं। विनोबा जी ने परीक्षा की व्यवस्था ऐसी इसलिए रखी है जिससे विद्यार्थियों में तर्क शक्ति उत्पन्न हो और उनमें योग्यता विकसित हो। शिक्षण का सम्बंध डिग्री के साथ नहीं जुड़ना चाहिए प्रत्येक विभाग की स्वतंत्र परीक्षा भले हो, परन्तु समूचा

सम्बंध परीक्षा के ऊपर आधारित नहीं होना चाहिए। आज तो विद्यार्थी विद्यार्थी न होकर परीक्षार्थी बन गये हैं। क्योंकि सालभर कुछ पढ़ते नहीं है परीक्षा के दिनों में ही कष्ट करके आयेंगे और लिख देंगे। लेकिन अगर 15 दिन के बाद फिर से वही परीक्षा ली जाये तो वे फैल हो जायेंगे, क्योंकि परीक्षा के लिए ही वह तैयारी थी परीक्षा हुई तो मानो कैस्टर आईल ले लिया। कैस्टर आईल लेने से पेट की सारी सफाई हो जाती है। इसके बाद लड़का जैसा का तैसा सारी विद्या आयी और गई न कुछ आता है न जाता है इसलिए शिक्षण की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी में इस तरह की भावना को बल न मिले इसके साथ ही परीक्षा व्यवस्था भी ऐसी हो कि वह सम्पूर्ण ज्ञान के आधार पर ही आँकलन करें न कि तात्कालिक ज्ञान के आधार पर अतः परीक्षा में प्रश्न ऐसे हो जो विद्यार्थी तर्क पूर्ण ढंग से ही हल करें।

अनुशासन व्यवस्था :-

अनुशासन व्यवस्था से तात्पर्य है ऐसा अनुशासन जो विद्यार्थियों को निर्भय बनाकर उनके अंदर ऐसे गुण उत्पन्न करे कि वह हमेशा सत्यता धारण करें। आजकल स्कूलों में शिस्त अनुशासन की तालीम दी जाती है वह भी एक अच्छा गुण है। परन्तु श्रेष्ठ गुण नहीं है भगवान ने गीता में सबसे श्रेष्ठ गुण अभय को कहा है इसलिए निर्भयता की बुनियाद पर सारा शिक्षण खड़ा रहना चाहिए। निर्भयता के बिना सत्यनिष्ठा पनपेगी नहीं और सत्य पर अविचल रहने की शक्ति भी पैदा नहीं होगी। प्राचीन गुरू शिष्यों से यही कहते थे -

" यानि अस्माकं सुचरितानि, तानि सेवित्तव्यनि ना इतराणि।

हे शिष्य गण, हममें जो सदाचरण हो उन्हीं का अनुसरण करना, जो सदाचरण न हो उनका अनुसरण मत करना। इसका तात्पर्य है कि गुरू शिष्य को आजाद करता है। कि अपनी स्वतंत्र बुद्धि से सोचो कि सत्यासत्य क्या है। विद्यार्थियों को अपना दिमाग परिपूर्ण स्वतंत्र रखना चाहिए वो भी परिपूर्ण स्वातंत्रय क्योंकि विनोबा जी के अनुसार विद्यार्थियों को स्वतंत्रता देनी चाहिए यह भी सत्य है कि बिना श्रद्धा के यह नहीं मिलती। इसलिए श्रद्धा रखनी ही चाहिए पर श्रद्धा के साथ साथ बौद्धिक स्वतंत्रता की भी आवश्यकता है। पर यह मत गलत है कि श्रद्धा और बुद्धि में विरोध है जैसे कान और आँख अलग अलग शक्तियां है और दोनों का आपस में विरोध नहीं है उसी तरह श्रद्धा और बुद्धि में है। जैसे माता बच्चे को चाँद दिखाती है और कहती है देखो बेटा यह चाँद है। अगर माँ पर बेटे की श्रद्धा न रहे और उसे शंका हो तो उसे ज्ञान नही होगा। इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रद्धा एक आधार है ज्ञान का आरम्भ ही श्रद्धा से होता है लेकिन

ज्ञान की परिसमाप्ति बुद्धि में है। श्रद्धा से ज्ञान का आरम्भ होता है और समाप्ति स्वतंत्र चिंतन से होती है इसलिए विद्यार्थियों को अपने स्वतंत्र चिंतन का अधिकार नहीं खोना चाहिए। जो शिक्षक विद्यार्थियों पर अनावश्यक या जबरदस्ती अनुशासन करता है वह शिक्षक नहीं है। शिक्षक तो वह होगा, जो यह कहेगा कि मेरी बात सत्य और सदाचरणीय हो तो मानो और अगर सत्य के विरोध में हो, या आचरण के लायक न हो तो न मानो। इस तरह जो बुद्धि स्वातंत्र्य देगा, वही सच्चा शिक्षक है। क्योंकि बुद्धि स्वातंत्र्य ही सच्चा अनुशासन है। महापुरूषों के लिए आदर और श्रद्धा जरूर रखी जाये, लेकिन यह सोचकर कि वह महापुरूष है इसलिए उसकी बात गलत है। बुद्धि की स्वतंत्रता के लिए सबसे बेहतर है कि स्वतंत्र चिंतन होना चाहिए विद्यार्थियों को अपने स्वतंत्र चिंतन पर प्रहार नहीं होने देना चाहिए और अपनी स्वतंत्रता का हक सुरक्षित रखना चाहिए।

अनुशासन में अध्यापक एवं छात्र में एक प्रकार का आचरणिक सम्बंध स्थापित होता है। अनुशासन में छात्र अध्यापक के प्रति विनम्र होता है और अध्यापक उसका पूरा ध्यान रख़ता है। और सहानुभूति से काम लेता है।

साधारणतः अनुशासन और व्यवस्था में कोई भेद नहीं समझा जाता, लेकिन इनमें वहुत बड़ा अंतर है व्यवस्था का। अर्थ केवल नियम पालन से होता है। जबकि अनुशासन में नियम पालन के साथ साथ उस नियम पालन में व्यक्ति का विश्वास भी शामिल होता है। जहां अनुशसन होता है वहां व्यवस्था अवश्य होती है। अनुशासित विद्यार्थी अंतकरण से प्रभावित होता है। और वह समाज हितकारी व्यवहार करता है। किसी विद्यालय अथवा अन्य किसी सामाजिक संस्था में अनुशासन जब ही सुचारू ढंग से चल सकता है जब वहां पर कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी चरित्रवान एवं अनुशासित हो। विनोबा जी के समान ही शोधार्थिनी की भी यही धारणा है।

आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य आध्यात्मिक पूर्णता और पाशविक वृतियां दोनों एक साथ लेकर पैदा होता है शिक्षा का कार्य उसकी पाशविक वृत्तियों पर नियंत्रण कर उसका आध्यात्मिक विकास करना होता है। इसके लिए विद्यालय को इतना व्यवस्थित और अनुशासित होना चाहिए जिससे कि वहां पर प्रत्येक विद्यार्थी अनुशासित रहे। अनुशासन अपने वास्तविक रूप में एक आंतरिक प्रेरणा, आत्मनियंत्रण और आत्मसंयम है, जो बाह्य व्यवहार के रूप में प्रकट होता है दण्ड और अन्य प्रकार के भय से इसका विकास नहीं हो सकता। दण्ड और भय से तो व्यवस्था कायम की जा सकती है। अनुशासन नहीं अनुशासन के लिए तो भयरहित और प्रेम सहानुभूति और सहयोग पूर्ण उच्च सामाजिक पर्यावरण चाहिए, जिसमें बच्चे सामाजिक आचरण की

शिक्षा लें और वैसा करने में सुख की अनुभूति करें और वैसा करने के लिए अन्तः से प्रेरण प्राप्त करें।

आदर्शवादियों का कहना है कि अध्यापक को अपने आदर्श व्यक्तित्व से बच्चों को प्रभावित करना चाहिए और उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि वे उसके गुर्णे को ग्रहण कर आचरण करना सीखें। प्राचीन समय के गुरू बड़े संयम के साथ जीवन व्यतीत करते थे और अपने ज्ञान आचरण और आदर्शो से अपने शिष्यों को प्रभावित करते थे शिष्य उनके ज्ञान, आचरण एवं आदर्शों से प्रभावित होते थे और संयमित जीवन व्यतीत करने की ओर अग्रसर होते थे। जिस समय हमारे यहां अनुशासन का अर्थ लिया जाता था।

प्रभावात्मक अनुशासन तभी प्राप्त किया जा सकता है जब गुरूओं का जीवन आदर्श जीवन हो, अध्यापक और छात्र में नैतिक सम्बंध होता है अध्यापक का ऐसे सम्बंध ों तथा उसके कारण उत्तरदायित्वों को भी जानना जरूरी है तभी अनुशासन स्थापित होता है। बालक का चरित्र अध्यापक के चरित्र के प्रभाव से बनता है बालकों में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। अतः अध्यापक का आचरण एवं व्यवहार अच्छा है तो उसका अनुकरण बालक स्वयं करेंगे।

शिक्षा की प्रक्रिया दो व्यक्तियों के बीच चलती है। एक वह जो प्रभावित करता है (अध्यापक) और दूसरा वह जो प्रभावित होता है (शिष्य) यह क्रिया उस स्थिति में अधिक प्रभाव शाली होती जब इन दोनों के बीच प्रेम और श्रद्धा का सम्बंध होता है और यह जब ही हो सकता है जब अध्यापक योग्य शिष्ट और सदाचारी हो ऐसे व्यक्तित्व ही आज अनुशासन को अच्छे प्रकार से चला सकते हैं। यदि अध्यापक के आदर्शो, व्यवहार और आचरण में सच्चाई होती है तो बच्चे उससे प्रभावित होते ही है। इसके लिए बल प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं होती है बल प्रयोग की स्थिति में बच्चे सच्चाई से पलायन कर जाते हैं। अतः अध्यापकों को विशेष सावध ानी से काम लेना चाहिए जब ही अनुशासन सुचारू रूप से चल सकता है।

वास्तविक रूप में अनुशासन बच्चों की एक आंतरिक भावना, आत्मनियंत्रण की शक्ति और सामाजिक आचरण इन सभी का योग होता है। ऐसे अनुशासन की प्राप्ति तभी हो सकती है जब शिक्षा की सभी औपचारिक और अनौपचारिक संस्थायें इसके लिए प्रयत्नशील हो। विनोबा जी ने अनुशासन का अर्थ विचारों की स्वतंत्रता से बताया है क्योंकि जबरदस्ती में थोपा गया ज्ञान या विचार अनुशासन नहीं है इसलिए अनुशासन ऐसा होना चाहिए कि बालकों में स्वतंत्र चिन्तन की भावना विकसित हो।

(ग) गाँधी जी एवं विनोबा जी की माध्यमिक स्तर तक विद्यालय व्यवस्था की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

नवीन शिक्षा नीति का ध्येय है कि किसी भी विद्यालय में दो अध यापकों से कम स्टाफ नही होगा तथा वर्ष के बारहों माह काम करने के लिए अर्थात् विद्यालय में अध्यापन कार्य के लिए कम से कम दो कमरे अवश्य हों। इन दो अध्यापकों में से एक अनिवार्यतः महिला अध्यापिका ही हो। भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए कई शिक्षाशास्त्री इसी आधार पर इसे अति महत्वाकांक्षी योजना कहकर इसकी आलोचना भी करते हैं।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जिसका अर्थ है कि राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक विषयों में सभी नागरिकों को, चाहे वे किसी भी जाति धर्म व लिंग के हों, समान अधिकार प्राप्त होंगे किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय के साथ किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जायेगा। इसी आधार पर विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा वर्जित है लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, धर्म और नैतिकता दोनों का घनिष्ठ सम्बंध है धर्म में जो पुण्य है वही नैतिकता है। अतः विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा न देकर आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने की बात की गई है। जिससे सभी धर्मो का जो सार है उसकी शिक्षा दी जा सके। डॉ0 राधाकृष्णन का कथन है कि शारीरिक क्षमतायें और मानसिक योग्यतायें, आध्यात्मिक शिक्षा के अभाव में मानव के लिए खतरनाक सिद्ध होगी। अतः नवीन शिक्षा नीति के अंतर्गत विद्यालय व्यवस्था में छात्रों की दिनचर्या में सत्यं, शिवं सुन्दरम् की भावनाओं को महत्व दिया जाये। आज हमारा भारतीय युवक चरित्र सम्बंध ी संकटों से गुजर रहा है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा में यह प्रयास हो कि छात्रों को निजी और सामाजिक जीवन में प्रगतिशील तथा उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया जाये। छात्रों को सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों एवं समस्याओं से परिचित कराके उनमें सुधार के लिए बालकों को जागरूक किया जायें। उन्हें इस योग्य बनाया जायें कि वे अपने विचार तथा व्यवहार में उदार बन सकें तथा भाषा, धर्म, जाति लिंग पर आधारित पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हितों की बात सोच सकें इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण ऐसा बनाया जायें कि सभी शिक्षक नैतिक मूल्यों के विकास को अपना सामूहिक उत्तरदायित्व समझें। विद्यालयों में पाठ्यचर्या और सहपाठ्यचर्या विभिन्न कार्यकलापों, सभी धर्मो के धार्मिक त्यौहारों को मनाना, कार्य अनुभव, विषय क्लब, सामाजिक सेवा

1. नई शिक्षा नीति - डॉ. जमुना लाल बापती

2. नई शिक्षा नीति - डॉ. किरण लक्ष्मी श्रीवास्तव

कार्यक्रम आदि का आयोजन किया जायें जिससे छात्रों में सहकारिता, पारस्परिक सम्मान, ईमानदारी एवं सच्चाई, अनुशासन एवं सामाजिक जिम्मेदारी आदि से सम्बंधित मूल्यों का विकास हो सकें।

नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत विद्यालय में एक ईमानदार दुकान खोली जायें, जहां पेंसिल, रबर, रिफिल, जैसी छोटी छोटी वस्तुयें रखी जायें। बच्चे सामान लें और ईमानदारी के साथ उसमें पैसा डालें।

इस प्रकार शिक्षक बच्चों के घर जायें और परिवार के सदस्यों से परिचित हों जिससे उनमें पारिवारिक भावना का विकास हो और विभिन्न धर्म और जाति के मध्य की खाई पाटने में सहायता प्राप्त हो सके। अभिभावकों को आमंत्रित करने के लिए विद्यालय में अभिभावक दिवस आयोजित किए जाने चाहिए और उनके द्वारा दिए गए सुझावों को विद्यालय व्यवस्था के अंतर्गत महत्व दिया जायें। नवीन शिक्षा नीति के अंतर्गत मानवीय जीवन के खोये हुए मूल्यों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था हो तथा विद्यालय में शिक्षण व्यवस्था ऐसी हो जिससे पुनः सुरिक्षत मूल्य प्राप्त हो सके।

विद्यालय में विषय ज्ञान के साथ साथ विद्यार्थी आचरण का कौशल भी सीखता है इसे हम शिष्टाचार कहते हैं। राज्य द्वारा शिक्षा पर जो धन खर्च किया जाता है उसका प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थियों को अच्छा नागरिक बनाना है अच्छा नागरिक बनने के लिए शिक्षा द्वारा मानवीय मूल्यों, सामाजिक मूल्यों, वैज्ञानिक मूल्यों, आध्यात्मिक मूल्यों, नैतिक मूल्यों आदि की विधि ावत् अथवा औपचारिक रूप में विद्यालयों में शिक्षा देने की व्यवस्था की जाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत शिक्षा के प्रबंध एवं नियोजन पर बल दिया गया है। अभी तक हमारी शिक्षा के प्रबंध एवं नियोजन के कार्य में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति थी। उच्च स्तर पर योजनाओं की रूपरेखा तैयार कर ली जाती थी शैक्षिक विकास की कोई भी योजना तब तक सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं हो सकती जब तक कि प्रत्येक शैक्षिक संस्था और उससे सम्बंधित व्यक्ति को उन्नयन की प्रक्रिया में सम्मिलित न किया जायें। नवीन् शिक्षा नीति के अंतर्गत सभी स्तर पर शिक्षण संस्थाओं के सर्वांगीण सर्वोदय हेतु विद्यालय व्यवस्था की अवधारणा विशिष्ट भूमिका निभा सकती है। शोधार्थिनी भी अपनी सहमति , नवीन शिक्षा नीति की प्रबन्ध नियोजन नीति के पक्ष में व्यक्त करती हैं।

---

1. नई शिक्षा नीति - डॉ. किरण लक्ष्मी श्रीवास्तव, पृष्ठ 39

2. नई शिक्षा नीति - डॉ. तेज बहादुर माथुर, पृष्ठ 43

कोठारी आयोग (1964-66) ने विद्यालय सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों के अंतर्गत इनकी चर्चा करते हुए शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए विद्यालय परिवार की स्थापना की संस्तुति दी। आयोग का मत था कि शिक्षा के किसी क्षेत्र में सहयोग एवं समानता के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध होकर शैक्षिक उन्नति के हेतु विभिन्न विद्यालय अपनी समान समस्याओं के विश्लेषण उपरांत समाधान के लिए योजनायें बनायें तथा एक दूसरे की सहायता एवं सहयोग से उन्हें क्रियान्वित करें। शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक उन्नति स्वतः हो जायेंगी। इस प्रकार सहयोग एवं संगठन की स्थिति को उन्होने विद्यालय व्यवस्था की संज्ञा दी। विद्यालय की कार्यपद्धति सरल एवं प्रभावोत्पादक होनी चाहिए जिससे सभी सदस्य बौद्धिक स्तर पर विचारों का अदान-प्रदान कर सकें। विद्यालय के सदस्यों में एकत्व की भावना होनी चाहिए जिससे भौतिक एवं शैक्षिक स्तर पर वे एक दूसरे के पूरक हो सकें सम्पूर्ण विद्यालय के लिए वार्षिक योजना का निर्माण हो, तथा सदस्य विद्यालयों द्वारा अपनी अपनी योजनाओं का निर्माण, पुस्तकालय की पुस्तकों पत्रिकाओं, विज्ञान उपकरणों, खेलकूद सामग्री तथा फर्नीचर आदि जैसी सुविधाओं का विद्यालय के सदस्य विद्यालयों के बीच आदान प्रदान होना चाहिए। विद्यालय व्यवस्था के अंतर्गत विषय समितियों द्वारा विषय के शिक्षण में सुधार होना चाहिए। नवीन शिक्षा नीति विद्यालयों से सम्बद्ध विद्यालयों में आपसी सहयोग तथा समन्वय की भावना का विकास कर आत्म निरीक्षण तथा आत्म परीक्षण की भावना उत्पन्न करना, विद्यालय के सीमित साधनों के अभीष्ट प्रयोग हेतु योजना बनाना जिससे उन साधनों का अधिकाधिक उपयोग हो सकें। अध्यापकों को विषय से सम्बंधित नवाचारों केप्रयोग के लिए अग्रसर करना, अध्यापकों को विषयानुकूल नवीन शिक्षा तकनीकों का प्रयोग करने की सुविधा एवं प्रोत्साहन प्रदान करना, विद्यालय में एकता की भावना के प्रसार के लिए सभी सदस्य विद्यालयों में एक समान योजनायें, तथा सामूहिक पी० टी० एवं सामूहिक राष्ट्रीय गान का चयन करना तथा राष्ट्रीय पर्वो पर सामूहिक प्रदर्शन करवाने की व्यवस्था करना, सदस्य विद्यालयों में स्वस्थ, प्रतियोगी भावना का विकास करने के लिए वृक्षारोपण, सामायिक स्वच्छता आदि विषयों से सम्बंधित अभियान चलाना तथा विशिष्ट उपलब्धि अर्जित करने वाले विद्यालयों को पुरस्कृत करना आदि विद्यालय व्यवस्था के अंतर्गत होना चाहिए।

विद्यालय व्यवस्था के अंतर्गत परीक्षा प्रणाली में भी सुधार होना चाहिए सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा प्रणाली में सुधार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नवीन शिक्षा

---

1. नई शिक्षा नीति - डॉ. जी. आर. शर्मा, पृष्ठ 219

2. नई शिक्षा नीति - डॉ. जी. आर. एन. मिश्र, पृष्ठ 52

नीति में अंकों के स्थान पर ग्रेड दिया जायेगा। 48 या 45 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्र को द्वितीय श्रेणी मिलती है पर 47 या 44 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्र को तृतीय श्रेणी। इससे असंतोष विकसित होता है सम्भव है ग्रेड प्रणाली में 40 से 50 या 45 से 55 प्रतिशत अक पाने वाले विद्यार्थियों को बी या सी ग्रेड दिया जाये। इससे विद्यार्थियों में बहुत अंशों तक असंतोष बचाया जा सकता है। एक वार्षिक परीक्षा पर ही परीक्षाफल निर्भर नहीं करेगा। कई सामायिक परीक्षायें ली जाती रहेगी इससे विद्यार्थी में नियमित रूप से पढ़ने की आदत का विकास होगा।

नवीन शिक्षा नीति विद्यालय व्यवस्था में खेलों को भी महत्व देती है। स्वस्थ शरीर में स्थस्थ मस्तिष्क निवास करता है इस पुरानी कहावत को आधार मानकर खेलों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। नवीन शिक्षा नीति में शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने के उपायों का उल्लेख किया गया है विद्यालय व्यवस्था में अनुशासन का होना अनिवार्य है।

विद्यालय का बालक के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है विद्यालय व्यवस्था के अनुरूप ही उसका आचरण बनता है क्योंकि विद्यालय का अपना वातावरण होता है उसका अपना व्यक्तित्व होता है। अतः विद्यालय के नेतृत्व को विद्यालय का वातावरण बनाने और उसे विशिष्ट विशेषताओं से सम्पन्न करने के लिए परम्पराओं और रीति रिवाजों का निर्माण करना चाहिए। संस्था प्रधान/प्राचार्य का नेतृत्व अध्यापकों की एक संकाय के रूप में एकजुटता और विद्यालयी साधन सुविधायें सभी मिलकर विद्यालय के स्वरूप और वातावरण का निर्माण करते हैं। इन्हीं से विद्यालय की विशिष्टताओं का पता चलता है। अतः विद्यालय की विशिष्टताओं का निर्माण करने में अध्यापकों अभिभावकों और प्रशासन का सहयोग होना चाहिए तब ही विद्यालय व्यवस्था सुदृढ़ हो सकती है।
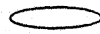
अध्याय : नवम

शैक्षिक अभिकरण

(क) गाँधी जी एवं विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

गाँधी जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

परिवार का शिक्षा में योगदान, राज्य का शिक्षा में योगदान, विद्यालयों का शिक्षा में योगदान, अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान

विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :

परिवार सम्बन्धी विचारों का शिक्षा में योगदान, राज्य का शिक्षा में योगदान, विद्यालयों का शिक्षा में योगदान, विनोबा जी के अनुसार समुदाय का शिक्षा में योगदान .

(ख) महात्मा गाँधी जी एवं विनोबा जी द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक अभिकरणों सम्बन्धी विचारों की नईशिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :

महात्मा गाँधीजी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :

गाँधीजी के अनुसार शिक्षार्थी, महात्मा गाँधी के शिक्षक सम्बन्धी विचार, महात्मा गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि, महात्मा गाँधीजी के अनुसार विद्यालय, महात्मा गाँधीजी के अनुसार अनुशासन

विनोबाजी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :

शिक्षक, विनोबाजी के अनुसार विद्यार्थी, विनोबाजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, विनोबा भावे के अनुसार पाठ्न विधि, विनोबा भावे के अनुसार पाठ्यक्रम, विनोबा जी के अनुसार अनुशासन

शैक्षिक अभिकरण नई शिक्षा नीति के संदर्भ में

शैक्षिक अभिकरण

(क) गाँधीजी एवं विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :-

गाँधीजी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :-

परिवार का शिक्षा में योगदान :-

बच्चों का सबसे पहला विद्यालय उनकी माँ की गोद, घर अथवा परिवार होता है। भाषा और आचरण की शिक्षा तो परिवार से ही प्रारम्भ होती है। बच्चों पर पड़े ये संस्कार स्थाई होते है। अतः परिवार के सदस्यों का कर्तव्य है कि वे प्रारम्भ से ही विचार और व्यवहार को सही दिशा दें। माता पिता को बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिये शरीर की सफाई और स्वास्थ्य लाभ के उपाय बताना चाहिये। बच्चों का इतना ध्यान रखना चाहिये एवं उनके विचारों को समझना चाहिये,जिससे उनमें किसी प्रकार की मानसिक ग्रन्थियां न बने। इसके लिये बच्चों की रूचि, रूझान, और योग्यता का सदैव ध्यान रखना चाहिये। उनके साथ प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। परिवार का पर्यावरण ऐसा होना चाहिये कि बच्चे उसमें सामाजिक भावना एवं उच्च आचरण की शिक्षा प्राप्त करें इसके लिये परिवारों का पर्यावरण धार्मिक और नैतिक होना चाहिये। बच्चों का लालन पालन प्रायः परिवारों में ही होता है। हमारे देश भारत में तो बच्चों के पोषण का एकमात्र स्थान परिवार ही है। पोषण संस्थान के रूप में परिवार बच्चों के खाने पीने की व्यवस्था करतें है।उनकी देख भाल करते है और रोगग्रस्त होने पर उनके इलाज की व्यवस्था करते हैं। शिक्षा के अभिकरण के रूप में परिवार बच्चों को ऐसा नियमित जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण देते हैं ,जो स्वास्थ्य रक्षा के लिये आवश्यक होता है।विद्यालय के सहयोगी के रूप में परिवार बच्चों को विद्यालयों में आयोजित स्वास्थ्यप्रद क्रियाओं में भाग लेने की प्रेरणा देते है।विद्यालयों के प्रांगण में सीखे स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन यदि परिवारों में न कराया जाये तो सब व्यर्थ ही होंगे। विद्यालयों में तो बच्चे कुछ समय के लिये रहते है। स्वास्थ्य सम्बन्धी उचित आदतों के निर्माण के लिये परिवारों का सहयोग बहुत आवश्यक होता है। विद्यालय के सहयोगी के रूप में परिवार बच्चों के मानसिक विकास में सहायक होते हैं। विद्यालयों में बच्चों के मानसिक विकास के लिये भाषा एवं अनेक विषयों का ज्ञान कराया जाता है और अनेक क्रियायें करायी जा सकती हैं। इस ज्ञान की सामाजिक उपयोगिता सामाजिक परिस्थितियों में अच्छे ढंग से समझी जा

सकती हैं। परिवार मानसिक विकास में सहायक होते हैं। प्रत्येक समाज में विद्यालयों को एक आदर्श समाज के रूप में विकसित किया जाता है और उनसे यह आशा की जाती है, कि वे बच्चों का नैतिक और चारित्रिक विकास करें। परिवार बच्चों के मानसिक विकास में सहायक होते हैं। प्रत्येक समाज में विद्यालयों को एक आदर्श समाज के रूप में विकसित किया जाता है और उनसे यह आशा की जाती है, कि वे बच्चों का नैतिक और चारित्रिक विकास करें । अच्छे विद्यालय इस सभी के लिये प्रयत्न करते हैं। परन्तु वे अपने कार्य मे तब सफल होते है। जब परिवार उनका सहयोग करते है।अच्छे परिवारों के सदस्य अपने बच्चों के विद्यालयों के नियमों, समय से विद्यालय जाना, गुरूओं की आज्ञा का पालन करना, सबसे प्रेम, सहानुभूति और सहयोग पूर्ण व्यवहार करना,निश्चित समय पर निश्चित कार्य करना,आदि का पालन करने की ओर अग्रसर करते हैं और उन्हें उनका पालन करने में अग्रसर करते हैं। बड़े-बड़े उद्योगों की शिक्षा के लिये हमें विद्यालयों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।परन्तु इसमें भी परिवारों का सहयोग रहता है।बच्चों में रूचि और रूझान का विकास करने तथा उन्हें यथा क्षेत्रों में क्रियाशील करने में परिवारों की बाहरी भूमिका है।

भारत में धर्म भी अनेक हैं। विद्यालयों में सभी धर्मों की शिक्षा सम्भव नहीं हैं। परन्तु बिना धर्म के हमारा नैतिक उत्थान नहीं हो सकता हैं।इसलिये विद्यालय इस कार्य में तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक परिवार उनका सहयोग नहीं करते हैं।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में परिवारों का हाथ प्राचीन काल से ही रहा है और आज भी है। पहले तो परिवार शिक्षा का मुख्य केन्द्र थे आज भी बच्चे की शिक्षा की नींव परिवार में ही रखी जाती है।बच्चे की पूर्ण शिक्षा में परिवार का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोंनो रूपों में हाथ रहता हैं।यही कारण है, कि शिक्षा के क्षेत्र में परिवारों का महत्वपूर्ण स्थान हैं।

" महात्मा गाँधी घर को बच्चे की पहली पाठशाला और माँ को पहली शिक्षिका मानते थे।"[1]

गाँधीजी ने अपनी पाठशालाओं में परिवार जैसे : प्रेम, सहानुभूति और सहयोग को स्थापित करने पर बल दिया है।

परिवार बच्चे की सबसे पहली संस्था है और माँ उसकी सर्वप्रथम शिक्षिका। इसलिये माँ का शिक्षित होना परम आवश्यक है।माँ को शिक्षित करने के लिये स्त्री शिक्षा

1. शिक्षा के सा. एवं दा. सिद्धांत - रमन विहारी लाल

का प्रसार करना होगा । घर के अन्य सदस्यों का शिक्षित एवं शिष्ट होना आवश्यक है। घर के प्रत्येक सदस्य का चरित्रवान और कर्मशील होना आवश्यक है। जिससे बच्चे उसका अनुसरण करके वैसे ही बनें।

राज्य का शिक्षा में योगदान :-

बच्चों के लिये उचित शिक्षा विद्यालयों में ही मिलती है।विद्यालयों का निर्माण, उचित पाठ्यचर्या का निर्माण, योग्य अध्यापकों की नियुक्ति आदि का कार्य राज्य ही कर सकता है.। राज्यों का कार्य विद्यालयों की स्थापना, उनकी देखभाल और सम्पूर्ण शिक्षा पर नियंत्रण रखना तो ही है उसके साथ-साथ ही शैक्षिक संस्थाओं के समाधान के लिये शोध कार्य करना भी है।राज्य चाहे जिस तरह का हो,एकतंत्रवादी अथवा जनतंत्रवादी। इस युग में उसका कर्तव्य है कि चह शिक्षा की देखभाल करें।इसका कारण यह है, कि आज समाज के परिवार तथा धर्म संस्थायें जो प्राचीन काल में शिक्षा की व्यवस्था करती थी पूर्णरूप से शिक्षा के क्षेत्र से हट चुकी है।समाज के इस जटिल जीवन की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थता व्यक्त कर रही है।ऐसी अवस्था में राज्य का पूर्ण उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य है,कि वह शिक्षा के लिये प्रयत्न करे।

राज्य का प्रथम कर्तव्य शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय योजना तैयार करना है। प्रत्येक देश में और हमारे यहाँ भी केन्द्रीय राज्य शासन को यह कार्य सौंपा जाता है,कि वह राष्ट्र के लोंगो के लिये सामान्य शिक्षा नियमों को बनावें और लागू करे। इस योजना में समस्त स्तरों का ध्यान रखा जावें-जैसे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं विश्वविद्यालीय,व्यावसायिक, तकनीकी आदि स्तर। इन सभी स्तरों पर शिक्षा को सुसम्बद्ध, सुसंगठित और सुनियोजित करना राष्ट्र का कर्तव्य है। राष्ट्रीय योजना के अनुकूल शिक्षा का प्रारूप तैयार करने,राज्य को देश की संस्कृति, देश की सामाजिक स्थिति एवं परम्परा और देश के लोंगो का जीवन दर्शन भी ध्यान में रखना चाहिये।शिक्षा योजना को चालू कैसे किया जाये इस समस्या को हल करने के लिये विद्यालय खोलने का भी राज्य के ऊपर ही विद्यालयों को खोलने के साथ-साथ उन्हें पूर्ण रूप से सज्जित करने का कार्य भी राज्य का है, अन्यथा विद्यालयों का काम भलीभाँति नहीं चल सकता है। राज्य को यह भी देखना पड़ेगा,कि जो शिक्षा के साधन नागरिकों को प्रदान करता है।उसको वे उपयोग में लाते ही नही।

राज्य का कार्य शासन,नियंत्रण, देखभाल और लोंगो को शिक्षा प्रदान करना हो गया है। राज्य जैसी संस्था दो प्रकार की होती हैं-जनतांत्रिक और अधि

ानायकतंत्रीय। जनतंत्र राज्य समाज के प्रतिनिधियों द्वारा बनता है और अधिनायकतंत्र राज्य किसी वंश परम्परा या निजी बल पर स्थापित होता है।दोंनो प्रकार के राज्यों में शिक्षा की भूमिका होती है। समाज में शान्ति सुरक्षा बनाये रखना है। जिससे शिक्षा का कार्य एवं जनजीवन सुचारू रूप से चले तथा समाज के लोंगो पर और उनके कार्यों पर नियंत्रण तथा प्रशासन होना राज्य का ही कार्य है। राज्य समाज के लोंगो को सुविधा, सहायता तथा सहयोग देता है। ताकि वे लोग शिक्षित बन जायें। राज्य द्वारा पुरस्कार प्रोत्साहन शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वालों को दिया जायें ताकि वे अधिक अच्छे कार्य के लिये प्रयत्नशील बने रहें।राज्य द्वारा शिक्षा संस्थाओं को जीवित रखने ,चलाने और आगे बढ़ाने की भूमिका है,जिस पर शिक्षा की प्रगति निर्भर करती है। राज्य पहले ही शिक्षा की योजना बना लेता है। जिसके अनुसार लोग शिक्षा लें सके तथा राज्य एवं समाज के लोंगो का प्रयत्न सफल हो सके।वित्तीय अनुदान की व्यवस्था करने में भी राज्य ी भूमिका होती है, ताकि विद्यालय का कार्य अच्छी तरह चलता रहे और कोई आर्थिक संकट न आवे। राज्य का सभी स्तर पर शैक्षिक विकास का दृष्टिकोण होता है जिससे राज्य में सम्पूर्ण शिक्षा विकसित हो।

शिक्षा की योजना को क्रियान्वित करने के लिये राज्य को सर्वप्रथम अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के लिये पर्याप्त विद्यालय खोलने होते है। उनका उचित रूप से संचालन करना होता हैं। अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा के बाद राज्य को ऐच्छिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होती है। इसके लिये भी विद्यालय, महाविद्यालय, और विश्वविद्यालय की स्थापना एवं उनका संचालन करना होता है। इन विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होती है। इस प्रकार की शिक्षा के लिये राज्य को अलग से भी महाविद्यालय और विश्वविद्यालय खोलने चाहिये। राज्य को अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये इस प्रकार की शिक्षा की परम आवश्यकता होती है। इसके लिये प्रत्येक राज्य को सैनिक शिक्षा का प्रबन्ध करना होता है।युद्ध के सामान के उत्पादन के लिये प्रशिक्षण आवश्यक है। कोई भी शिक्षा योजना जब ही पूर्ण की जा सकती है। जब उसके पास योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापक होते है। अतः राज्य को अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय भी खोलने पड़ते है एवं उनका संचालन करना होता है। राज्य अध्यापकों के साथ-साथ विद्यालयों के पास अच्छे भवन,पुस्तकालय,वाचनालय,प्रयोगशालायें ,फर्नीचर विभिन्न शिक्षण सामान आदि की भी व्यवस्था करता है। राज्य अपने शिक्षा सम्बन्धी कार्यो को तब ही पूर्ण कर सकता हैं। जब वह इसे प्रमुखता देता है। अतः राज्य का शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है।

विद्यालयों का शिक्षा में योगदान :-

प्राचीन काल में परिवार,समुदाय और धार्मिक संस्थाये ही शिक्षा की मुख्य संस्थाये थी,परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य ने ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में विकास किया वैसे-वैसे उसे उस ज्ञान विज्ञान को सुरक्षित रखने और उससे आगे की पीढ़ी को अवगत कराने के लिये विद्यालयों का निर्माण करना पड़ा। आज के इस युग में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हो गया है,कि उन सभी की शिक्षा के लिये विद्यालयों की परम आवश्यकता है। विद्यालयों की सहायता के बिना हम बच्चों को आज के इस उन्नतिपूर्ण समाज में समायोजन के योग्य नहीं बना सकते। आज समाज में जनसंख्या का भी विशाल विस्फोट हुआ है। इस बढ़ी हुई जनसंख्या की शिक्षा की व्यवस्था परिवार,समाज और धार्मिक संस्थाओं द्वारा नहीं की जा सकती है। इसलिये आज विद्यालयों का बहुत उपयोग है जो कि मुख्यतः शिक्षा के लिये महत्वपूर्ण साबित हुये है। आज के समय में मनुष्य की आवश्यकतायें तेजी से बढ़ रही है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसे दिन भर व्यस्त रहना पड़ता है। यहाँ तक कि बच्चों की मातायें भी खेत खलिहानों, कारखानों, बैंको, कार्यालयों आदि में कार्य करती हैं। उन्हें अपने शिशुओं की देखभाल तथा प्रारम्भिक शिक्षा का समय नहीं मिलता है। परिणामतः विशिष्ट शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा में शिशु शिक्षा तक की व्यवस्था के लिये विद्यालयों का सहयोग आवश्यक है।

सामान्यतः सभी परिवारों में केवल सामान्य भाषा एवं सामान्य आचरण की शिक्षा दी जाती हैं और यह भी परिवारों में अलग अलग दी जाती हैं। अशिक्षित परिवारों में शिक्षा अशुद्ध भी दी जाती है। इसलिये इसके सुधार के लिये विद्यालयों की आवश्यकता होती हैं। फिर आज के समय में शिक्षण सरल नहीं रहा जो कि माता, पिता उचित शिक्षण दे सके, क्योंकि बच्चों का विकास जन्मजात शक्तियों, रूचि, रूझानों और उनकी आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। इन आवश्यकताओं के साथ साथ वातावरण का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। बच्चों की आनुवांशिक विशेषताओं को जानने और उनके वातावरण के लिये उचित वातावरण का निर्माण करने के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है। विद्यालयों में अध्यापक उचित वातावरण का सृजन करते है।शिक्षण की नई नई विधियों का प्रयोग कर बच्चों को कम से कम समय और शक्ति के प्रयोग से अधिक से अधिक सीखने में सहायता पहुचातें है।

परिवार सबसे छोटा सामाजिक समूह होता है। परिवार के सदस्यों की समान भाषा और रहन सहन की विधियाँ एवं समान व्यवहार प्रतिमान होते है। परन्तु

समुदाय में तो विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग रहते है। बच्चों को आगे चलकर इसी सामाजिक समूह में समायोजन करना पड़ता है। इन सभी के लिये विद्यालय उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करतें है। विद्यालय से ही बच्चों को उचित शिक्षा मिलती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह भी है कि प्रत्येक विद्यालय अपने उददेश्यों की प्राप्ति शिक्षा द्वारा ही करता है। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था विद्यालयों में ही की जा सकती है।

विद्यालय ऐसी सामाजिक संस्थाये हैं जिसका निर्माण कोई भी राज्य या समाज अपने उददेश्यों की पूर्ति के लिये करता है। विद्यालयों का मुख्य कार्य समाज को शिक्षित करना एवं उन्हें इस युग के ज्ञान विज्ञान के विकसित समाज से परिचित कराना है। प्राचीन समाज के विद्यालय का मुख्य कार्य धर्म शिक्षा की व्यवस्था करना होता है। मध्य काल धर्म संकीर्णता का युग था। उस समय के विद्यालय अपने अपने धर्म की शिक्षा देते थे। परन्तु इस समय समाज ने भाषा, साहित्य, दर्शन और अन्य अनुशासनों के क्षेत्र में भी बड़ा विकास किया था और विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धे विकसित किये थे और इन सभी की शिक्षा की व्यवस्था विद्यालयों को सौंपी थी।आज का युग विज्ञान का युग हैं। आज धर्म का स्थान विज्ञान ने ले लिया है। संसार के सभी देशों में विज्ञान की लहर चल रही है, जो कि विद्यालयों द्वारा ही पूर्ण की जा सकती है।

विद्यालयों का निर्माण कोई भी समाज शिक्षा के लिये ही करता है।विद्यालयों मे चलने वाली शिक्षा के उददेश्य पाठ्यचर्चा व शिक्षणविधियॉं सभी निश्चित होते हैं। इन सभी बच्चों को सीखने में सहायता करने के लिये योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापक होते है। इस प्रकार विद्यालय शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है जो कि हमारे समाज को शिक्षित कर ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में सहयोग करता है तथा समाज में लोंगो को इस विकसित दुनियॉं से परिचित करवाता है। इसलिये विद्यालय का शिक्षा में अभिन्न योगदान है,जो कि हमारे परिवार,समाज ,राज्य एवं राष्ट्र को नई –नई दिशाओं से परिचित करवाता है।

अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :–

प्रत्येक समाज अपनी मान्यताओं और आवश्यकताओं के अनुकूल ही अपनी शिक्षा की व्यवस्था करता है किसी भी समाज की आवश्यकतायें एवं मान्यतायें उसकी सामाजिक संरचना तथा उसकी भौगोलिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुकूल होती है।

शिक्षा में सभी समुदायों का योगदान हैं जो कि निम्न प्रकार है।

व्यक्ति या बालक गृह और परिवारों के सम्बन्धों तथा उन सभी लोंगो के द्वारा जो परिवार में रहते है, शिक्षित होता हैं। पास पड़ोस भी व्यक्तियों को शिक्षित करता है। पास पड़ोस में गृह, उनके घरेलू रीति रिवाज, झगड़े, मेल मुलाकात, खेलकूद या सामूहिक कार्य सभी का प्रभाव व्यक्तियों पर पड़ता हैं। समुदाय में खेल के मैदान, उनके खेल आदि आदि से शिक्षा मिलती है। ये भावना, आदर्श, चरित्र आदि का विकास करते है। प्रकृति भी शिक्षा देती है।जब उसके पास जाओ ,तो उससे हमें कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य मिलती है जैसे पेड़, पौधे, पशु पक्षी, फसलें ,मिट्टी, दिन रात, ऋतुयें, जलवायु, आकाश, अग्नि सभी शिक्षा के साधन है। इस प्रवृति को दूर करके मानव जाति ने शिक्षा की सबसे बड़ी क्षति सही है।धार्मिक संस्थायें भी शिक्षा में सहयोग करती है।जैसे -चर्च, संडे स्कूल, धार्मिक उत्सव, धार्मिक विरोध भी, पवित्र संगीत, राग रंग भी व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करते है। यहाँ तक धर्म में रूचि रखने वाले लोग भी इनको अस्वीकार करके कुछ न कुछ सीखते है। कार्य भी शिक्षा देते है जैसे - परिवार, पास पड़ोस तथा समुदाय के कार्य इसी तरह के होते है। जिनसे बच्चे कुछ न कुछ सीखते है।

इस प्रकार अन्य सभी समुदायों जैसे -समाज, समुदाय, धार्मिक संस्थाये, पास पड़ोस आदि का भी शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है।

विनोबा जी द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं अन्य समुदायों का शिक्षा में योगदान :-

परिवार सम्बन्धी विचारों का शिक्षा में योगदान :-

पारम्परिक दृष्टि से घर या परिवार को शिक्षा के औपचारिक एवं सक्रिय साधन के रूप में देखा गया है। क्योंकि बालक की प्रथम पाठशाला घर एवं परिवार है तथा प्रथम शिक्षिका माता है। शिक्षा के साधन के रूप में परिवार का दोहरा दायित्व है।प्रथम व्यक्ति के प्रति तथा द्वितीय समाज के प्रति। व्यक्ति के प्रति उसका प्रमुख दायित्व बच्चे का समाजीकरण करना है। साथ ही उनके विकास तथा संरक्षण के लिये कार्य करना है। ऐसा वह हस्तान्तरण तथा प्रभाव डालकर करता है। समाज के अंग के रूप में परिवार अपने सदस्यों के लिये शिक्षा की माँग करता है। इसके लिये वह विद्यालयों आदि संस्थानों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परिवारिक शिक्षा का प्रारम्भ एक प्रकार से बच्चे के जन्म से पूर्व से ही हो जाता है। इस प्रकार परिवार का प्रमुख कार्य भावी जीवन की आधारशिला का निर्माण करना है। अतः परिवारिक शिक्षा

शिक्षा के सा. एवं दा. सिद्धांत - रमन विहारी लाल

के कार्य बहुआयामी होते है। घर या परिवार प्रथम स्थान है। जहाँ बालक बहुत सी बातें सीखता हैं

" सामान्य रूप से घर वह स्थान है,जहाँ बालक अपनी माँ से चलना, बोलना, मैं और तुम में अन्तर करना और अपने चारों ओर की वस्तुओं के सभी गुणों को सीखता है।" (रेमोण्ट)

परिवार नैतिक एवं सामाजिक प्रशिक्षण का सबसे मुख्य स्थान है। पहले बच्चा भाषा सीखता हैं फिर वह भाषा के माध्यम से नैतिक और सामाजिक नियमों को सीखता है। वह परिवार के ढ़ंगो, व्यवहारों और परम्पराओं को अपनाता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है। वैसे-वैसे वह अधिक उत्तम, नैतिक और सामाजिक प्रशिक्षण प्राप्त करता हैं। बालक घर में ही दूसरों से अनुकूलन करने का पाठ सीखता हैं। वह परिवार के विभिन्न सदस्यों से मेल रखते हुये देखता है। इसका उस पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वह वैसे ही करने का प्रयत्न करता है। बालक सामाजिक जीवन में जो अनुभव प्राप्त करता हैं। वही भविष्य में उसके सामाजिक व्यवहार का आधार होता हैं। बचपन में ही वह संघर्ष या सहयोग, भक्ति या भक्तिहीनता में से कुछ प्रवृत्तियों को अपनाता हैं। जब वह समाज में अपना स्थान प्राप्त करता हैं। तब वह उन्हें अपने कार्यों द्वारा व्यक्त करता हैं। घर का प्रभाव बालक में कुछ भूलों और आदतों का विकास करता हैं। वह अपने पिता से न्याय माता से प्रेम और भाई बहिनों से भ्रातृत्व भाव सीखता है। घर में ही बालक सहायता, सहानुभूति, क्षमा, सच्चाई, परिश्रम और उदारता के आदर्शों को देखता है। वह इन भूलों और आदर्शों में से कुछ को अपने भावी जीवन में अपनाता है। विनोबाजी ने अपने विचारों द्वारा व्यक्त किया हैं कि बालक में अच्छी या बुरी आदतें घर में पड़ती है। वह अपने परिवार के सदस्यों की कुछ आदतों को देखता है और अनजाने ही उनको ग्रहण कर लेता है। बुरी आदतें छूत के रोंगो के समान होती है। अतः आवाश्यक है कि माता पिता अच्छी आदतों के उदाहरण ही अपने बच्चों के सामने रखें। बालक के वैयक्तिकता का विकास घर में होता है। उसके प्रति उसकी माँ का दृष्टिकोण पूर्णरूप से वैयक्तिक होता हैं। वह चाहती है,कि उसका पुत्र सब बातों में अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ हो। वह और परिवार के अन्य सदस्य उसकी वैयक्तिकता का विश्लेषण करते हैं। और उसे विकसित करने के लिये सभी प्रकार के अवसर देते है। विनोबाजी ने कहा कि माँ केवल बालक से प्रेम ही नहीं करती है ,बल्कि उसे प्रेम की शिक्षा भी देती है। परिणामतः बालक परिवार, समाज, देश और विश्व से प्रेम

---

1. शिक्षा के सिद्धांत - पाठक एवं त्यागी

करने लगता है।

''माता पिता द्वारा बच्चे को दिया जाने वाला आराम; निस्वार्थ प्रेम का सर्वोत्तम जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। '' (राम और शर्मा)

जब बालक बड़ा होकर समझदार बनता है। तब वह अपने परिवार के सदस्यों को एक दूसरे को सहयोग देते हुये देखता है। माँ घर का कामकाज करती है। पिता धन कमाकर लाता है । बड़े भाई बहिन किसी न किसी काम में माता पिता का हाथ बँटाते हैं। बालक इन सभी से सहयोग की शिक्षा ग्रहण करता है।

'' परिवार ही वह स्थान है,जहाँ प्रत्येक नई पीढ़ी नागरिकता का नया पाठ सीखती है कि कोई भी मनुष्य बिना सहयोग के जीवित नहीं रह सकता हैं।'' (बोसांके)

हर परिवार पर किसी न किसी व्यक्ति का पूर्ण अधिकार होता हैं। चाहे वह पिता हो या माता या कोई अन्य सदस्य। उसकी आज्ञा परिवार के प्रत्येक सदस्य को मानना पड़ती हैं। अतः बालक भी आज्ञा पालन और अनुशासन के गुणों को ग्रहण करता है।

'' आज्ञा पालन और शासन दोंनो रूपों में परिवारिक जीवन ,सामाजिक जीवन का सदैव शाश्वत विद्यालय रहेगा।'' (कॉम्टे)

इस प्रकार परिवार बालक को अनेक प्रकार की शिक्षा देता है जो कि बालक के जीवन के लिये महत्वपूर्ण है।

राज्य का शिक्षा में योगदान :-

शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से समाज में रहने वाले मानव से सम्बन्धित है। इसलिये यह उस समाज से प्रभावित होती है। जिसमें मनुष्य निवास करता है।मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जो समुदायों मे निवास करता हैं। इन समुदायों में विशेष प्रकार की शासन प्रणाली ,संस्थायें तथा संगठन होते है। किसी समाज या समुदाय में जीवन विशेष आदर्शों या मान्यताओं शासन या सरकार तथा संस्थाओं के अभाव में सम्भव नहीं हैं। अतः ये संस्थायें शिक्षा को प्रभावित किये नही रह पाती है। अर्थात राज्य या राज्य की विभिन्न संस्थायें शिक्षा को स्वाभाविक रूप से प्रभावित करती है।

प्लेटो ने अपने महान ग्रन्थ Republic में इस वात पर बल दिया था कि उचित शिक्षा राज्य पर निर्भर है और एक उपयुक्त राज्य की स्थापना उचित प्रकार की शिक्षा

द्वारा हो सकती है। विनोबाजी ने राज्य को शिक्षा के साधन के रूप में स्वीकार किया है। राज्य को विभिन्न स्थानों की आवश्यकताओं के अनुसार सभी प्रकार के विद्यालयों प्राथमिक तकनीकी आदि की व्यवस्था पर जोर दिया है। ये विद्यालय ऐसे सामजंस्य से कार्य करें कि प्रयास विफल न हो । यदि सरकार किन्हीं परिस्थितियों में सभी के लिये सभी प्रकार के विद्यालय स्थापित न कर सके तो सभी को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिये अनौपचारिक/औपचारिक शिक्षा केन्द्रो की स्थापना करे। ऐसा करके वह आज की जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है।राज्य एक निश्चित स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य बनाता है और अभिभावको को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिये बाध्य करता है। बच्चों की शिक्षा के कार्य को पूरा करने के लिये कौन से उपाय हो सकते है। यह निश्चिय करना राज्य का कार्य है।

राज्य का विद्यालय पद्धति पर सामान्य नियंत्रण होता है और निर्देशन भी। राज्य पाठ्यक्रम के विषय -शिक्षकों और समुदाय की सलाह से चुनता है। जहाँ तक शिक्षण विधियों की बात है। उनमें शिक्षकों को पूरी स्वतंत्रता होती है। विद्यालयों के लिये योग्य शिक्षको की व्यवस्था करना राज्य का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। शिक्षा की सभी सुवधियें होते हुये भी यदि शिक्षक अयोग्य है तो सब कुछ व्यर्थ हो जावेगा। विद्यालय बनाना, उनको छात्रों सें भरना उनके निरीक्षण का उत्तम प्रबन्ध. करना ये सभी बातें महत्व रखती है। पर हमको यह नही भूलना चाहिये कि इन सभी कार्यों में शिक्षक ही प्राण फूँकता है। अतः ज्ञान, कुशलता और सहानुभूति से पूर्ण शिक्षकों को चुनना राज्य का सबसे प्रमुख कार्य है। आज की नई शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के नये आदर्श और नये उद्देश्य होना आवाश्यक है। अतः राज्य का कर्तव्य हैं, कि वह अपनी आवाश्यकता को पूर्ण करने हेतु इन आदर्शों और उद्देश्यों का निर्माण करें। ऐसा तभी हो सकता है।जब वह शैक्षणिक अनुसंधान को प्रोत्साहन दें।

बालक की शिक्षा में विद्यालय का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है।पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान घर या परिवार का है।बालक कैसे परिवार से आया है। इसके परिवार के सदस्यों का दृष्टिकोण क्या है। उनकी संस्कृति ,रहन सहन आचार विचार कैसे है।शिक्षक के लिये इन सब बातों का ज्ञान होना आवाश्यक है। बालक के परिवारिक इतिहास और पृष्ठभूमि को जानकर ही शिक्षक उसकी रूचियों और आवश्यकताओ को समझ सकेगा और तभी वह उसे उचित प्रकार की शिक्षा दे सकेगा। अतः आवाश्यक है कि राज्य द्वारा किसी ऐसी संस्था का निर्माण किया जाये जो शिक्षको और अभिभावकों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाये। इस सम्पर्क

द्वारा ही शिक्षकों को अपने छात्रों का पूर्ण ज्ञान हो सकता हैं और इस ज्ञान पर उनकी शिक्षा को आधारित करके शिक्षक अपने दायित्व को बहुत अच्छी तरह से निभा सकते है। अच्छे नागरिक राज्य के दृढ़ स्तम्भ है। ऐसे नागरिकों का निर्माण नागरिकता के प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव है।

इस प्रकार हम कह सकते है, कि राज्य का कार्य मात्र सामान्य व्यक्तियों की शिक्षा तक ही सीमित नही है। अपितु वह सामान्य अथवा विशिष्ठ वर्गों की शिक्षा की भी व्यवस्था करता है। वह समाज द्वारा उपेक्षित, तिरस्कृत, अन्धे, बहरे, गूँगे, लँगड़े आदि लोंगो का दायित्व राज्य पर हैं। साथ ही वह दुर्बल वर्गों की शिक्षा की भी व्यवस्था करता हैं। राज्य, परिवार नियोजन एवं जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरणीय शिक्षा आदि की भी व्यवस्था करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार - शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विकलांगों को शिक्षा देने का यह उद्देश्य होना चाहिये कि वे समाज के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चल सकें। अतः विनोबाजी ने राज्य का शिक्षा में अभीष्ट योगदान बताया हैं, जो कि शिक्षा के लिये महत्वपूर्ण है।

विद्यालय का शिक्षा में योगदान :-

विद्यालय का शाब्दिक अर्थ विद्या का आलय अर्थात विद्या का घर है। ऐसा स्थान जहाँ नियोजित शिक्षा की प्रक्रिया चलती हैं और बच्चों में वांछित ज्ञान एवं कौशल का विकास किया जाता है, विद्यालय कहे जाते है। विनोबाजी ने विद्यालय का शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान माना है। विद्यालय का निर्माण कोई भी समाज शिक्षा के लिये करता है।विद्यालय में चलने वाली शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्चा व शिक्षणविधियाँ सभी निश्चित होते होते है। इनमें बच्चों के सीखने में सहायता करने के लिये योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापक होतें हैं। इस प्रकार विद्यालय शिक्षा का पूर्णरूपेण औपचारिक अभिकरण है। कोई भी समाज अपने उद्देश्यों की पूर्ति इन्हीं विद्यालयों के द्वारा ही करता है।

विनोबाजी के अनुसार किसी भी समाज की शिक्षा के उद्देश्य उसके जीवन दर्शन, उसकी संरचना, उसके शासन तंत्र, उसकी आर्थिक स्थिति, बाल मनोविज्ञान और समाज की वैज्ञानिक प्रगति पर निर्भर करते है। विनोबाजी ने विद्यालय में शिक्षा की समान व्यवस्था पर बल दिया है। समान व्यवस्था से तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से जिसमें छोटे, बड़े, गरीब अमीर आदि का

---

1. शिक्षा के सिद्धांत - पाठक एवं त्यागी

भेद न हों सभी को शिक्षा के समान अवसर दिये जायें। विद्यालय का शिक्षा में योगदान निम्न है जो इस प्रकार है

1. चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का प्रशिक्षण देना।
2. अतीत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना और इसे अधिक मूल्यवान बनाकर आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करना।
3. छात्र में सोचने और निर्णय करने की शक्ति का विकास विद्यालय द्वारा ही सम्भव है जिससे वे अपने सोचने समझने और कार्य करने के लिये प्रयोग कर सकें।
4. विद्यालय ही छात्रों मे कार्य को आरम्भ करने और नेतृत्व के गुणों का विकास करता हैं। जिससे कि प्रजातंत्र के नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्यों को कुशलतापूवर्क कर सके।
5. विद्यालय में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे छात्र प्रशिक्षित हों। जिससे वे समाज और अन्य व्यक्तियों पर भार बने बिना सम्मानपूर्वक ढंग से अपनी जीविका की समस्या हल कर सकें।

इस प्रकार विनोबाजी ने विद्यालय का शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दर्शाया है। जो कि बालक के जीवन को परिवर्तित करती हैं एवं उसे एक अच्छा एवं कुशल नागरिक बनाती है।

विनोबाजी के अनुसार समुदाय का शिक्षा में योगदान :-

समुदाय मनुष्यों का स्थायी और स्थानीय समूह है। जिसके अनेक प्रकार के समान हित होते है। जहॉ कहीं भी व्यक्तियों का एक समूह सामान्य जीवन में भाग लेता है। हम उसे समुदाय कहते हैं। विद्यालय या परिवार के समान समुदाय भी व्यक्ति के व्यवहार मे इस प्रकार रूपान्तर करता है। जिससे कि वह समूह के कार्यो में सक्रिय भाग ले सके।जिसका कि वह सदस्य है। समुदाय बालक के व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव डालता है। वास्तव में समुदाय बालक की शिक्षा प्रारम्भ से प्रभावित करता है। बालक का विकास न केवल घर के संकुचित वातावरण में ,वरन् समुदाय के विस्तृत वातावरण में ही होता है। समुदाय अप्रत्यक्ष किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से बालक की आदतों, विचारों और स्वभाव को मोड़ता है। बालक की संस्कृति, रहन सहन, बोलचाल आदि अनेक बातों पर उसके समुदाय का प्रभाव होता हैं। समुदाय का वातावरण बालक की जन्मजात प्रवृति पर विशेष प्रभाव डालता हैं। वह इन व्यक्तियों के ढंगों का अनुसरण करता है। जिनको वह देखता है। बालक अपने समुदाय के ढंग को अपनाते है। इसलिये उनके बोलचाल, दृष्टिकोण और व्यवहार पर समुदाय का प्रभाव होता हैं। अतः यह कहना उचित होगा कि परिवार और विद्यालय के समान

समुदाय भी शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन हैं विनोबाजी ने बालक की शिक्षा में समुदाय के महत्वपूर्ण योगदान को स्वीकार किया है।

''क्योंकि मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है इसलिये उसने वर्षों के अनुभव से सीख लिया है कि व्यक्तित्व और सामूहिक क्रियाओं का विकास समुदाय द्वारा ही सर्वोत्तम रूप से किया जा सकता है। '' (विलियम ईगर)

इस प्रकार समुदाय का शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। जो कि बालक के व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होता है।

(ख) महात्मा गाँधीजी एवं विनोबाजी द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक अभिकरण सम्बन्धी विचारों की नई शिक्षा नीति के संदर्भ में समीक्षा :-

महात्मा गाँधीजी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :-

गाँधीजी के अनुसार शिक्षार्थी :-

विद्यार्थियों के सम्बन्ध में भी गाँधीजी के विचार सराहनीय हैं। विद्यार्थी तो शिक्षा की प्रक्रिया का केन्द्र होता है। गाँधीजी के विचार से हर विद्यार्थी को अनुशासित रहना चाहिये। उनके अनुसार विद्याभ्यास के लिये सभी विद्यार्थियों को ब्रह्मचारी होना चाहिये ताकि वे संयम, नियमन और सदाचार से रहें और अपना कर्तव्य पूरा करें। विद्यार्थी में चरित्र बल ,शारीरिक बल, आत्मिक बल और बौद्धिक बल होना चाहिये तभी वह अपने मार्ग पर स्वतंत्र विचारक एवं कार्यकर्ता के रूप में आगे चल सकता है। गाँधीजी ने विद्यार्थियों की वैयक्तिकता पर बल दिया है तथा व्यक्ति को सर्वोच्च तथ्य स्वीकार किया है। उन्होंने कहा भी है कि "मैं वैयक्तिक स्वतंत्रता को बहुत महत्व देता हुँ।" इसलिये विद्यार्थी को स्वतंत्र और अच्छे वातावरण में बिना रोकटोक के कार्य करना चाहिये और सभी प्रकार के विकास का प्रयत्न करना चाहिये।

गाँधीजी बच्चें को उसके वैयक्तिक विकास की पूरी -पूरी छूट देते थे पर उसके सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास को दृष्टि में रखते हुये । गाँधीजी प्रारम्भ से ही बच्चों में शारीरिक ,मानसिक ,बौद्धिक और आध्यात्मिक बल का विकास करने और उन्हें आत्म निर्भर बनाने पर बल देते थे। उनके विचार से ऐसा ही व्यक्ति अपना और संसार का भला कर सकता है।

विद्यार्थी को अनुशासित, विनयी, समाज एवं देश सेवी ,शान्त अहिंसात्मक और जिज्ञासु होना चाहिये तभी वह विद्या लाभ कर सकता हैं। विद्यार्थियों की शक्ति में गाँधीजी को असीम विश्वास था क्योंकि उनके सभी कार्यों मे विद्यार्थियों ने पूरा साथ दिया था और देश में क्रान्ति मचाई थी जैसा कि देश की स्वतंत्रता के लिये किये गये सत्याग्रह संग्रामों के इतिहासों से पता चलता हैं। अतः गाँधीजी विद्यार्थियों को एक ओर विद्या ग्रहण करने के लिये तो दूसरी ओर देश सेवा के लिये त्याग तपस्या का जीवन बिताने को कहते है और इस सबका आधार वह चरित्र शिक्षा बताते है। गाँधीजी ने कहा था कि " विद्यार्थियों को अपने भीतर खोजना चाहिये और अपने व्यक्तिगत

चरित्र की देखभाल करनी चाहिये क्योंकि बिना चरित्र के शिक्षा किस काम की ''

महात्मा गाँधी के शिक्षक सम्बन्धी विचार :-

शिक्षक के सम्बन्ध में आदर्शवादी विचार गाँधीजी ने दिये है।यंग इंडिया के 6.8.25 में उन्होंने कहा है- अध्यापक कैसे हों इस सम्बन्ध में मैं पुराने विचारो को मानने वाला हूँ कि उन्हें अध्यापन -कार्य के लिये अपने अनिवार्य प्रेम के कारण ही करना चाहिये और इस कार्य से अपने जीवन-निर्वाह के लिये जितना आवश्यक हो उतना ही लेकर सन्तुष्ट रहना चाहिये।

गाँधीजी की दृष्टि से अध्यापक को समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुँज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिये। उनकी दृष्टि से इस व्यवसाय को केवल व्यवसाय के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी आदर्श नही हो सकता है। एक अध्यापक आदर्श तभी हो सकता है जब वह इस व्यवसाय को सेवा-कार्य के रूप में स्वीकार करें।

गाँधीजी के विचारानुकूल शिक्षा की बहुत कुछ सफलता शिक्षकों पर निर्भर है। अतएव शिक्षक ऐसे होने चाहिये जो मानवीय गुणों से युक्त हों, शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, सहानुभूति एवं श्रम का पुजारी होना चाहिये। शिक्षक को चरित्रवान, कर्तव्यनिष्ठ, धार्मिक ,पवित्रात्मा, मिलनसार, संयमी, क्षमाशील तथा क्रियाशील होना चाहिये। उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता, जिज्ञासु, विनोदप्रिय बड़ी आंकाक्षाओं वाला, सभी समस्याओं को हल करने की क्षमता वाला ,उसे अपने कामों की कभी उपेक्षा या उदासीनता नही होना चाहिये बल्कि लगातार काम करते रहना चाहिये। तभी वह विद्यार्थियों का आदर्श और अनुकरणीय हो सकता है। अध्यापक को विद्यार्थियों के मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिय। उसकी योग्यता, रूचि, आवश्यकता और समस्या को वह जाने और उन्हें आगे बढ़ाने के लिये सहायता, परामर्श तथा प्रोत्साहन दें।

शिक्षक को स्थानीय परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो जिससे कि वे स्थानीय व्यवसायों, हस्त कार्यों एवं उद्योग धन्धों का शिक्षा के लिये सफलता पूर्वक उपयोग कर सकें। गाँधीजी के कथानुसार शिक्षकों को बालकों का विश्वासपात्र बन जाना चाहिये और उन्हें अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण रूप से निभाने का प्रयास करना चाहिये। यद्यपि गाँधीजी अध्यापक केन्द्रित शिक्षा मे विश्वास नही करते थे परन्तु वे शिक्षक को बालक का मित्र ,परामर्शदाता एवं पथ-प्रदर्शक मानते थे और यह चाहते थे कि वे मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक में समस्त मानवीय गुणों का विकास करें ।

इस प्रकार अध्यापक का कार्य एक प्रकाश स्तम्भ, एक संकेत बोर्ड ,एक सन्दर्भ पुस्तक, एक शब्द कोष, एक द्रावक, एक मिश्रण प्रक्रिया को गति देने वाले के रूप में होता है। शिक्षक का प्रभाव केवल कक्षा में ही नहीं प्रत्यत उसके बाहर भी देखा जाता हैं गाँधीजी का विचार है कि अध्यापक को कक्षा के बाहर भी विद्यार्थियों का ध्यान रखना चाहिये।

महात्मा गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :-

गाँधीजी के विचार से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति को उन्होंने बड़े व्यापक अर्थ में लिया है। वे पहले शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राजनैतिक मुक्ति की बात करते थे और फिर आत्मिक मुक्ति की। उनका तर्क था कि जब तक मनुष्य को शारीरिक दुर्बलता मानसिक दासता, आर्थिक अभाव और राजनैतिक गुलामी से मुक्ति नहीं मिलती तब तक वह आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति नहीं कर सकता। यही कारण है कि वे शिक्षा द्वारा मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा का उच्चतम विकास करना चाहते थे।

शिक्षा के सही उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक गुर्णो की अभिव्यक्ति हैं। उनके अनुसार ज्ञान के साथ कर्म का तथा विचार के साथ आचरण का समन्वय होना चाहिये । शिक्षा और उसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में गाँधीजी ने जो विचार व्यक्त किये है वे निम्नलिखित हैं-

(क) पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य :-

गाँधीजी भारतीय आदर्शवादी दार्शनिक परम्परा का अनुकूलन अवश्य कर रहे थे किन्तु वह व्यवहारिकता के विरोधी भी न बन सके। अतः शिक्षा में अन्तिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर और आत्मानुभूति के ज्ञान के महत्व के साथ ही तत्कालीन प्रमुख तथ्य जीविकोपार्जन, चरित्र निर्माण तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण को भी महत्ता प्रदान की और इस प्रकार शिक्षा के दोंनो पक्षों का प्रबल समर्थन करके शिक्षा में दोंनो ही उदद्श्यों को मान्यता दी। आधुनिक शिक्षा आत्मा की ओर से मुँह फेर लेना चाहती है फलस्वरूप आत्मशक्ति की सम्भावनायें हमारा ध्यान आकर्षित करने की अपेक्षा परिवर्तनशील भौतिक शक्तियों पर केन्द्रित हो रही है, अतः आवश्यकता है। उच्चतम् उदद्श्य आत्मा की प्राप्ति की।

यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि गाँधीजी बालक का सर्वांगीण विकास करके व्यक्ति की महत्ता को बनाये रखने के साथ ही उसे समाज, राष्ट्र और विश्व के लिये

तैयार करना चाहते थे। शिक्षा के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य का समन्वय करते हुये गाँधीजी ने कहा–

" मैं वैयक्तिक स्वतंत्रता को महत्व देता हूँ पर आप यह न भूलें कि मनुष्य मुख्य रूप से एक सामाजिक प्राणी हैं। वह समाज की आशाओं तथा इच्छाओं के अनुरूप अपने निजत्व को ढालकर वर्तमान अवस्था तक पहुँचा है।"

गाँधीजी की 'बेसिक शिक्षा' उनके विचारों का एक साकार प्रदर्शन है।आपके विचारों में "क्रिया एवं रचनात्मक कार्य " शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके अतिरिक्त केवल सूचना और साहित्य ज्ञान ही शिक्षा का लक्ष्य न मानकर रचना, उपकरणों के प्रयोग ,प्रकृति से सानिध्य, अभिव्यक्ति और क्रिया आदि को शिक्षा मानते है। बालक का ऐसा सामंजस्यपूर्ण विकास जो उसे गीता में उल्लिखित 'योग मुक्त या स्थित प्रज्ञ ' के आदर्श तक पहुँचा दे।

(ख) चरित्र –निर्माण का उद्देश्य :–

तात्कालिक उद्देश्यों को गाँधीजी ने जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने सबसे अधिक महत्व चारित्रिक विकास को दिया है।गाँधीजी चरित्र बल के महत्व को जानते थे। वे शिक्षा द्वारा इसके विकास पर बल देते थे। एक उत्तम चरित्र में वे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह और निर्भयता–इन गुणों का होना आवश्यक समझते थे। उन्होंने लिखा है कि–

" विद्यार्थियों को अपने भीतर खोजना चाहिये और अपने निजी चरित्र की रक्षा करना चाहिये, क्योंकि बिना चरित्र के शिक्षा किस काम की और बिना प्रारम्भिक व्यक्तिगत पवित्रता के चरित्र किस काम का होता हैं।"

गाँधीजी के लिये "विद्यालय चरित्र निर्माण के लिये उद्योग शालायें हैं।" उन्होंने इसीलिये दृढ़ता के साथ कहा है कि " सभी ज्ञान का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिये।" इस चरित्र निर्माण को उन्होने प्रथम स्थान दिया हैं।

उनका कथन है कि " सच्ची शिक्षा साहित्यिक प्रशिक्षण में नहीं है वरन् चरित्र निर्माण है.....अतः समस्त ज्ञान का उद्देश्य होना चाहिये चरित्र निर्माण। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है, "मैंने हदय की संस्कृति या चरित्र –निर्माण को सदा प्रथम स्थान दिया है। मैंने चरित्र–निर्माण को शिक्षा की उपयुक्त आधारशिला माना है।" इस चरित्र–निर्माण में उन्होंने साहस

,बल, सद्गुण, स्वार्थहीनता, सहयोग, प्रेम आदि के विकास पर ध्यान दिया है।

(ग) जीविकोपार्जन का उद्देश्य :-

आर्थिक अभावों से मुक्ति पाने के लिये गाँधीजी शिक्षा के व्यवसायिक उद्देश्य पर बल देते थे। गाँधीजी शिक्षा में आत्म निर्भरता की भावना का समावेश चाहते थे। उसके लिये शिक्षा में हस्तकला को माध्यम बनाया। विद्यार्थियों को खुद कुछ वैसा काम करते रहना चाहिये, जिससे आर्थिक प्राप्ति हो और इस तरह स्कूल तथा कालेज स्वावलंबी बनें। औद्योगिक तालीम को अनिवार्य बनाकर ही वैसा किया जा सकता है। विद्यार्थियों को साहित्यिक तालीम के साथ-साथ औद्योगिक तालीम भी मिलना चाहिये, इस आवश्यकता के सिवा और आजकल इस बात का महत्व अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है- कि हमारे देश में तो औद्योगिक तालीम की आवश्यकता शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने के लिये भी है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब हमारे विद्यार्थी श्रम का गौरव अनुभव करना सीखें और हाथ-उद्योग के अज्ञान को अप्रतिष्ठा का चिन्ह माना जाने लगे।

गाँधीजी का कथन था कि-

" आपको इस विश्वास के साथ कार्य आरम्भ करना है कि भारत के ग्रामों की आवश्यकता को देखते हुये हमें अपनी शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये आत्मनिर्भर बनाना चाहिये।"

उन्होंने इस शिक्षा के द्वारा ग्राम तथा शहरों के मध्य एक स्वस्थ्य नैतिक सम्बन्ध की कल्पना की " जो विभिन्न वर्गों के वर्तमान दूषित सम्बन्धों की बुराईयों को दूर करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी। यह गाँवों की व्यावसायिक अवनति को रोकेगी और एक अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नींव रखेगी।"

(घ) सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य :-

गाँधीजी ने जीविकोपार्जन के उद्देश्य के साथ -साथ सांस्कृतिक विकास को भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना है। उनके विचार में शिक्षा का एक उद्देश्य सांस्कृतिक विकास भी होना चाहिये । उन्होंने लिखा है कि-"संस्कृति आधार है।" संस्कृति बाह्य् और आन्तरिक दोंनो होती है। संस्कृति का सम्बन्ध गाँधीजी आत्मा से जोड़ते है जिससे संस्कृति व्यक्ति के सभी व्यवहारों मे प्रकट होती है। उनका कहना है कि प्रायः दम्भ और पक्षपात के कारण हमारी दृष्टि दूषित हो जाती है और हम चीजों को उचित ढंग से नहीं देख पाते है। इसलिये शिक्षा

का कार्य यह होना चाहिये कि वह हमारी आत्मा पर से ऐसा बोझ हटा दे जिससे वह स्वाभावतः ऊपर उठती जाये। अस्तु यह उचित है कि हम व्यक्ति को अच्छे संस्कारों से पूर्ण करें। यह तभी संभव है जब कि शिक्षा का लक्ष्य संस्कृति का ज्ञान देना एवं व्यक्ति में उसका विकास करना हो।गाँधीजी के विचार में शिक्षा का यह महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

गाँधीजी व्यवसाय को जीवन के साध्य के रूप में कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने संस्कृति की ओर ध्यान दिया। कस्तूरबा बालिकाश्रम नई दिल्ली में 22 अप्रैल,सन् 1946 को व्यख्यान देते हुये गाँधीजी ने कहा था" मैं शिक्षा के साहित्यिक पक्ष की अपेक्षा सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ ।" संस्कृति प्रारम्भिक वस्तु एवं आधार हैं जिसे बालिकाओं को यहाँ से ग्रहण करना चाहिये। इस दृष्टि से गाँधीजी शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने संस्कृति को जीवन का आधार माना और इस बात पर बल दिया कि मानव के प्रत्येक व्यवहार पर संस्कृति की छाप होनी चाहिये।

(इ) वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्य :-

गाँधीजी व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक, दोंनो प्रकार के विकास पर बल देते थे।आत्मिक विकास वैयक्तिक विकास की कोटि में ही आता है। पर यह तब तक सभंव नहीं होता जब तक मनुष्य का सामाजिक विकास नही हो जाता है। अतः शिक्षा के द्वारा इन उद्देश्यों की प्राप्ति करनी चाहिये । वे वैयक्तिक स्वतंत्रता का सदा आदर करते थे किन्तु व्यक्ति को वे सामाजिक प्राणी के रूप में देखते थे । उनका विचार था कि व्यक्तित्व का विकास शून्य में असम्भव है।

गाँधीजी शिक्षा को व्यक्ति एवं समाज को ऊँचा उठाने का साधन मानते थे, इसलिये उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जिसमें सभी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत विशेषता नष्ट न करते हुये पूरे समुदाय की भलाई के लिये अपना कार्य करें। इसलिये उनके विचार में "शिक्षा का उद्देश्य केवल अच्छे व्यक्ति ही तैयार नही करना होता है, बल्कि सामाजिक तौर पर ऐसे स्त्रियाँ एवं पुरूष तैयार करना होता है, जो समाज, जिसमे वे रहते हैं, में अपना स्थान और उनके प्रति अपना कर्तव्य समझते हैं।"

इससे स्पष्ट है कि वह अच्छे व्यक्ति और उनके द्वारा बना हुआ समाज शिक्षा के लिये चाहते थे। अस्तु उन्होंने जनतान्त्रिक दृष्टिकोण से व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास का लक्ष्य शिक्षा के सामने रखा है तथा दोनो का समन्वय किया है।

इस दृष्टि से उन्होंने व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी माना और यह बतलाया कि उसका विकास केवल सामाजिक जीवन के माध्यम से ही हो सकता है। उन्होंने शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य आत्मानुभूति बतलाया है और इस बात पर बल दिया कि आत्मानुभूति में व्यक्ति तथा समाज दोंनो का विकास निहित है क्योंकि आत्मानुभूति समाज में रहकर, समाज कल्याण के कार्यों द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार गाँधीजी ने दोंनो उद्देश्यों में सामंजस्य स्थापित किया परन्तु वे अनियन्त्रित वैयक्तिकता तथा अति प्रकार के सामाजिक नियन्त्रण का विरोध करते थे और उन दोंनो के मध्य का मार्ग अपनाने के समर्थक थे। उनका कहना था कि समाज कल्याण की दृष्टि से अपनाया हुया सामाजिक नियंत्रण व्यक्ति तथा समाज दोंनो का विकास करता है। तभी तो देश में अच्छे समाज सेवी एवं नागरिक बन सकते है अतः शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य उनके सामने था, अच्छी नागरिकता का विकास। सामाजिक विकास के उद्देश्य में राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास को भी ध्यान में रखा गया है।

महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षण विधि :-

गाँधीजी ने जिस नवीन शिक्षा योजना का विचार जनता के समक्ष रखा उनमें शिक्षण-विधि नितान्त नवीन है। प्रचलित शिक्षण-विधि में अध्यापक एवं छात्र में कोई सम्पर्क नही रहता है। अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है,छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप मे बैठे रहते हैं। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण-पद्धति के विपरीत गाँधीजी ऐसी शिक्षण प्रक्रिया को लाना चाहते थे। जिसमें छात्र और शिक्षक के बीच खाई कम हो और छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में न होकर सक्रिय अनुसंधानकर्ता, निरीक्षणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता के रूप में हो।

शिक्षण-विधि मे गाँधीजी महत्वपूर्ण परिवर्तन चाहते थे। इस परिवर्तन की दिशा में वे यह चाहते थे कि शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो। गाँधीजी ने शिक्षा की विधि के सम्बन्ध में कुछ विचार यत्र-तत्र प्रकट किये हैं। उनके आधार पर निम्न विधियों का प्रयोग शिक्षा में होना चाहिये।

गाँधीजी धार्मिक होने के साथ -साथ बड़े व्यवहारिक भी थे। उन्होंने मनोविज्ञान का अध्ययन तो नहीं किया था पर ऐसा लगता है कि वे व्यवहारिक मनोविज्ञान के पंडित थे।शिक्षण के क्षेत्र में वे सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे। उनके अनुसार करके सीखना और स्वयं के अनुभव से सीखना ही उत्तम सीखना होता है। गाँधीजी ने क्राफ्ट को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया है। और इसकी शिक्षा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान देने से पूरी नहीं होती प्रत्युत उन्हें करके ही सीखा

जा सकता है। इस प्रकार ''क्रियात्मक विधि ''से क्राफ्ट की शिक्षा दी जाये जिसमें सैद्धान्तिक एवं निर्माणात्मक ज्ञान मिले।क्रियात्मक विधि का दूसरा रूप खेल द्वारा शिक्षा विधि है। इसके साथ-साथ ही प्रयोग किया जाना चाहिये। रचनात्मक कार्य करते हुये प्रत्येक व्यक्ति को 'प्रयोग, प्रदर्शन एवं निरीक्षण' विधियों की सहायता भी लेना पड़ती है। अस्तु इन विधियों का प्रयोग भी शिक्षा में करना चाहिये।

''मौखिक विधि '' के प्रयोग की संस्तुति गॉधीजी द्वारा दी गई है। मौखिक विधि के अन्तर्गत कई विधियों को सम्मिलित करते हैं, जैसे 'प्रश्नोत्तर विधि, तर्क विधि, व्यख्यान विधि, कथा-कहानी विधि।' क्राफ्ट के साथ अन्य विषयों का ज्ञान देने की बात है जैसे भाषा ,इतिहास, भूगोल आदि। अतः यह आवाश्यक है कि इन विभिन्न विषयों की पढ़ाई के साथ विभिन्न कक्षाओं के अनुसार उपर्युक्त विधियों को यथावश्यकता प्रयोग किया जाये।

''अनुकरण विधि '' के प्रयोग के लिये भी गॉधीजी ने संकेत किया है। गॉधीजी के अनुसार बच्चे अनुकरण से जल्दी सीखते हैं, अतएव माता-पिता और अध्यापक ऐसे आदर्श उपस्थित करें जिनकों बच्चे सहज में स्वीकार कर लें।

''सहयोगी विधि'' का प्रयोग क्राफ्ट की शिक्षा के लिये तो बहुत जरूरी है क्योंकि क्राफ्ट की शिक्षा में अध्यापक एवं विद्यार्थी तथा विद्यार्थी को एक साथ काम करना पड़ता है,अन्यथा शिक्षण कार्य अधूरा होता है। इसके लिये यह आवाश्यक है कि परस्पर सहानुभूति हो तथा अधिक से अधिक सहयोग दिया जाये।

''सह सम्बन्ध की विधि'' के लिये बेसिक शिक्षा में अधिक जोर दिया गया है। क्राफ्ट शिक्षा को केन्द्र बनाया जाये और अन्य विषयों को उससे सह सम्बन्धित कर दिया जाये। इसका तात्पर्य यह है कि प्रमुखतः क्राफ्ट को ध्यान में रखकर ज्ञान दिया जाये तथा भाषा ,विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सभी विषय क्राफ्ट के सन्दर्भ में ही पढ़ाया जायें।

अन्त में शिक्षा देने के लिये 'संगीत के प्रयोग' के लिये गॉधीजी का विचार है। उन्होंने 'हरिजन' पत्र में लिखा था कि शारीरिक ड्रिल,हस्त कौशल आदि में संगीत का प्रयोग किया जाये जिससे शिक्षा में रूचि उत्पन्न हो सके और उसकी गुरूता दूर हो सके। नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा के लिये भजन गँवाए जायें। इससे अनुशासन भी रखा जा सकता है।

''श्रवण,मनन'' और ''निदिध्यासन'' की प्राचीन विधियों में भी

जा सकता है। इस प्रकार ''क्रियात्मक विधि ''से क्राफ्ट की शिक्षा दी जाये जिसमें सैद्धान्तिक एवं निर्माणात्मक ज्ञान मिले।क्रियात्मक विधि का दूसरा रूप खेल द्वारा शिक्षा विधि है। इसके साथ-साथ ही प्रयोग किया जाना चाहिये,। रचनात्मक कार्य करते हुये प्रत्येक व्यक्ति को 'प्रयोग, प्रदर्शन एवं निरीक्षण' विधियों की सहायता भी लेना पड़ती है। अस्तु इन विधियों का प्रयोग भी शिक्षा में करना चाहिये।

''मौखिक विधि '' के प्रयोग की संस्तुति गाँधीजी द्वारा दी गई है। मौखिक विधि के अन्तर्गत कई विधियों को सम्मिलित करते हैं, जैसे 'प्रश्नोत्तर विधि, तर्क विधि, व्यख्यान विधि, कथा-कहानी विधि।' क्राफ्ट के साथ अन्य विषयों का ज्ञान देने की बात है जैसे भाषा ,इतिहास, भूगोल आदि। अतः यह आवाश्यक है कि इन विभिन्न विषयों की पढ़ाई के साथ विभिन्न कक्षाओं के अनुसार उपर्युक्त विधियों को यथावश्यकता प्रयोग किया जाये।

''अनुकरण विधि '' के प्रयोग के लिये भी गाँधीजी ने संकेत किया है। गाँधीजी के अनुसार बच्चे अनुकरण से जल्दी सीखते हैं, अतएव माता-पिता और अध्यापक ऐसे आदर्श उपस्थित करें जिनकों बच्चे सहज में स्वीकार कर लें।

''सहयोगी विधि'' का प्रयोग क्राफ्ट की शिक्षा के लिये तो बहुत जरूरी है क्योंकि क्राफ्ट की शिक्षा में अघ्यापक एवं विद्यार्थी तथा विद्यार्थी को एक साथ काम करना पड़ता है,अन्यथा शिक्षण कार्य अधूरा होता है। इसके लिये यह आवाश्यक है कि परस्पर सहानुभूति हो तथा अधिक से अधिक सहयोग दिया जाये।

''सह सम्बन्ध की विधि'' के लिये बेसिक शिक्षा में अधिक जोर दिया गया है। क्राफ्ट शिक्षा को केन्द्र बनाया जाये और अन्य विषयों को उससे सह सम्बन्धित कर दिया जाये। इसका तात्पर्य यह है कि प्रमुखतः क्राफ्ट को ध्यान में रखकर ज्ञान दिया जाये तथा भाषा ,विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सभी विषय क्राफ्ट के सन्दर्भ में ही पढ़ाया जायें।

अन्त में शिक्षा देने के लिये 'संगीत के प्रयोग' के लिये गाँधीजी का विचार है। उन्होंने 'हरिजन' पत्र में लिखा था कि शारीरिक ड्रिल,हस्त कौशल आदि में संगीत का प्रयोग किया जाये जिससे शिक्षा में रूचि उत्पन्न हो सके और उसकी गुरुता दूर हो सके। नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा के लिये भजन गँवाए जायें। इससे अनुशासन भी रखा जा सकता है।

''श्रवण,मनन'' और ''निदिध्यासन'' की प्राचीन विधियों में भी

गॉंधीजी का विश्वास मिलता है।उनके अनुसार विचार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने कहा है कि 'मेरी दृष्टि में विचार करने की कला सच्ची शिक्षा है' और विचार के लिये श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की आवश्यकता है।

गॉंधीजी ने शिक्षा की जो नवीन योजना भारत के समक्ष रखी उसमें'श्रम'को आध्यात्मिक एवं नैतिक महत्व प्रदान किया गया है। वे शिल्प के द्वारा बालक को गीता में वर्णित निष्काम कर्म के महत्व से परिचित कराना चाहते थे और देश की गरीबी को दूर करने के लिये शिक्षा में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे।

महात्मा गॉंधीजी के अनुसार विद्यालय :-

विद्यालय के सम्बन्ध में गॉंधीजी के अपने विचार है। उनके अनुसार विद्यालय ऐसी कर्मशालायें होनी चाहिये जहॉं अध्यापक सेवाभाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और उनके तथा विद्यार्थियों के संयुक्त प्रयास से उनमें इतना उत्पादन कार्य हो कि वे आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर हों। वे विद्यालयों को सामुदायिक केन्द्र बनाने पर भी बल देते थे। उनका कहना था कि विद्यालयों में समुदाय की विभिन्न क्रियायें होना चाहिये और समुदाय के लोंगो को यहॉं पढ़ने और कार्य करने की सुविधा देना चाहिये। यहॉं रात्रि पाठशालायें लगाकर प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जाये। इस प्रकार एक ओर समुदाय को विद्यालयों के विभिन्न क्रियाकलापों में उनका सहयोग करना चाहिये और दूसरी ओर विद्यालयों को समुदाय के विभिन्न क्रियाकलापों में सहयोग करना चाहिये।इस सम्बन्ध में एम0एस0 पटेल लिखते हैं कि "इसलिये वह चाहते हैं कि हम अपने स्कूलों को समुदायों में वदल दें जहॉं पर विद्यार्थियों की वैयक्तिकता नष्ट न हो बल्कि सामाजिक सम्पर्को और सेवा के अवसरों से विकसित हो।" इस प्रकार शिक्षालय समुदाय -केन्द्र बनें तथा विद्यार्थियों का वहाँ सभी प्रकार से विकास हो।

महात्मा गॉंधीजी के अनुसार अनुशासन :-

चरित्र, ह्रदय की शुद्धता और संयम में विश्वास करने वाले गॉंधीजी के लिये अनुशासन वड़ी चीज है, यह स्वयं सिद्ध होता है। वे स्वयं अनुशासित जीवन बिताते थे तो फिर शिक्षा के क्षेत्र में वह अनुशासन क्यों न लायें। प्रत्येक विद्यार्थी एवं अध्यापक को वह ब्रह्मचारी देखना चाहते थे, परन्तु गॉंधीजी दमनात्मक सिद्धान्त के मानने वाले नहीं थे। वह प्रभावात्मक तथा मुक्तिवादी सिद्धान्त के पोषक थे।

गाँधीजी अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते थे पर उनके अनुसार यह अनुशासन आत्म प्रेरित होना चाहिये। इस अनुशासन की प्राप्ति के लिये वे दमनात्मक विधि का विरोध करते थे। वे तो बच्चों को शुद्ध प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक पर्यावरण में रखने पर बल देते थे।उन्हें विश्वास था कि इस प्रकार के पर्यावरण में बच्चे अनुकरण द्वारा उच्च आदर्शों एवं उच्च आचरण को ग्रहण करेंगे परन्तु यदि फिर भी बच्चे गलत रास्ते पर चलतें हैं तो उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिये अध्यापकों को अपने आत्म बल का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु यह आत्म बल यों ही नहीं आ जाता है। इसके लिये अध्यापकों को स्वयं ब्रह्मचार्य जीवन का पालन करना होता है। वे शिक्षकों से यह आशा करते थे कि शिक्षक अपने आत्म बल तथा आदर्शो से बालका कों प्रभावित करें और बालक अनुकरण द्वारा उच्च आदर्श ग्रहण करें। इस प्रकार गाँधीजी स्वयं नियंत्रण द्वारा आत्मानुशासन को सर्वोच्च मानते थे। आत्मानुशासन के लिये व्रत, उपवास तथा सत्याग्रह का साधन वह प्रयोग करने को कहते है।

गाँधीजी अनुशासन के साथ तर्क को चाहते थे लेकिन ऐसा तर्क व्यर्थ में समय और शक्ति को नष्ट करने वाला न हो जिससे कि विद्यार्थी और स्वयं-सेवक अपने अध यापक तथा जनरल के प्रत्येक अनुदेश पर तर्क करे तथा उसको न माने। प्रत्युत उसे पहले तर्क के द्वारा समझ कर कार्य तुरन्त करना चाहिये, यह गाँधीजी का विचार था।

विनोबा जी द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक अभिकरण :-

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है मनुष्य जिस सामाजिक समूह अथवा संगठ्न का सदस्य होता है। उसी की सामाजिक चेतना में भाग लेता है। शिक्षा की प्रक्रिया को अग्रसर करने वाले इन सामाजिक समूहों अथवा संगठन को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है। शिक्षा एक सप्रयोजन एवं सचेतन प्रक्रिया है। जिसका एक निश्चित उद्देश्य होता है। इसके अलावा शिक्षा समाज एवं व्यक्ति के बीच, शिक्षार्थी और शिक्षक के बीच आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। ऐसी दशा में शिक्षा एक साध्य होती है। जिसकी प्राप्ति का माध्यम साधन कहलाता है। साधन वह सहायक यंत्र होता है। जिससे शिक्षा का उद्देश्य सरलतया प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी दशा में साधन एक महत्वपूर्ण कारक है।

शिक्षा के कार्यो पर ध्यान देने से विदित होता है कि यह आत्मसुधार और सामाजिक सुधार की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जीवन के विभिन्न अंग है जैसे-परिवारिक, नैतिक, धार्मिक, आध यात्मिक, साहित्यिक, कलात्मक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शिष्य सम्बन्धी। इस विचार से शिक्षा के

विभिन्न अभिकरण भी बताये गये हैं। जिससे उस विशेष साधन को प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। ताकि उस विशिष्ठ क्षेत्र में सुधार सम्भव हो सके। उदाहरण के लिये परिवारिक क्षेत्र से सम्बन्धित सुधार के लिये गृह शिक्षा का एक साधन है। समाज में नैतिक जीवन को सुधारने के विचार से समुदाय, जाति, वर्ग और इनसे जुड़े हुये विभिन्न परिषदें हैं। इसी प्रकार धार्मिक और आर्थिक सुधार के लिये चर्च, मन्दिर, मस्जिद, मठ आदि शिक्षा के साधन है।साहित्यिक ,कलात्मक एवं सौन्दर्य सम्वन्धी सुधार के लिये विद्यालय, पुस्तकालय, कलाबीथिका, प्रदर्शनी, नाट्यमण्डली ,सिनेमा, रेडियो आदि साधनों की आवश्यकता होती है। आर्थिक सुधार की दृष्टि से व्यवसाय ,विद्यालय, व्यापार मण्डल, सेवायोजन केन्द्र एवं रोजगार दफ्तर बने हैं। ये भी शिक्षा के साधन है। राज्य नागरिकता और शासन में सुधार के लिये बना है और इसमें भी शिक्षा के कार्यों की पूर्ति होती है। अतएव स्पष्ट है कि जीवन के विभिन्न कार्यों को पूर्णतया सम्पन्न करके उनकी कमियों को सुधारने के लिये शिक्षा के विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है।शिक्षा के अभिकरणों से तात्पर्य ऐसे सामाजिक समूहों एवं संगठनों से होता है जो बच्चों अथवा प्रौढ़ों की शिक्षा में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग करते है।

"समाज ने शिक्षा के कार्यों को सम्पादित करने के लिये अनेक विशिष्ठ संस्थाओं को स्थापित किया हैं। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है।"[1]

(बी0 डी0 भाटिया)

"शिक्षा के अभिकरणों से तात्पर्य उन सभी सामाजिक समूहों और संगठ्नों से होता है जो बच्चों अथवा प्रौढ़ो की शिक्षा में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी भी रूप में सहयोग प्रदान करते है।"

गाँधी जी एवं विनोबा जी ने शिक्षा के अभिकरण, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पाठनविधि एवं अनुशासन को माना हैं। जो कि निम्न प्रकार वर्णित है।

विनोबा जी के अनुसार शैक्षिक अभिकरण :-

शिक्षक :-

---

1. शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक सिद्धांत बी0 डी 0 भाटिया

विनोबा जी के अनुसार शिक्षक में कम से कम तीन गुणों की आवश्यकता रहती हैं। एक गुण जिसका उल्लेख श्री त्रिगुण सेन ने किया है, यह है कि विद्यार्थियों पर उनका प्रेम होना चाहिये, वात्सल्य होना चाहिये, अनुराग होना चाहिये। यह शिक्षको का बहुत बड़ा गुण है। इसके बिना कोई भी व्यक्ति शिक्षक बन ही नही सकता है। शिक्षक का दूसरा बड़ा गुण यह है कि उसे नित्य निरन्तर अध्ययनशील होना चाहिये। रोज नया-नया अध्ययन जारी रहे और ज्ञान की वृद्धि सतत् होती चली जाये इस प्रकार से उसे ज्ञान का समुद्र बनना है। उसे ज्ञान की उपासना करनी हैं।

यह दो गुण शिक्षक में सबसे पहले होने चाहिये। अगर आप में वात्सल्य हैं और ज्ञान नहीं है तो आप उत्तम माता बन सकते है माताओं में वात्सल्य भरा रहता है, पर ज्ञान नहीं। परन्तु कुछ मातायें ऐसी भी होती है। जिन्हें ज्ञान भी होता है। कपिल महा मुनि की माता ऐसी ही हो गई थी। जिसे कपिल महामुनि ने उपदेश दिया ऐसी मातायें और भी होंगी लेकिन यों सामान्यतया माताओ से ज्ञान की अपेक्षा हम नहीं करते, प्रेम और वात्सल्य की करते है। आप में अगर वात्सल्य है, ज्ञान नहीं है तो आप प्रवृति परायण बन सकते है। आप में प्रेम नहीं हैं, वात्सल्य नहीं है, तटस्थता है और ज्ञान की साधना आप करते है तो आप तत्वज्ञानी बन सकते है। देश को आपका बहुत बड़ा लाभ मिल सकता हैं। लेकिन आप गुरू नहीं बन सकते हैं। निरन्तर चिन्तनशीलता, ज्ञान की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे तथा शिष्यों के लिये अत्यन्त वात्सल्य और प्रेम, ये दो गुण हों। दो गुण तो गुरू में ही होना चाहिये।

शिक्षक में एक तीसरा गुण भी होना चाहिये। इन दिनों विद्यार्थियों के दिमाग पर राजनीति का बड़ा आक्रमण हैं और ये विद्यार्थियों और शिक्षको के हाथ में है। यदि शिक्षक राजनिति में रंगे हों और राजनिति का वरदहस्त उनके सिर पर पड़ा हो तो समझना चाहिये, गंगा मैया खुद ही शरण में गयी। लकिन समुद्र ने उसे स्वीकार नहीं किया। राजनीति के ख्याल से ही सोचा समझना चाहिये, कि शिक्षकों का बहुत बड़ा अधिकार है। इसलिये वे सब राजनिति से मुक्त रहें शिक्षण द्वारा मानव का पूर्ण गुण विकास अपेक्षित है। शिक्षक और विद्यार्थी दोंनो का पूर्ण विकास होना चाहिये। अगर वे केवल ज्ञान या कर्मकुशलता या दोंनो प्राप्त करें तो भी वह शिक्षण एकांकी ही होगा। कारण कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति तो अनेक गुणों में से केवल दो गुण हैं जब कि शिक्षण से हमें सभी गुणों का विकास अपेक्षित है।

गुण विकास करते रहने से शिक्षकों के जीवन में अपने आप शिक्षा

की किरण फैलेगी और उन किरणों के प्रकाश से आसपास के वातावरण का काम अपने आप हो जायेगा। इस प्रकार का शिक्षक स्वतः सिद्ध शिक्षण केन्द्र है और उसके समीप रहना ही शिक्षा पाना है। शिक्षण यानि सत्संगति। इससे भिन्न शिक्षण की व्याख्या हो ही नहीं सकती। मनुष्य को पवित्र जीवन बिताने का ध्यान रखना चाहिये। शिक्षण जीवन से बाहर नहीं दिया जा सकता है।

इस प्रकार शिक्षक में इन सभी गुणों का होना अत्यावश्यक है। इन गुणों के द्वारा ही वह अच्छा शिक्षक बन सकता है। शिक्षक को किसी चीज मे विश्वास होना चाहिये तो वह ज्ञान में होना चाहिये। शंकराचार्य से पूछा गया कि आप जिनको ज्ञान देते हैं। वे यदि आपका उपदेश नहीं समझेंगे तो आप क्या करेंगे तो उन्होंने कहा दुबारा समझाऊँगा। तीसरी बार समझाँऊगा और उससे भी अधिक बार समझाता रहूँगा। मेरा शस्त्र ही समझाना है। जब तक वह नहीं समझता तव तक मैं समझाता रहूँगा।

इस प्रकार शिक्षक को ज्ञान समुद्र होना है। उसको ज्ञान की उपासना करनी है । अगर शिक्षक में वात्सल्य है और ज्ञान नहीं तो वह उत्तम गुरू नहीं बन सकते है। इसलिये गुरू के लिये निरन्तर चिन्तनशीलता, ज्ञान वृद्धि के साथ साथ अपने शिष्यों के लिये अत्यन्त वात्सल्य और प्रेम ये गुण अवश्य होना चाहिये।

विनोबा जी के अनुसार विद्यार्थी :-

विद्यार्थियों को निरन्तर सेवा परायण रहना चाहिये। बिना सेवा के ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। महाभारत में यक्ष प्रश्न की कहानी मे एक प्रश्न यह भी पूछा गया कि ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, तो जबाव मिला कि ज्ञानं वृद्धसेवया वृद्धों की सेवा से ज्ञान प्राप्त होता हैं। वृद्धों के पास अनुभव होता है और जो सेवापरायण होते है।उनके सामने वृद्धों का दिल खुल जाता है। और वे अपना कुल सारसर्वस्व दे देते हैं।इसलिये विद्यार्थियों को वृद्धों की माता-पिता की दीनदुखी की ,समाज की सेवा करनी चाहिये।यह नहीं समझना चाहिये कि हम सेवा करते रहेंगे तो अध्ययन कैसे होगा ? लेकिन यह विश्वास होना चाहिये कि सेवा से ही ज्ञान प्राप्त होता है। सेवा से बढ़कर कोई विद्यापीठ नहीं हो सकता है।

विद्यार्थियों को अपना दिमाग स्वतंत्र रखना चाहिये। पूर्ण स्वतंत्रता का अगर किसी को अधिकार है, तो वह सबसे ज्यादा विद्यार्थियों को हैं। बिना श्रद्धा के विद्या नहीं मिलती। इसलिये श्रद्धा रखनी ही चाहियें। पर श्रद्धा के साथ-साथ बौद्धिक स्वतंत्रता की भी उतनी आवाश्यकता है। बहुत लोंगो को लगता है कि श्रद्धा और बद्धि में विरोध है। पर यह विचार

गलत है।जैसे कान और आँख अलग -अलग शक्तियाँ है और दोंनो का आपस में विरोध नहीं हैं। उसी तरह श्रद्धा और बुद्धि की बात है। माता बच्चे को चाँद दिखाती है और कहती है। देखो बेटा यह चाँद है। अगर माँ पर बेटे के श्रद्धा न रही और उसे शंका हुई तो उसे ज्ञान नहीं होगा। इसलिये ज्ञान प्राप्ति के लिये श्रद्धा एक बुनियादी चीज है। ज्ञान का आरम्भ श्रद्धा से ही होता हैं लेकिन ज्ञान की परिसमाप्ति बुद्धि में हैं। श्रद्धा से ज्ञान का आरम्भ होता है और समाप्ति स्वतंत्र चिन्तन से होती है। इसलिये विद्यार्थियों को अपने स्वतंत्र चिन्तन का अधिकार नहीं खोना चाहिये।

विद्यार्थियों में " मैं विश्वमानव हूँ "[1] ऐसी ही वृति होना चाहिये। आज हम विज्ञान युग में जी रहे हैं इसलिये नयी पीढ़ी को अपना दिल बड़ा बनाना चाहिये। उत्तम विद्या प्राप्त करके आज के युग में अनुकूल अध्ययन सम्पन्न होना होगा और अपना दिल बड़ा बनाना होगा। विद्यार्थियों का एक कर्तव्य यह भी है कि वे अपने ऊपर नियंत्रण रखें स्वतंत्रता का अधिकार वही अपने हाथ में रख सकेगा, जो अपने ऊपर नियंत्रण रखेगा जो संकल्प मैं करूँगा उस पर मैं जरूर अमल करूँगा ऐसी निष्ठा होना चाहिये। इस वास्ते देह, मन, बुद्धि पर काबू चाहिये। विद्यार्थियों को अपनी संकल्प शक्ति दृढ़ करने की प्रतिज्ञा करना चाहिये। ऐसी निश्चिय शक्ति के लिये इन्द्रियों पर काबू पाना बहुत जरूरी है। विद्यार्थियों में विद्याभ्यास के समय तन्मयता होनी चाहिये। विद्यार्थियों को अस्वाद व्रत के रूप में नहीं सहज ही साध्य होना चाहिये। यह तन्मयता की कसौटी है। अस्वाद व्रत और कसा हुआ जीवन विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है। विद्यार्थियों के लिये पाँच बातें अपने जीवन में जरूर लागू करना चाहिये। विनोबा जी ने विद्यार्थियों के लिये यह अत्यावश्यक बताई है।

(1) हर रोज कम से कम एक घण्टा शारीरिक परिश्रम करना चाहिये और उससे जो आय हो वह समाजोपयोगी काम में खर्च करना चाहिये।इससे परिश्रम की महता ख्याल में आयेगी और समाज को प्रत्यक्ष में कुछ न कुछ देने की आदत पड़ेगी।

(2) छुट्टियों में इर्दगिर्द के गाँवो में जाकर सफाई या अन्य सामाजिक सेवा करनी चाहिये।

(3) विद्यार्थी ऐसा संकल्प करेंगे कि अपने से भिन्न धर्म, भाषा, जाति अथवा पथं के किसी व्यक्ति को अपना मित्र बनायेंगे। इस प्रकार विभिन्न समुदाय के साथ मित्रता करने से सब प्रकार के भेद खत्म करने का रास्ता मिल जायेगा।

(4) विद्यार्थियों को अच्छी हिन्दी सीखनी चाहिये ताकि भारत के किसी भी कोने में वह अपना विचार

1. शिक्षा विचार - विनोबा

अच्छी तरह रख सकेगा। अन्य प्रान्तों के साथ सम्बन्ध बनाने का यह एक सबल माध्यम है।

(5) विद्यार्थियों को सुबह शाम आधा घण्टा व्यायम करना चाहिये। जल्दी सोकर जल्दी उठना यह जीवन का सूत्र बनना चाहिये। रात में घण्टों तक अभ्यास करने के बदले ब्रह्म मुहूर्त में चंद घण्टे अभ्यास करना ज्यादा अच्छा है।

विद्यार्थियों में इन सभी गुणों का होना जरूरी है। जिससे देश में कुशल व्यक्ति उत्पन्न हो सकें।

विनोबा जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार उनके शिक्षा उद्देश्य सम्बन्धी विचार उनके निजी अनुभवों पर आधारित है। भूदान व सर्वोदय का संदेश लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुये वे एक छात्र रहते है और स्थान-स्थान पर एकत्र जनता को इसके महत्व को समझाते हुये वे एक शिक्षक का कार्य करते हैं। अतः उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार अनुभव से परे व अधिक पूर्ण हैं।

शिक्षा का प्रथम उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार प्रत्येक छात्र को अपनी निजी योग्यता एवं परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन में समर्थ होना चाहिये। यदि वह ऐसा न बन सके तो वह समाज के लिये अभिशाप सिद्ध होगा। अतः शिक्षा का मुख्य ध्येय प्रत्येक छात्र को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना है। छात्रों को अध्ययन में भी आत्म निर्भर होना चाहिये। इसके लिये छात्रों में निजी प्रयोंगो तथा अन्य लोंगो के अनुभवों, दोंनो से ज्ञान प्राप्ति की प्रवृति विकसित करना चाहिये। किसी भी छात्र के लिये 15 वर्ष की अवस्था के पश्चात् अध्यापक की सहायता पर निर्भर करना, अयोग्यता की बात होगी। इस आयु के पश्चात् छात्रों को स्वतः अध्ययन, ऊँचे स्तर की पुस्तकें पढ़बा, नई भाषायें ,नई बात सीखना चाहिये व ज्ञान वृद्धि करना चाहिये। जिस प्रकार भूमि को खोदकर पानी निकाला जाता हैं। उसी प्रकार छात्रों में लगन और परिश्रम द्वारा ज्ञान की खोज की प्रवृति होनी चाहिये।

शिक्षा का द्वितीय उद्देश्य :-

विनोबा जी के अनुसार शिक्षा का व्यक्ति एवं समाज दोंनो के प्रति

कुछ अर्वाचीन भारतीय शिक्षा ज्ञानी - आचार्य विनोबा

दायित्व हैं। व्यक्ति के प्रति दायित्व इसका प्रमुख उद्देश्य है। व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना तथा समाज के प्रति दायित्व में समाज ही नहीं वरन् देश व विश्व को निर्भय एवं सुरिक्षत बनाना है। एक अहिंसक समाज में शिक्षा ही सुरक्षा का साधन होती हैं। अतः हमारा प्रमुख दायित्व एक ऐसी शिक्षा पद्धति की खोज करना है जो समाज में प्रेमभाव व शान्ति स्थापित करने में सहायक है।

शिक्षा का तृतीय उद्देश्य :-

विनोबा भावे के अनुसार किसी वस्तु अथवा विषय की जानकारी के लिये केवल पुस्तक ज्ञान पर्याप्त नहीं हैं। पुस्तक ज्ञान की तुलना उन्होंने एक ऐसे आवरण से की है जो विषयवस्तु का केवल एक रेखाचित्र ही प्रस्तुत करता है। बिना कार्य अथवा आभास के प्राप्त ज्ञान अपूर्ण रहता है। वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के लिये दोंनो को संयुक्त करना समीचीन हैं। उन्होंने इन लोंगो की कड़ी भर्त्सना की है जो बेसिक विद्यालयों के हस्त कला कार्यक्रमों पर व्यय होने वाले दो तीन घण्टों को व्यर्थ बताते है।

विनोबा भावे ने पुस्तक ज्ञान व कार्य अभ्यास को अलग करने के कारण उत्पन्न सामाजिक प्रभाव की भी विवेचना की है। पुस्तक ज्ञान से शून्य व कार्य अभ्यास से युक्त एक श्रमिक का अधिकतम पारिश्रमिक, कार्य अभ्यास से शून्य व पुस्तक ज्ञान से युक्त व्यक्ति की अपेक्षाकृत बहुत कम है। पुस्तक ज्ञान व कार्य अभ्यास का वर्गीकरण ही इस बड़ी आर्थिक असमानता के लिये उत्तरदायी हैं। अतः इस प्रकार के वर्गीकरण को दूर करके इस सामाजिक कुप्रथा को समाप्त करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये।

शिक्षा का चतुर्थ उद्देश्य :-

विनोबा भावे का विश्वास है कि कोई व्यक्ति प्रकृति से जितना ही दूर रहता है। वह उतना ही असन्तोष और चिन्ता से युक्त रहता है। जीवन में शान्ति के लिये प्रकृति से निकट सम्पर्क रखना नितान्त आवाश्यक है। शान्तिमय जीवन का स्तर जीवन यापन के ढंग व प्राकृतिक वातावरण से अलग होकर सन्तुष्ट और प्रसन्न नहीं रह सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का उस मिट्टी से उचित सम्पर्क होना आवाश्यक है। जिस पर उसने जन्म लिया और बड़ा हुआ है।

विनोबा जी के अनुसार वास्तविक शिक्षा प्रकृति की गोद में किसी ऐसे वातावरण में ही सम्भव है।जहाँ के प्राकृतिक दृश्य, स्वच्छ और शीतल वायु, प्रफुल्लित व हरित वनस्पतियों, सूरज चाँद तारे व आकाश आदि सभी मनुष्य को स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति प्रदान करते है।

विनोबा जी ने आज की बढ़ती हुई जनसंख्या समस्या का एक निदान प्रस्तुत किया हैं। जो मनुष्य प्रकृति के स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त वातावरण में विचरण या कार्य करता है। उसका एकाग्रता में भी मनोरंजन होता रहता है और वह मनोरंजन के कृतिम साधनों पर निर्भर नहीं रहता है। यह जनसंख्या समस्या का स्वाभाविक निदान है।

विनोबा भावे के अनुसार पाठन विधि :-

विनोबा भावे द्वारा प्रस्तुत नई तालीम की पाठन विधि समवाय पद्धति पर आधारित है। विनोबा जी के अनुसार इस पद्धति में एक उद्देश्य और विभिन्न अंगयुक्त मूल उद्योग शिक्षण का माध्यम चुना जाता है। कला पर मुख्य रूप से आधारित होने के कारण इस पद्धति को उन्होंने समवाय पद्धति की संज्ञा प्रदान की है। विनोबा जी ने गाँधी जी के अनुसार ही सूत कातने की कला को भी महत्वपूर्ण माना है। विनोबा जी का कथन है कि व्यवहारिक कला का चयन बालक की प्रवृति एवं वातावरण के अनुकूल होना चाहियें। ताकि बालक अपनी रूचि के अनुसार पूर्ण मनोयोग से क्रियाशील होकर कला में दक्षता प्राप्त कर सकें। विनोबा जी की शिक्षण पद्धति की विशेषता हैं कि कला के द्वारा बालक कार्य में बौद्धिक, मानसिक क्रियाओं को साथ ही करता है तथा श्रम की महता का ज्ञान प्राप्त करके वह आनन्द प्राप्त कर पाने में समर्थ होता है। उनका विचार है कि उद्योग द्वारा बुद्धि में अन्वेषण शक्ति अर्थात तर्क, चिन्तन एवं मनन करने की शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार आपने क्रियाशील विधि तथा व्यवहारिक विधि और स्व-अनुभव से सीखना (Learning through experience) को शिक्षण पद्धति का मुख्य अंग स्वीकार किया है।

विनोबा भावे के अनुसार पाठ्यक्रम :-

विनोबा जी ने ''नई तालीम''के अन्तर्गत पूर्व नियोजित निश्चित पाठ्यक्रम का विरोध किया। उनके अनुसार नवीन अनुभवों के आधार पर नवीनता लाने की शक्ति मानव में होनी चाहिये अर्थात पाठ्यक्रम में भी अनुभव के आधार पर परिवर्तन आवश्यक होता है। अपने पाठ्यक्रम में सामाजिक पक्ष, आर्थिक पक्ष एवं आध्यात्मिक पक्ष के विकास के आधार पर बिषय ज्ञान देना उचित समझा है। विनोबा जी ऐसे विषय ज्ञान को महत्व देते है जो मानव की समस्त ज्ञानेन्द्रियों का समुचित विकास कर सकें। इसके अतिरिक्त बालक के शरीर, वाणी और हृदय के विकास की भी चर्चा उन्होंने की है। आपने खेलने -कूदने व्यायाम एवं स्वास्थ्य रक्षा को पाठ्यक्रम का अंग स्वीकार किया है। पाठ्यक्रम की विशेषता यह है कि इतिहास, भूगोल एवं गणित के साथ

समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी सम्भावनायें - मणि शर्मा

आपने एक उद्योग की शिक्षा को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। जिससे कि बालक में स्वावलम्बन का विकास होता है। आपका विचार है कि बिना उद्योग के गुण विकास नहीं होता है और न गुणों की परख होती हैं। संक्षेप में अप्रत्यक्ष रूप से यह कहना समीचीन होगा कि आपने औद्योगिक विज्ञान ,आहार विज्ञान, मल विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, खादी विज्ञान, कर्म में ज्ञान दृष्टि तथा आसपास की वस्तुओं को परखने की शक्ति के साथ ही आत्म ज्ञान को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना उचित समझा

विनोबा जी के अनुसार अनुशासन :-

विनोबा जी के अनुसार अनुशासन का अर्थ है अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। विनोबा जी का विचार था कि बालकों को शिक्षा देने में दण्ड का प्रयोग न करके सहानुभूति का प्रयोग किया जाना चाहिये। शिक्षक इस प्रकार अनुशासन में आत्मा की स्वतंत्रता के लिये आदर्शवादी होते हुये भी प्रकृतिवादी दृष्टिकोण रखकर युक्तिवादी सिद्धांत मानें। विद्यार्थी के चरित्र तथा शिक्षक के चरित्र को अच्छा होना चाहिये। जिसका प्रभाव दूसरों पर अवश्य पड़ता है। स्पष्ट है कि विनोबा जी चरित्र, कार्य एवं विचार के प्रभाव से अनुशासन स्थापित करने के पक्ष में है। चरित्र की परख कार्य एवं व्यवहारों से होती है।

आचार्य विनोबा जी के अनुसार बालकों को अनुशासन में रखना चाहिये किन्तु वे स्वतंत्रता को विकास की प्रथम दशा मानते थे। उनके अनुसार माता -पिता का आवश्यकता से अधिक शासन होने से, बच्चों को उचित विकास का अवसर नहीं मिल पाता है। अतः विनोबा जी अनुशासन के साथ-साथ स्वतंत्रता को भी महत्व देते है।

शैक्षिक अभिकरण नई शिक्षा नीति के संदर्भ में :-

शोधार्थिनी यह अनुभव कर रही है, कि महात्मा गाँधी एवं विनोबा भावे द्वारा व्यक्त परिवार, राज्य, विद्यालय एवं समुदायों का शिक्षा में योगदान देखने के पश्चात् इन दोंनो द्वारा प्रस्तावित शैक्षिक अभिकरणों सम्बन्धी विचारों की नवीन शिक्षा नीति के सन्दर्भ में समीक्षा की जाये। मेरी दृष्टि में जिस समय अभिकरणों की चर्चा हो तो सबसे पहले अभिकरणों का निर्धारण आवश्यक है। शिक्षा के प्रमुख अभिकरण निम्नवत् है।

(1) शिक्षक

(2) छात्र

शिक्षा विचार - विनोबा

(3) शिक्षा के उद्देश्य

(4) पाठ्यक्रम

(5) पाठन विधि

(6) अनुशासन

(1) शिक्षक :-

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षक का स्थान अत्यन्त सम्मानित रहा है। उसे धार्मिक नेता एवं समाज सुधारक माना जाता हैं यहाँ तक कि राजा भी शिक्षक का सम्मान करता था। आज भी अधिकांश शिक्षकों को छात्रों एवं समाज के बीच वही सम्मान व गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। विगत कुछ काल में शिक्षकों के स्थान एवं सम्मान में कुछ गिरावट आयी हैं। इसके अनेक कारण है। जैसे-

(1) कर्तव्यों के प्रति निष्ठा में कमी

(2) सेवा शर्तों में बन्धन

(3) शिक्षा व्यवस्था में विस्तार एवं परिवर्तन

(4) शिक्षक प्रशिक्षण का गिरता हुआ स्तर

(5) सामाजिक मूल्यों का ह्रास

(6) परिवारिक विघटन का प्रभाव

(7) शिक्षा का व्यवसायीकरण

(8) समाज में व्यापत अनुशासनहीनता एवं भ्रष्टाचार

(9) शिक्षाविदों के स्थान पर राजनीतिज्ञों द्वारा शिक्षा नीति का निर्धारण

उपरोक्त कारणों द्वारा शिक्षकों के सम्मान एवं सामाजिक स्तर में गिरावट आ रही है। इसका सीधा प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ रहा है। जिससे यह शिक्षाशास्त्रियों, चिन्तकों एवं प्रशासकों के लिये चिन्ता का विषय बन गया है। यही कारण है कि नवीन शिक्षा नीति के निरूपकों ने समाज में वांछित परिवर्तन लाने के लिये शिक्षक समुदाय पर ही विश्वास करते हुये शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं उसकी गुणवत्ता में मौलिक सुधार की व्यवस्था

की है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि शिक्षक प्रशिक्षण ही नवीन शिक्षा नीति की आधारशिला है। शोधार्थिनी ने अपने सम्पूर्ण अध्ययन में यह पाया कि सन्त विनोबा भावे एवं महात्मा गॉंधी ने अपने सभी प्रयास शिक्षकों के सामाजिक उत्थान एवं उन्हें प्रशिक्षित बनाने के लिये किया एवं दोंनो ही विभूतियों ने ऐसे शिक्षकों की कल्पना की है। जिनसे समाज अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच सके। नवीन शिक्षा नीति में भी शिक्षकों के स्तर को उठाने के लिये अनेक कदम उठाये गये। जैसे -

(1) चयन प्रक्रिया में आवश्यक सुधार

(2) शिक्षकों की सेवा शर्तों में सुधार

(3) शिक्षकों की समस्याओं के निवारण के लिये समितियों का गठन

(4) शिक्षकों एवं उनके व्यवसाय स्तर को उठाने के लिये शिक्षक संघो की भागीदारी

(5) शिक्षकों के लिये व्यवसायिक आचार संहिता का निर्माण

(6) शिक्षकों में स्वायत्ता एवं नवाचार को बढ़ावा देने हेतु उचित अवसर प्रदान करना।

उक्त सभी प्रयासों के लिये महात्मा गॉंधी एवं सन्त विनोबा भावे सदैव चिन्तित एवं प्रयत्नशील रहे है। उन्होंने सदैव एक आदर्श शिक्षक की कल्पना की। वे चाहते थे कि शिक्षक सदैव सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनें सम्भवतः इसीलिये नवीन शिक्षा नीति में भी शिक्षकों के स्तर पर विशेष ध्यान दिया गया। इसी भावना से प्रेरित होकर प्रशिक्षण संस्थानों एवं जिला स्तर पर जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई एवं प्रदेशीय स्तर पर अनेकों प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना की गई । इन प्रशिक्षण संस्थानों को भी नियंत्रित करने के लिये राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की स्थापना हुई जिससे शिक्षको के स्तर में गिरावट न आ सके। इन सभी संस्थाओं की स्थापनाओं में गॉंधीजी एवं विनोबा भावे की भावनाओं का ही परिलक्षण होता है। ऐसी शोधार्थिनी की धारणा है।

(2) <u>विद्यार्थी</u> :-

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के साथ ही दूसरे स्तम्भ के रूप में विद्यार्थी खड़ा हुआ है। जिसको कोई भी अनदेखा नहीं कर सकता है। इसलिये एडम्स ने शिक्षा को द्विमुखी प्रक्रिया कहा है। उसकी शिक्षा के दो मुख शिक्षक एवं विद्यार्थी ही है। महात्मा गॉंधी जी एवं बिनावा भावे सदैव ही छात्रों के हित चिन्तक रहें है। उनके मन मस्तिषक में सदैव छात्रों के हित में ही सोचने एवं कार्य करने की प्रक्रिया चलती रहती हैं। उनकी स्वतंत्र धारणा थी कि छात्रों के विकास से ही

राष्ट्र का विकास सम्भव है। उनकी इन भावनाओं को दृष्टिगत करते हुये नवीन शिक्षा नीति में भी इस भावना को अपनाने का प्रयास किया गया है। नवीन शिक्षा नीति के निर्धारकों द्वारा इस बात का सतत् प्रयास रहा है। राष्ट्र की अधिक से अधिक जनसंख्या विधार्थी रूप में शिक्षा ग्रहण कर सके। इसके लिये नवीन शिक्षा नीति में नवोदय विद्यालय एवं खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है। खुले विश्वविद्यालयों द्वारा उन सीमाओं को हटाना था जिनके कारण भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाता था क्योंकि शिक्षण संस्थाओं में धन और आय द्वारा सीमायें रेखांकित कर दी गई थीं जिससे गाँधी जी एवं विनोबा जी की शिक्षा प्रगति की परिकल्पनायें पूरी नहीं हो पाती थी। नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत इन दोंनो ही सीमाओं को गिराने का प्रयास किया गया। खुले विश्वविद्यालयों में आयु सीमा को समाप्त कर दिया गया। कोई भी विद्यार्थी किसी भी आयु पर कोई सा भी पाठ्यक्रम पूरा कर सकता है एवं इसके लिये व्यवसायिक संस्थाओं के समान अधिक धन लगाने की आवश्यकता नही हैं। यह प्रदर्शित करता है कि जो नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत आज प्रयास किये जा रहे है। इसकी परिकल्पना तो गाँधी जी के मस्तिष्क में सदैव से रही थी इसीलिये उन्होंने उच्च शिक्षा के स्थान पर बुनियादी शिक्षा के प्रसार के लिये सदैव प्रयास किये थे। जिसका मूलाधार गाँधी जी ने 'तकली ' को बनाया। वे इस हस्त कौशल के माध्यम से ही बालक की सम्पूर्ण शिक्षा का विकास करना चाहते थे।

सन्त विनोबा जी भी गाँधी जी के समान ही विद्यालयों में छात्रों के हित मे प्रति सदैव सचेत थे वे छात्रों में विनम्रता, सहृदयता एवं सामाजिकता का पोषण करना चाहते थे। जिससे कि वह समग्र राष्ट्र के विकास में समुचित भूमिका का निर्वहन कर सके।

ये दोंनो ही शिक्षाविद् पूर्णरूपेण वर्तमान नवीन शिक्षा नीति के ही पोषक थे। क्योंकि ये इस मत के विरूद्ध थे कि छात्रों के विकास के लिये अधिक से अधिक उपाधियों का अर्जन किया जाये। वे प्रारम्भ से ही बालक को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे जो कि नवीन शिक्षा नीति का मूल मंत्र है।

(3) शिक्षा के उद्देश्य :-

शिक्षा के तीसरे प्रमुख आयाम उद्देश्य के सम्बन्ध में शोधार्थिनी की यही धारणा है कि जिस प्रकार उद्देश्यविहीन जीवन निरर्थक होता है। उद्देश्य के अभाव में मानव जीवन में जड़ता और अचेतनता का ही प्रादुर्भाव होता है क्योंकि इसी भावना का परिलक्षण पूज्य बापू के चिन्तन में भी प्रतिबिम्वित होता हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रकार के उद्देश्यों अर्थात

दीर्घकालिक एवं तात्कालिक उद्देश्यों को आवश्यक मान रहे थे। दीर्घकालिक उद्देश्यों से उनका अभिप्राय ऐसे उद्देश्यों से था जिससे मानव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये गॉंधी जी ने अपने सम्पूर्ण चिन्तन का आधार गीता के सार को बनाया जहॉं कर्मण्डये वादिकरस्ते मा फलेषु कदाचनः अर्थात गॉंधी जी कर्मयोग के माध्यम से ही जीवन मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे।

तात्कालिक उद्देश्यों में गॉंधी जी चारित्रिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्रमुखता प्रदान कर रहे थे क्योंकि समाज मे रहते हुये ही कर्म के माध्यम से अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती थी। इस प्रकार गॉंधी जी शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते रहे। गॉंधी जी इसीलिये आदर्शवादी, भौतिकवादी, प्रकृतिवादी, प्रयोजनवादी एवं यथार्थवादी दार्शनिक के रूप में सामने आते है।

सन्त विनोबा ऐसे विचारक और आदर्शवादी के रूप में अपने आप को स्थापित करते है। जिन्होंने वर्तमान को ही शिक्षा का मूल उद्देश्य माना। गॉंधी जी के समान ये भी कर्म प्रधान साधना में ही आस्था रखते थे शिक्षा के उद्देश्यों के रूप में ये जीविकोपार्जन को प्रमुखता प्रदान करते थे। क्योंकि इन्होंने भारत की जनता को भूख और गरीबी से लड़ते हुये बहुत निकट से देखा था और इनकी प्रबल धारणा थी कि जब तक समाज को इन अभावों से मुक्त नहीं किया जायेगा तब तक समाज का विकास सम्भव नहीं हो पाता है। इसीलिये वे शिक्षा के माध्यम से पत्येक छात्र को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। वे छात्रों को अध्ययन के क्षेत्र में भी स्वावलम्बी देखना चाहते थे न कि परावलम्बी।

विनोबा जी इसीलिये नवीन शिक्षा नीति के समान ही अपनी शिक्षा को व्यवसायपरक शिक्षा बनाना चाहते थे। विनोबा भावे ने अपने चिन्तन में स्पष्ट रूप से इस बात की अभिव्यक्ति की कि शिक्षा का दायित्व व्यक्ति एवं समाज दोंनो के प्रति है। वे व्यक्ति विकास के द्वारा सामाजिक विकास की कल्पना करते थे। विनोबा जी प्रयोजनवादियों की तरह ही छात्रों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही साथ व्यवहारिक ज्ञान के समर्थक थे। क्योंकि उनकी धारणा थी जब तक पुस्तकीय ज्ञान को व्यवहारिकता में परिणित नहीं किया जायेगा। तव तक उसका लाभ समाज को नहीं मिल सकता। भावे जी की प्रकृतिवादी झलक तब दिखाई पड़ती है। जब वे कहते है। कि वास्तविक शिक्षा प्रकृति की गोद में किसी ऐसे वातावरण में ही सम्भव है। जहॉं के प्राकृतिक दृश्य स्वच्छ एवं शीतल वायु प्रफुल्लित एवं हरित वनस्पतियॉं, सूरज, चॉंद, तारें, आकाश आदि सभी मनुष्य

को स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति प्रदान करते है।उक्त दोंनो ही विचारकों के शिक्षा के उद्देश्यों को अवलोकित करने के पश्चात् शोधार्थिनी की यह धारणा हैं कि ये दोंनो ही शिक्षा के स्तम्भ पूर्णतया नवीन शिक्षा नीति के मार्गदर्शक बने हुये है क्योंकि नवीन शिक्षा नीति में भी व्यक्ति और समाज दोंनो के सम्पूर्ण विकास की परिकल्पना की गई हैं। इसके लिये शिक्षा को पूर्ण रूपेण समाज उपयोगी बनाने के लिये रोजगारपरक एवं सामाजिक चेतना से भरने का प्रयास किया गया है। इसी आधार पर गॉंधी जी की बेसिक शिक्षा के समान ही नवोदय विद्यालय एवं खुले विश्व विद्यालय की व्यवस्था की गई हैं।

(4) पाठ्यक्रम :-

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक ऐसा अंग है जिसके अभाव में शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पाठ्यक्रम के ऊपर ही हमारी शिक्षा का सम्पूर्ण ढॉंचा अवलम्बित होता है। यह पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं एवं शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने का आधार हुआ करता है। इस बात को ध्यान में रखते हुये गॉंधी जी एवं सन्त विनोबा जी ने अपने शिक्षा दर्शन में जो पाठ्यक्रम की कल्पना की उसमें वर्तमान नवीन शिक्षा नीति की भावनाओं का ही मूल रूप दिखाई पड़ता है। गॉंधी जी ने ऐसे पाठ्यक्रम की कल्पना की जो केवल मस्तिष्क को ही शिक्षित न करता हो बल्कि बालक में क्रियात्मक चेतना का भी विकास करता हो इसके लिये उन्होंने पाठ्यक्रम का मूल आधार हस्त कौशल को बनाया, यह कौशल कोई भी अर्थात कताई, बुनाई, लकड़ी का काम, धातु का काम हो सकता है। किन्तु कताई, बुनाई की और गॉंधी जी द्वारा विशेष रूचि प्रदर्शित की गई। गॉंधी जी सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को प्रमुख रूप से मातृभाषा के माध्यम से ही प्रदान करना चाहते थे क्योंकि उनकी धारणा थी कि विदेशी एवं आरोपित भाषा की तुलना में शिक्षा प्रदान करने का मातृभाषा सबसे सशक्त माध्यम है। इसीलिये वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मातृभाषा के माध्यम से ही देना चाहते थे। इनके पाठ्यक्रम के मूल विषय गणित ,सामाजिक अध्ययन ,ड्राइँग तथा संगीत थे। सामान्य विज्ञान को भी समुचित स्थान प्रदान किया गया था। उनकी शिक्षा योजना इसलिये बुनियादी तालीम या नई तलीम के नाम से जानी जाती थी। पाठ्यक्रम सम्वन्धी गॉंधी जी के इस चिन्तन की तुलना यदि हम नवीन शिक्षा नीति के साथ करें, तो विरोधाभास के स्थान पर हमें समानता अधिक दिखाई पड़ेगी क्योंकि नवीन शिक्षा नीति के माध्यम से भी समाज के उन्न्यन का ही प्रयास किया गया हैं।

संत विनोबा भावे की शिक्षा का मूलाधार समाज ही है। वे शिक्षा के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये सामाजिक विकास की परिकल्पना करते

है। उनके अनुसार स्थानीय परिवर्तन के अनुरूप कृषि, गृह उद्योग एवं अन्य घरेलु उद्योग धन्धों व विषयों को शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है। उनके अनुसार इस प्रकार की शिक्षा भोजन एवं पोषण सिद्धांतो पर आधारित होगी। इसके माध्यम से वे ग्रामवासियों में स्वच्छता की भावना का विकास करना चाहते थे कि विद्यार्थी एवं विद्यालय समाज में उत्पन्न होने वाली आकस्मिक परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता रखते हों विनोबा जी के विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने का समय प्रातःकाल एवं सांयकाल रखने के पक्ष में थे। उनके अनुसार ये दोंनो ही समय ज्ञान प्राप्त करने के लिये सबसे ज्यादा उपयुक्त होते है।विनोबा जी की शिक्षा की तुलना विचारकों ने भोजन से की है। जिस प्रकार भोजन थोड़े समय में किया जाता है। किन्तु उसके पचाने की प्रक्रिया दीर्घकाल तक चलती है। उसी प्रकार भावे जी भी ज्ञान प्रदान करने का समय थोड़ा सा रखना चाहते थे। किन्तु उस ज्ञान को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिये अधिक से अधिक समय देना चाहते थे। जिससे समाज को उस ज्ञान से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके क्योंकि भावे जी के समाज की मूल इकाई अभावों से भरे गॉंव थे। जिनके सम्पूर्ण विकास से ही वे सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास की कल्पना करते थे।

पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में दोंनो ही चिन्तकों के विचारों को देखने से शोधार्थिनी की यह भावना प्रबल होती है। कि वर्तमान नवीन शिक्षा नीति का पाठ्यक्रम और कुछ नहीं वरन् इन दोंनो चिन्तकों की ही भावनाओं का ही परिलक्षण होता है। इन दोंनो विचारको के समान ही नवीन शिक्षा नीति में भी सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान किये जा रहे है। नवीन शिक्षा नीति में राष्ट्रीय मूल्यों एवं राष्ट्रीय एकता को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है जो कि महात्मा गॉंधी जी एवं विनोबा जी के लिये मूल मंत्र थे। गॉंधी जी एवं विनोबा जी के ही समान आज नवीन शिक्षा नीति भी समाज में शैक्षिक विषमताओं को कम करने की पक्षधर है। नवीन शिक्षा नीति के अन्तर्गत महिलाओं, प्रौढ़ो, अनुसूचित जातियों, जनजातियों ,अल्पसंख्यकों आदि क्षेत्रों में जहॉं शैक्षिक अवसरों की असमानता है। वहॉं अधिक से अधिक समान अवसर प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। गॉंधी जी एवं विनोबा जी भारतीय समाज से इस विषमता को समूल नष्ट करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने कभी भी जाति, धर्म अथवा लिंग के आधार पर कोई पृथक शिक्षा देने की सिफारिश नहीं की।

(5) पाठन विधि :-

गॉंधी जी प्रचलित शिक्षण विधि में अध्यापक एवं छात्र के बीच सम्पर्क

अभाव से चिन्तित थे क्योंकि अध्यापक का उद्देश्य केवल छात्र को पढ़ाकर चला जाना था। छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते थे। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति के विपरीत गाँधी जी ऐसी शिक्षण प्रक्रिया अपनाना चाहते थें। जिससे शिक्षक और छात्र के बीच की खाई कम हो और छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में न रहकर सक्रिय अनुसंधानकर्ता ,निरीक्षणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता के रूप में अपने आप को स्थापित करें। शिक्षण विधि में गाँधी जी की अवधारणा थी कि इसमें आमूल परिवर्तन होना चाहिये। इस परिवर्तन में वे सर्वप्रथम मातृभाषा को शिक्षण का माध्यम बनाना चाहते थे।दूसरा परिवर्तन वे पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर क्राफ्ट केन्द्रित ज्ञान को स्थान देना चाहते थे। क्राफ्ट निर्माण को वह चरित्र निर्माण का साधन भी मानते थे। क्राफ्ट केन्द्रित शिक्षण विधि में क्रिया एवं अनुभव दोंनो पर ही गाँधी जी बल देते थे। इस विधि द्वारा वे बालक को समन्वित ज्ञान प्रदान करना चाहते थे। वे सभी विषयों को क्राफ्ट से सम्बद्ध करना चाहते थे।

बापू के समान ही विनोबा जी भी सूत कातने की हस्त कला को महत्वपूर्ण मानते थे। वे इसे बालक की शिक्षा का मूल आधार बनाना चाहते थे, किन्तु विनोबा जी महात्मा गॉधी जी से कुछ हटकर प्रकृतिवादी दर्शन से प्रभावित होकर बालक को प्रकृति की गोद में रहते हुये ज्ञान देने के पक्ष में थे। विनोबा जी छात्र में श्रम के महत्व को विकसित करना चाहते थे। इसलिये वे छात्रों को परिश्रम द्वारा सीखने के लिये प्रेरित करते थे। इसके साथ ही वे छात्रों को परिशेष पद्धति द्वारा शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। इस पद्धति का मूल आधार उद्योग धन्धे थे। इन उद्योंगो के माध्यम से ही वह छात्रों में मनोरंजन एवं खेल द्वारा शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। अन्य पद्धति के रूप में विनोबा जी समुच्चय पद्धति द्वारा छात्रों को शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे। जिसमें उद्योग और शिक्षण दोंनो को ही समान महत्व दिया जाता था। इस विधि द्वारा छात्रों में आजीविका अर्जित करने की क्षमता का विकास करना था। इसके साथ ही भावे जी स्वयं संयोजन पद्धति के शिक्षण शास्त्री माने जाते थे। जिसमें कर्म के द्वारा ज्ञान को प्रदान करना मुख्य लक्ष्य होता था। कर्म की प्रधानता के साथ ही विनोबा जी समवाय पद्धति में भी आस्था रखते थे और उनके अनुसार यह भी माना जाता था कि बालक को कोई एक जीवनव्यापी अंगयुक्त मूल उद्योग के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाये। यह उद्योग शिक्षक का सिर्फ एक साधन ही नहीं बल्कि वरन् उसका एक अभिभाज्य अंग होना चाहिये। इस उद्योग द्वारा शिक्षा के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति की परिकल्पना भावे जी ने की थी। इस प्रकार उद्योग मूलक समवाय पद्धति को विनोबा जी प्रमुख शिक्षण विधि मानते थे। समवाय पद्धति में कर्म और ज्ञान एक दूसरे में ओतप्रोत रहते है।

उपयुक्त दोंनो ही मनीषियों के शिक्षण विधि सम्बन्धी विचारों को दृष्टिगत करते हुय शोधार्थिनी यह अनुभव करती है कि दोंनो ही शिक्षाविद् मूलरूप से छात्रों को कर्मयोग के माध्यम से समाज का उपयोगी अंग बनाना चाहते थे जिससे समाज का समग्र विकास हो सके। आज नवीन शिक्षा नीति भी इन्हीं दोंनो शिक्षाविदों के मूल चिन्तन से ही ओतप्रोत प्रतीत होती है क्योंकि नवीन शिक्षा नीति के माध्यम से भी बालकों का समाज के विकास में सक्रिय भूमिका निभाने योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके लिये वे उन विधियों को अपनाना चाहते है। जिनके माध्यम से छात्रों का सामाजिक विकास हो सके। इसके लिये नवीन शिक्षा नीति में शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने की प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है जो कि गाँधी जी एवं विनोबा जी की शिक्षण विधियों एवं भावनाओं के पूर्णतया अनुकूल है।

(6) अनुशासन :-

अनुशासन की दृष्टि से जब शोधार्थिनी अपनी दृष्टि गाँधी जी एवं सन्त विनोबा जी पर डालती है तो पाती है कि गाँधी जी विद्यालयों मे आत्म प्रेरित अनुशासन के पक्षधर थे। वे आरोपित अनुशासन के विरोधी थे। वे चाहते थे कि शिक्षक अपने आत्मबल एवं आदर्शों से प्रभावित कर छात्रों को उनका अनुकरण करने के लिये उत्प्रेरित करें ताकि वे उच्च आदर्शों को ग्रहण कर सकें। गाँधी जी अनुशासन के साथ ही तर्क को भी महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी धारणा थी कि छात्र किसी भी चीज का अनुकरण न करें।वे तभी किसी चीज को स्वीकार करें जबकि वे उसे तार्किक दृष्टि से उचित समझें।

सन्त विनोबा जी अनुशासन को व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्देशित प्रक्रिया मानते थे ।उनका सोचना था कि आत्मा के द्वारा ही व्यवहार में परिवर्तन होता है और वह परिवर्तन ही अनुशासन के रूप में प्रकट होता है। विनोबा जी शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन स्थापित करने के लिये बालकों के प्रति दण्ड की अपेक्षा सहानुभूति के पक्षधर थे। वे मानते थे कि सहानुभूति के माध्यम से अनुशासन स्थापित करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। इसके लिये बालकों के चारित्रिक विकास के पक्षधर थे। उनकी धारणा थी कि चारित्रिक विकास से ही बालकों के चिन्तन को प्रभावित किया जा सकता है। वे चाहते थे कि छात्रों एवं शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन को स्थापित करने के लिये स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहियें

अनुशासन के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोंनो ही मनीषियों के दृष्टिकोंण को देखने से शोधर्थिनी यह अनुभव करती है कि अनुशासन के क्षेत्र में गाँधीजी और सन्त विनोबा

भावे के समान ही नवीन शिक्षा नीति में भी भावनायें अभिव्यक्त की गई है। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत बालकों में आरोपित अनुशासन के स्थान पर आत्म अनुशासन की ही परिकल्पना की गई है। इसके अन्तर्गत छात्रों में अनुशासन और आत्मानुशासन की भावना पर ही विशेष बल दिया गया है।

अध्याय : दशम

निष्कर्ष एवं सुझाव

(क) शोध प्रबंध का निष्कर्ष

(ख) भारतीय शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव

(ग) अग्रिम अध्ययन के लिये सुझाव

निष्कर्ष एवं सुझाव

(क) शोध प्रबन्ध का निष्कर्ष :-

सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया एवं शोध प्रबन्ध पर विहगंम दृष्टिपात करने पर शोधार्थिनी की धारणा यह है कि भारतीय शिक्षा जगत में पूज्य बापू एवं संत बिनोवा भावे आधार स्तम्भ के रूप में खड़े हैं । भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकतम परिवर्तन लाने की सोच इन दोंनो मनीषियों के मस्तिषक में सदैव बनी रही। इसलिये उन्होंने भारतीय शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर गहन चिन्तन को प्रदर्शित किया। तुलनात्मक दृष्टि से यदि हम देंखे तो महात्मा गॉंधी एक महान समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ एवं शिक्षाविद् के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होतें है। इनके सम्पूर्ण शिक्षा दर्शन का आधार बालक को समाजोपयोगी अंग बनाना रहा है। ताकि वह समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ समायोजन करते हुये सामाजिक विकास में अग्रणी भूमिका निभा सकें।

शोधार्थिनी जब सन्त विनोबा भावे के बारे में सोचती है, तो यह अनुभव करती हैं कि सन्त केवल नाम के ही सन्त नहीं थे वरन् उन्होंने भारतीय शिक्षा के मर्म को भी स्पर्श किया है उनकी धारणा थी कि जब तक बालक में सामाजिकता एवं त्याग की भावना का विकास नहीं होगा तब तक वे समाज के विकास में अपना सक्रिय योगदान नहीं कर सकेंगे। इसके लिये उन्होंने सम्पूर्ण भारत में भूदान आन्दोलन की शुरूआत की। जिससे लोंगो में त्याग की भावना का विकास हो सकें। सन्त विनोबा ने शिक्षा के सभी क्षेत्रों को अपने ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया हैं। ये क्षेत्र भले ही शिक्षा के उद्‌देश्य या फिर छात्र अनुशासन रहे हों किंचित भी उनके चिन्तन से अछूता नहीं रहा है। वे इस पक्ष के प्रबल समर्थक थे कि आज भारत के बदले हुये परिवेश में शिक्षक तथा विद्यार्थी की अग्रणी भूमिका होनी चाहिये। तभी वे सामाजिक विकास में अपना पूर्ण योगदान कर सकेंगे।

दोंनो ही शिक्षाविदों यथा महात्मा गॉंधीजी एवं विनोवा भावे के सम्वन्ध में उनका पूरा अवलोकन करने के पश्चात् शोधार्थिनी की यह प्रबल धारणा बनी हैं कि ये दोंनो भारत की वदली हुई परिस्थितियों में राजीव गॉंधी द्वारा प्रारम्भ की गई नवीन शिक्षा नीति

के लिये आधार प्रस्तुत करते हैं। नवीन शिक्षा नीति में शिक्षा के जिन क्षेत्रों में परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। मूल रूप से गॉंधी जी एवं सन्त विनोबा भावे जी दोंनो ही अपने काल में सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। शोधार्थिनी यह अनुभव करती हैं कि नवीन शिक्षा नीति महात्मा गॉंधी जी एवं सन्त विनोबा भावे के चिन्तन की ही परिणिति है। शिक्षा के क्षेत्र में गॉंधी जी के विचार अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि उन्होंने ऐसी शिक्षा प्रणाली को प्रस्फुटित किया है। जिसे प्रत्येक विद्यार्थी ग्रहण कर सकता है। गॉंधी जी ने बेसिक शिक्षा को व्यवहारिक रूप प्रदान किया क्योंकि गॉंधी जी की अभिलाषा थी शिक्षा ऐसी हो जिसे गरीब, अमीर, छोटा बड़ा सभी वर्ग जाति के व्यक्ति प्राप्त कर सकें अतः गॉंधी जी ने अपनी शिक्षा में आत्म निर्भरता पर अधिक महत्व दिया है। जिससे देश का प्रत्येक क्षेत्र इससे लाभान्वित हो सकें विनोबा जी का जीवन भी समाज सेवा के लिये समर्पित जीवन था व्यक्ति का हित सम्पूर्ण समाज में निहित है। यही उनकी साधना का मूलमंत्र हैं।

महात्मा गॉंधी जी एवं विनोबा भावे दोंनो ही उच्च श्रेणी के शिक्षाविदों मे आते है क्योंकि दोंनो ही विद्धानों ने देश की सम्पूर्ण समस्याओं को समझा है तथा इस समस्या से निबटने के लिये नये-नये आयाम प्रस्तुत किये है तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी गॉंधी जी केवल साक्षरता को ही शिक्षा नहीं मानते थे क्योंकि साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त हैं और न प्रारम्भ जिसके द्वारा मनुष्य को शिक्षित किया जा सके। उनका विचार था कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य के शरीर ,मन, हृदय और आत्मा का विकास करना चाहिये। अतः गॉंधी जी किताबी शिक्षा को शिक्षा न मानकर व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर महत्व देते थे। वह बालक को आत्मनिर्भर बनाने पर जोर देते थे। जिससे वह अपना तथा समाज का विकास कर सके। विनोबा जी भी व्यक्ति को कर्मशील तथा समाज उन्नत बनाने में विश्वास करते थे। जिससे वह इस समाज तथा राष्ट्र का हित करें।

अतः शोधार्थिनी ने अनुभव किया कि जहॉं तक जीवन के लक्ष्य का सम्वन्ध है उससे यह ज्ञात होता है कि विनोबा तथा गॉंधी जी के दर्शन में समानता है। लेकिन शोधार्थिनी ने यह भी कहा है कि गॉंधी जी का कार्य भारत की स्वतंत्रता का था विनोबा जी का कार्य सामाजिक पुनरूत्थान का था। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में भी दोंनो शिक्षाशास्त्रियों की विचारधारा लगभग समान ही हैं क्योंकि दोंनो शिक्षाविदों के रास्ते भले ही (शिक्षा विचार)अलग हों पर मंजिल एक ही थी यानि बालकों का सर्वांगीण विकास करना था।

(ख) भारतीय शिक्षा में सुधार हेतु सुझाव :-

सम्पूर्ण अध्ययन के बाद शोधार्थिनी इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि वर्तमान भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिये अभी भी बहुत अपेक्षायें है।शोधार्थिनी इन अपेक्षाओं के अनुरूप यह अनुभव करती है कि यदि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में निम्न सुधार अपनायें जायें तो समाज का अधिक से अधिक लाभ हो सकेगा।

(1) शिक्षकों को उनके दायित्वों के प्रति जागरूक किया जावें।

(2) छात्रों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया जावें।

(3) शिक्षा के उद्देश्य को परिवर्तनशील भौतिक समाज के अनुरूप बनाया जायें।

(4) पाठ्यक्रम व्यवसायपरक हों।

(5) शिक्षण विधियों के क्षेत्र में व्यवहारिक एवं प्रायोगिकता पर अधिक बल दिया जायें।

(6) अनुशासन के क्षेत्र में स्वतंत्रता का समुचित प्रयोग किया जाये।

(ग) अग्रिम अध्ययन के लिये सुझाव :-

शोधार्थिनी यह अनुभव करती है कि इतनी अल्पावधि में इतने महान दार्शनिकों एवं शिक्षा विदों का गहन अध्ययन करना एक दुष्कर कार्य है। इसलिये उनकी समस्त भावनाओं एवं क्षेत्रों का विषय अध्ययन नहीं हो सका हैं। शोधार्थिनी ने अपने आप को केवल उनमें शैक्षिक चिन्तन तक ही सीमित किया है, किन्तु वह अनुभव करती है कि इन दोंनो ही मनीषियों के सम्बन्ध में शोध कार्य करने के लिये अनेकों क्षेत्र खुले हुये हैं। जिन पर आगे भी शोध कार्य किया जा सकता है। जैसेः-

(1) सन्त विनोबा भावे जी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।

(2) महात्मा गॉंधी जी के शैक्षिक विचारों की वर्तमान नवीन शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन।

(3) महात्मा गॉंधी का शिक्षा दर्शन एवं भारतीय शैक्षिक चुनौतियॉं।

(4) जॉन डी. वी. एवं सन्त विनोबा भावे जी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.	अग्निहोत्री डॉ. रवीन्द्र	भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर
2.	आचार्य श्रीराम शर्मा	नैतिक शिक्षा (प्रथम भाग) युग निर्माण योजना मथुरा युग की माँ प्रतिभा परिष्कार (भाग-1) युग निर्माण योजना गायत्री, गायत्री तपोभूमि, मथुरा
3.	अदाबल डॉ. सुबोध	शिक्षा के सिद्धांत विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4.	कपिल, हंस कुमार	अनुसंधान विधियाँ हरप्रसाद भार्गव, प्रकाशन 4/230कचहरी घाट आगरा-4
5.	गोस्वामी तुलसीदास	रामचरित मानस गीता प्रेस गोरखपुर
6.	तोमर लज्जाराम	भारतीय शिक्षा के मूलतत्व सुरूचि प्रकाशक केशव कुंज झण्डेवाला नई दिल्ली 110055
7.	दुबे सत्यनारायण शरतेन्दु	शिक्षा का विज्ञान तथा तकनीकी साहित्य प्रकाशन आगरा
8.	पाण्डेय रामशक्ल	शिक्षा दर्शन-विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

9. पाठक एवं त्यागी — शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

10. पाठक पी. डी. — भारतीय शिक्षा की समस्यायें
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

11. भाई योगेन्द्र जीत — शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार
रिसर्च, नई दिल्ली

12. मिश्रा गणेश मूर्ति — " शिक्षा शोध "
स्वातन्त्र्योतर उ. प्र. में उच्च शिक्षा का विकास
(1950-1975)
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

13. लाल रमन विहारी — शिक्षण कला एवं तकनीकी
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धांत
रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, मेरठ -250002

14. सक्सेना डॉ. सरोज — विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा
साहित्य प्रकाशन आगरा

15. शर्मा डॉ. रामनाथ — शिक्षा दर्शन
रस्तोगी प्रकाशन मेरठ
राष्ट्र धर्मदृष्टता - श्री अरविन्द
लोकहित प्रकाशन लखनऊ - 4

16. शोध साहित्य रिसर्च जनरल्स - शैक्षिक प्रगति विशेषांक 1976
शिक्षा प्रणाली विशेषांक 1977
बाल समस्या विशेषांक 1980
शैक्षिक तकनीकी विशेषांक 1986
नई शिक्षा नीति - आधार एवं क्रियान्वयन 1988

संदर्भ ग्रंथ सूची

गाँधी जी द्वारा लिखे गये ग्रंथ

1.	आत्म कथा	सस्ता साहित्य मण्डल	दिल्ली
2.	हम सब एक पिता के बालक	-	तदैव
3.	मेरे सपनों का भारत	-	तदैव
4.	गाँधी जी की आत्म कथा	सस्ता साहित्य मण्डल	दिल्ली
5.	गीता माता	-	तदैव
6.	सत्याग्रह	गाँधी साहित्य प्रकाशक	भवानी कुटीर
7.	मंगल प्रभात	-	तदैव
8.	दिल्ली डायरी	नवजीवन प्रकाशन मन्दिर	
9.	यंग इण्डिया		
10.	खुराक की कमी और खेती		
11.	गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ -सर्वपल्ली राधाकृष्णन,सम्पादक सोहनलाल द्विवेदी, उत्तर प्रदेश		
12.	सर्वोदय	सस्ता साहित्य मण्डल	दिल्ली
13.	क्रिश्चियन मिशन	-	तदैव
14.	आतिथ्य की राह पर	-	तदैव
15.	नीति धर्म	-	तदैव
16.	गीता बोध	-	तदैव

गाँधी जी पर प्रकाशित लेख

1.	दि इन्डियन एअर बुक ऑफ एजूकेशन ऑफ एजूकेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग।	ऐलीमेन्ट्री एजूकेशन 1964 नेशनल काउंसिल
2.	भारतीय शिक्षा की समस्यायें	लेखक डॉ. रक्षनार्थ सफाया।
3.	गाँधीवादी संयोजन के सिद्धांत	लेखक श्री मन्नारायण।
4.	नई तालीम	लेखक श्री धीरेन्द्र मजूमदार
5.	आधुनिक शिक्षा शास्त्री	लेखक श्री मनमोहन सहगल
6.	सर्वोदय तत्व दर्शन	लेखक श्री गोपीनाथ धवन
7.	बुनियादी शिक्षा में अनुबन्ध की कला	ए. वी. सोलंकी
8.	एजूकेशन फिलॉसफी ऑफ़ एम. गाँधी	जे. वी. कृपलानी
9.	गाँधी विचार दोहन	किशोर लाल मशरूवाला
10.	गाँधी अभिनन्दन ग्रंथ	सोहन लाल द्विवेदी
11.	गाँधी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव	महात्मा गाँधी
12.	खादी क्यों और कैसे	महात्मा गाँधी
13.	वा और वापू की शीतल छाया में	मनुबहन गाँधी
14.	महान पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा शास्त्री	रामबाबू गुप्ता
15.	बापू की कारावास की कहानी	सुशीला नैयर
16.	गाँधी देन	राजेन्द्र प्रसाद
17.	राष्ट्रपिता	जवाहर लाल नेहरू
18.	जननायक	रघुवीर शरण मित्र
19.	अकाल पुरुष गाँधी जी	जैनेन्द्र कुमार
20.	उत्तर प्रदेश में गाँधी जी	रामनाथ सुमन
21.	गाँधी और गाँधीवाद	ऑ. वी. पट्टामीसीतारमैया,राज्यपाल मध्यप्रदेश
22.	महात्मा गाँधी -125 साल	रामजी सिंह, सर्वसेवा संघ राजघाट वाराणसी

अन्य संदर्भ ग्रन्थ

1. Sharma Jagdish Saran : Mahatma Gandhi , A desoripture biblography, S. chand & Co., Delhi ,1965

2. Doka Joseph J., M.K. Gandhi : An Indian patriot , in South Africa, London 1969.

3. Polland Pomins : Mahatma Gandhi Paris, 1984.

4. Fulch Miller Rene : Lenin and Gandhi , G.P. Putnames, 1922.

5. Pollak H. B. L.: Mahatma Gandhi , Natasen Madras, 1931.

6. Picher Louis : Gandhi (ext American liteary New York, 1954)

7. Tendulkar DinaNath Gopal : Life of M. K. Gandhi, Vol. VIII ,Times of India a Press Bombay,1951 to 1954.

8. A. N. Agrawal ,Gandhism : Socinlistic approach ,Kilaba Mahal Allahabad ,1944.

9. Alexender Horace : Social and Poltical trades of Mahatma Gandhi ,Popular Book Depot , Bombay,1946.

10. Dantwala ,M.L. : Gandhism Reconsidard Bombay ,1944.

11. Mashruwala ,K .C. : Gandhism and Warx ,Maviyivan publishing House, Ahamadabad , 1951.

12. Maxunder and Bimen bifari : The Gandhi concept of the State , M . C. Sarkar Calcutta , 1957

13. Radha krishan : Mahatma Gandhi Eassays and Reflection on his life and work , Allan and Unwin London, 1449.

14. Sukhiya S. P. : Elements of Educational research 1963. Allied Publisher, Bombay.

15. Whitney, F. L. : Elements of research 2961, Publishing House Bombay.

16. Manroce Wollers , S. , 1932 ,Rncychopedia of Education Reaserch, M. M. Company, New York.

17. Monlay : The clance of Educational research ,1963.

18. The Indian Year Book of Education - Elemantry Education 1964, National Counsel of Education research and Training.

19. डॉ. रघुनाथ सफाया – भारतीय शिक्षा की समस्यायें।

20. श्री मन्नारायण – गाँधीवादी संयोजन के सिद्धांत ।

21. श्री धीरेन्द्र मजूमदार – नई तालीम ।

22. मनमोहन सहगल – आधुनिक शिक्षा शास्त्री।

परिशिष्ट संदर्भ ग्रन्थ सूची (महात्मा गाँधी)

1. Mahatma Gandhi, M. K. -" An Autobiography . The story of My Experiments with Truth" Translator Mahavir prasad Poddar (Sasta Sahitya Mandal, New Delhi 1951). And Vol I, Tranlated from Gujrati by Mahadev Desai. And Vol II ,Translated by Mahadev Desai and Pyare lal Nair, (The Navjivan Press Ahmedabad 1929).

2. Mahatma Gandhi, M. K.- "Basic Education ". (The Navjivan Publishing House, Ahmedabad 1951).

3. Mahatma Gandhi, M. K. - "Bapu's Letter to Mira ". (The Navjivan Publishing House, Ahmedabad 1949).

4. Mahatma Gandhi, M. K.- "Contructive Programme ". (Navjivan Press Ahmedabad 1941).

5. Mahatma Gandhi, M. K.- " Sarvodaya " (List of " Unito this Last " of Ruskin) (Sasta Sahitya Mandal Prakashan(Hindi), New Delhi 1952 Ninth Edition).

6. Mahatma Gandhi, M. K.- " Bapu's Seekh " Vidayarathee Jivan ke Anubhava , (Sasta Sahitya Prakashan Sasta Sahitya Mandal , New Delhi 1952 Hindi Edition).

7. Mahatma Gandhi, M. K.- "Ethical Religion" Translated by Ramiyer (Ganesan ,Madras , 1922)

8. Mahatma Gandhi, M. K.- " From Satyagrah in South Africa", Translated by desai, V.G. (Ganesan ,Madras ,1928)

9. Mahatma Gandhi, M. K. - "Hindi Swaraj",(Ganesan ,Madras , 1921)

10. Mahatma Gandhi, M. K. -"Delhi Diary " (The Navjivan Publishing House, Ahmedabad 1949).

11. Mahatma Gandhi, M. K.- " Selected Letter's" (Ed. V.G. Desai Navjivan)

12. Mahatma Gandhi, M. K.- " Selected Writings of Mahatma Gandhi " (Ed Ronald Duncan , Faber And Faber London ,1951)

13. Mahatma Gandhi, M. K.- "Speches and Writing's of Mahatma gandhiji"
(Published by Natesan , Madras.1933)

14. Mahatma Gandhi, M. K.- " To the Student". (The Navjivan , Ahmedabad ,1949)

15. Mahatma Gandhi, M. K.- " Dakshina Africana Satyagramh, Pts I,II(NavJivan) in Gujrati.

16. Mahatma Gandhi, M. K.- " Young India" (1919-1922) (Tagore and Co. Madras,1922)

17. Mahatma Gandhi, M. K.- " Young India",Vol I (1919-1922)Vol II (1924-26) and Vol III(1927-28) (Madras ,S. Ganesan . 1922,1927,1935).

18. Mahatma Gandhi, M. K.-"Educational Reconstruction " A collection of Gandhiji Articles on the Wardha Scheme, (Hindustani Talimi Singh, Wardha , 3rd Ed. 1939)

19. Mahatma Gandhi, M. K.- " Sachchi Shiksha " (Ahmedabad ,Sasta Sahitya).

20. Mahatma Gandhi, M. K.- " India of My Dream "(Navjivan Press, Ahmedabad)

21. Mahatma Gandhi, M. K.- " Sarvodaya" (Navjivan , Publishing House 1951).

22. Mahatma Gandhi, M. K.- " Shiksha Me Ahinsak Krante".

23. Mahatma Gandhi, M. K.- " Gita The Mandir " Ed. Jag Pravesh Chandre (Free India Pub lication Lahore).

24 Mahatma Gandhi, M. K.- " Hindu Dharma" (N. P. H. 1950)

25 Mahatma Gandhi, M. K.- " Satyagraha " (N. P. H. 1951)

26. Mahatma Gandhi, M. K.- " Towards New Education ".(N. P. H. 1953)

27 Mahatma Gandhi, M. K.- " Towards Non -Voilant Socialism "(N. P. H. 1951)

विनोबा जी द्वारा लिखे गये ग्रन्थ

1.	शिक्षण विचार	अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ वाराणसी
2.	शिक्षा में क्रान्ति और आचार्य कुल	तदैव
3.	सर्वोदय विचार	सस्ता साहित्य प्रकाशन
4.	आचार्य कुल प्रश्नोपनिषद	आचार्य कुल आश्रम, पवनार, वर्धा
5.	आचार्य कुल विनोबा	सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी
6.	शिक्षा की अहिंसक क्रान्ति	आचार्य कुल आश्रम ,पवनार
7.	शिक्षा-दर्शन	,,
8.	समग्र नयी तालीम	,,
9.	शिक्षण और शान्ति	,,
10.	बुनियादी शिक्षा पद्धति	,,
11.	जीवन दृष्टि	,,
12.	गौ भक्ति	,,
13.	गीता प्रवचन	,,
14.	विनोबा के विचार	,,
15.	जीवन और शिक्षण	,,
16.	शान्ति यात्रा	,,
17.	उपनिषदों का अध्ययन	,,
18.	भूदान यज्ञ	,,
19.	स्थित प्रज्ञ दर्शन	,,
20.	स्वराज्य शास्त्र	,,
21.	विचार पोथी	,,
22.	गाँव सुखी हम सुखी	,,

पवनाश्रम में प्रकाशित पत्रिकायें

1.	मासिक पत्रिका आचार्य कुल,	जनवरी 1976
2.	मासिक पत्रिका आचार्य कुल,	अक्टूबर 1981
3.	मासिक पत्रिका आचार्य कुल,	जनवरी 1982
4.	मासिक पत्रिका आचार्य कुल,	फरवरी 1982
5.	मासिक पत्रिका आचार्य कुल,	मार्च 1982
6.	शिक्षा में क्रान्ति और आचार्य कुल	22 अगस्त 1981
7.	आचार्य कुल प्रश्नों पनिषंद	01 अगस्त 1981
8.	आचार्यों का अनुशासन	01 अगस्त 1981
9.	आचार्य कुल	दिसम्बर 1973

परिशिष्ट संदर्भ ग्रन्थ सूची (विनोबा जी)

1.	एकत्व की अराधना	कान्ति शाह	सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 221001
2.	एक बनो और नेक बनो	विनोबा	,,
3.	आमने सामने	जयप्रकाश नारायण	,,
4.	अष्टादशी	विनोबा	,,
5.	विनोबा के प्रेरक प्रसंग	सन्त विनोबा भावे	,,
6.	विनोबा के जीवन प्रसंग	मीरा भट्ट्	,,
7.	विनोबा : जीवन और कार्य	कान्ति शाह	,,
8.	विनोबास्तवनम्	ठाकुरदास बंग	,,
9.	बाबा विनोबा	श्री कृष्ण दत्त भट्ट	,,
10.	भारत छोड़ो आन्दोलन के सेनानी जयप्रकाश	,,	,,
11.	विज्ञान युग में धर्म	विनोबा	,,
12.	विनयान्जलि	विनोबा	,,
13.	भागवत धर्मसार (मीमांसा सहित)	विनोबा	,,
14.	धम्मपद	विनोबा	,,
15.	धर्म क्या कहता है	श्री कृष्ण दत्त भट्ट	,,
16.	ब्रह्मविज्ञानोपनिषद	प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद	,,
17.	भारतीय राजा व्यवस्था पुनर्रचना : एक सुझाव	,,	,,
18.	वैकल्पिक समाज रचना: (रुपरेखा :कार्यक्रम)	,,	,,
19.	गीता प्रवचन	विनोबा	,,
20.	गीता सार (अष्टादशी)	,,	,,
21.	गुरुबोध सार	,,	,,
22.	गाँव आन्दोलन क्यों	जे. सी. कुमारप्पा	,,

23.	ग्राम स्वराज्य क्यों	सिद्धेश्वर ढड्ढा	सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 221001
24.	गीता रसामृत	शिवानन्द	,,
25.	गाँधी : जैसा देखा समझा विनोबा ने	विनोबा	,,
26.	स्थितप्रज्ञ दर्शन	विनोबा	,,
27.	जपुजी	विनोबा	,,
28.	जीवन साधना	बालकोवा भावे	,,
29.	जीवन और सुख	शिवानन्द	,,
30.	जीवन और अभय	,,	,,
31.	जे. पी. जमीन पर	रवीन्द्र भारती	,,
32.	ईशवास्य वृत्ति	विनोबा	,,
33.	खिस्त धर्म-सार	विनोबा	,,
34.	कुरान सार	विनोबा	,,
35.	लोक नीति	विनोबा	,,
36.	लोक स्वराज्य	जय प्रकाश नारायण	,,
37.	लोकतन्त्र : विकास और भविष्य	दादा धर्माधिकारी	,,
38.	महागुहा में प्रवेश	विनोबा	,,
39.	मेरी विचार यात्रा(दो भाग)	जयप्रकाश नारायण	,,
40.	मनुशासनम्	विनोबा	,,
41.	नामवाला	विनोबा	,,
42.	नारी की महिमा	विनोबा	,,
43.	प्रेरणा प्रवाह	विनोबा	,,
44.	पंचायत राज : संकल्पना और आज का स्वरूप	विजयरंजन दत्त	,,
45.	पूजागीत एक चिन्तन	विनोबा	,,
46.	पथद्वीप	विनोबा	,,
47.	ऋषि विनोबा	श्री मन्नारायण	,,
48.	रामनाम : एक चिन्तन	विनोबा	,,

क्र.	पुस्तक	लेखक	प्रकाशक
49.	रूहुल कुरान (अरबी)	विनोबा	सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 221001
50.	संत विनोबा	मीरा भट्ट	,,
51.	सम्पूर्ण क्रान्ति के लोकनायकः जयप्रकाश	श्री कृष्ण दत्त भट्ट	,,
52.	शुचिता से आत्म दर्शन	विनोबा	,,
53.	सत्य की खोज	म. भगवानदीन	,,
54.	समणसुत्तं	सं. जिनेन्द्र वर्णी	,,
55.	सत्य दर्शन	,,	,,
56.	सर्वोदय और साम्यवाद	विनोबा	,,
57.	सम्पूर्ण क्रान्ति	जयप्रकाश नारायण	,,
58.	तनाव से मुक्ति और ध्यानद्वीप	शिवानन्द	,,
59.	तीसरी शक्ति	विनोबा	,,
60.	उमंग भरा जीवनप	शिवानन्द	,,

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक
बौद्ध धर्म एक बुद्धिवादी अध्ययन	डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन	बुद्धि भूमि प्रकाशन नागपुर
धम्मपदं	डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन	बुद्धि भूमि प्रकाशन नागपुर
समणसन्त (श्रमणसूत्रम)	जिनेन्द्र वर्णी	सर्वसेवा संघ वाराणसी संस्करण जुलाई 1997
बुद्ध वाणी	वियोगी हरि	यशपाल जैन सस्ता साहित्य मण्डल एम. 77 कनॉट सकर्स नई दिल्ली
गौतम बुद्ध	रघुनाथ पाठक	गोयल प्रकाशन सूनावाद पड़ाव वाराणसी
The path of Arhat a religious Democracy	T. V. Mehta	Parsvanatha Vidyapitha Varansi
Jaina Karmology	Dr. N. L. Jain	Parsvanatha Vidyapitha Varansi
Navdas Gan		Society of Self Development Ahmedabad

WORKS OF OTHER WRITERS ON MAHATMA GANDHI
AND
JOURNALS AND PERIODICALS ETC

1. Andews ,C.F. - "Mahatma Gandhi's Ideas",(Allen and unwin London,1929)
2. Adas, Sir John - "Evolution of Educational Theory" (Macmillan, London,1915)
3. Bhave Vinoba - "Teesaree Shakti"
   (Sarvodaya Sangh Prakashan Varanasi, First Edition 20th Oct. 1960)
4. Bose N. K. (A) " Selections from Gandhi " (N. P. H. 1948).
   (B) " Studies in Gandhism "
   (Indian Associated Publishing Co. Calcutta, 1947)
5. Chani Wala, Brajkishan -" Bapu ke charno me".
   (Hindi sasta sahity mandal, New Delhi, 2ndEdition 1949)
6. Datt D. M.- " The Philosophy of Mahatma Gandhi."
   (University of Wisconsin Press, Canada, 1953).
7. Stevenson, L. A. - " The Project Method of Teaching." (Macmillan, New York, 1930)
8. Dhawan, Gopi Nath - " The Political Philosophy of Mahatma Gandhi."
   (N. P. H. 1951).
9. Desai Mahadev - (a) " With Gandhiji in Cyclone." (Madras, S. Ganesan.)
   (b) " Primary Education and village two year's work of Education"
   (Evans London, 1940.)
10. Tendulkar D. G. - " Mahatma" 8 Vols, Jhavani and Tendulkar Bombay, 1951-54.)
11. Tendulkar, and others - " His Life and Work."
   (Karnataka publishing House, Bombay 1944.)
12. White head, A. N. - " Aims of Education and other Essays."
   (Williams and Mogate, London, 1950.)
13. Ferriera, Adolf - " The activity School" , Ed. K. G. Saiyidain
   (Kitabistan, Allahabad, 1938)
14. Farword to Basic Education (HTS Wardha).

15. Gandhi P. C. - " Jivannun Parodha", (Gujrati) Navajivan.

16. Gandhi N. K. - "Hindu Dharama" (Navajivan Publishing House)

17. Green T. H. - " quoted by Lord Telefence",
(Oxford. " Vishava ke Bhashan men" 27. 2. 40)

18. Huxley, Aldous - " Ends and Means" (Chattu and windus, London 1938 .)

19. Hamption, H. V. - " Selections from Newmen's idea of a University"
(Bombay Longmans)

20. Hand Book of Suggestions, (H. M. S. O. 1937.)

21. Husain Jakir - " Two year's Book " Report of the 2nd basic Education Conference ,
Delhi, 1941and 42 . (H. T. S. Sevagram Wardha.)

22. James Arick - " An Essay of the content of Education."
(George Harrp, London 1949.)

23. Jawahar Lal Nehru - " Cited in UNESCO Project in India "
(Ministry of Education Delhi 1953.)

24. Kriplani, J. B. (a) " The latest fad "(Sevagram Hindustani Talimi sangh,1939)
(b) "The Gandhian Way" (Vora and Co. Bombay, 1938)
(c) " The New Education " (S. H. T. S., 1939)
(d) " Gandhi Darshan " (S. H. T. S., 1939)

25. Kumarappa J. C. - " Social and Political ideas of Mahatma Gandhi "
(Vora and Co. Bombay, 1951)

JOURNALS AND PERIODICALS ETC

1 Journal of Education and Psychology, Baroda

2. Harijan (Weekly) 1933-40, 1942 and 1946-48 (N. P.)

3. Harijan Bandhu - Ahmedabad, N. P.

4. Harijan Sewak - Ahmedabad, N. P.

5. Politics and Morality, Quarterly (Vishawa Bharati Gandhi Memorial Palce, Shanti Niketan , 1944 By Sprinka Stefension.)

6. Psycho, Oct-1942, Bombay

7. Teacher's Word, London

8. Vishvabharati, Quaterly ,Shanti Niketan, Education Number (Vol. XIII) 1948.

9. Young India - (1919-1932) Weekly, N. P. Navajivan, Ahmedabad.

10. अनुसंधान विधियाँ (व्यवहारपरक विज्ञान) - एच. के. कपिल

11. अनुसंधान विधियाँ - महेश भार्गव

12. अनुसंधान विधियाँ - गुडवार एण्ड स्केथ

13. अनुसंधान विधिया - वैस्ट